महर्षि दयानन्द और विवेकानन्द

लेखक

डॉ॰ भवानीलाल

संयुक्त मन्त्री, परोपकारिण

ओ३म्

महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द

(भारतीय पुनर्जागरण के सन्देशवाहक महापुरुषो के सिद्धान्तो
और विचारो का मौलिक तुलनात्मक विवेचन)

लेखक
भवानीलाल भारतीय
एम-ए० पी० एच-डी०

प्रकाशक
वैदिक यन्त्रालय प्रकाशन
अजमेर

महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द

लेखक
डा० भवानीलाल भारतीय
एम् ए० पी एच-डी०

प्रथम संस्करण
दीपावली सं० २०३२

मूल्य अजिल्द छ रुपया

मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
प्रबन्धक
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

विषय सूची

प्राक् निवेदन

भारत के इतिहास मे, विगत शताब्दी मे उत्पन्न और विकसित पुनर्जागरण के विभिन्न आन्दोलन अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। यह वह समय था जब मध्यकालीन सकीर्णता तथा अंध धारणाओ की केंचुल से मुक्त होकर भारतीय-समाज विज्ञान एव बुद्धिवाद की नव स्फूर्त प्ररणाओ से सयुक्त होने का प्रयास कर रहा था। पश्चिमी सम्पर्क और अंग्रजी शिक्षाप्रणाली का एक परोक्ष प्रभाव यह हो रहा था कि तत्कालीन यूरोप मे याप्त स्वतन्त्रता बन्धुत्व और एकता जसे उदात्त एव युगीन भावो से भारतीय समाज अधिकाधिक प्रभावित होकर जागृति एव उद्बोधन प्राप्त कर रहा था। इतिहास के अध्येता विद्वानो ने ब्राह्मसमाज के प्रवतक राजा राममोहनराय को पुनर्जागरण आन्दोलन का पितामह स्वीकार करते हुये तत्कालीन परिस्थितियो का मार्मिक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ साथ आये पाश्चात्य सस्कृति के झझावात ने भारतीय मानस को बुरी तरह से झकझोर दिया था। स्वराज्य तथा राजनतिक अधिकारो से च्युत भारतवासी सवतोमुखी पराभव तथा दासता जन्य हीन भावना का अनुभव कर रहे थे। उनके नतिक सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन मे सवत्र अशान्ति अस्थिरता तथा अराजकता दृष्टिगोचर होती थी। एक अभूतपूव सास्कृतिक सकट मे से दश गुजर रहा था। एक ओर यदि कट्टरपन्थी लोग थे जो अंधविश्वासो कूपमण्डूकत्व तथा गतानुगतिकता से ही चिपके रहने मे अपनी अस्तित्व रक्षा समझ बठे थे तो दूसरी ओर पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित एक ऐसा नवयुवक वग उत्पन्न हो रहा था जो प्रत्येक स्वदेशी वस्तु को हेय मान कर विदेशी रीति-नीति के अनुकरण को ही श्रेयस्कर मानता था।

विद्यालयो मे दी जाने वाली पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने भारतवासियो के स्वाभिमान आत्मगौरव और अस्मिता का हनन किया। इसके साथ ही ईसाई प्रचारको ने स्वधर्मी शासको का प्रत्यक्ष सरक्षण प्राप्त कर भारतीय धम एव

सस्कृति पर चतुमु खी आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। उनके द्वारा की गई आलोचनाओ ने नवशिक्षित वग को सदेहशील ही नही बनाया अनेक सुपठित एव विदेशी भावधारा मे दीक्षित व्यक्ति तो स्वधम का त्याग कर खुल्लम खु ला ईसाई मत को अगीकार करने लगे। इस विषम परिस्थिति मे हि दू समाज का परम्परागत नेतृत्व करने वाले ब्राह्मण (पण्डित) वग ने समस्या का कोई समयानुकूल समाधान तलाश करने की अपेक्षा शुतुरमुर्गी मनोवृत्ति का ही परिचय देकर उन लोगो का धार्मिक और सामाजिक बहिष्कार करना आरम्भ किया जो ईसाइयत के सम्पक मे यत् किञ्चित भी आ चुके थे।

राजा राममोहनराय ने उपनिषद एव वेदा त प्रतिपादित एक मेवाद्वितीयम् ब्रह्म की उपासना का प्रचार करने हेतु ब्राह्मसमाज की स्थापना की तथा मध्यकालीन हि दू धम मे प्रचलित बहुदेवतावाद मूर्तिपूजा अवतारवाद आदि की मिथ्या धारणाओ का खण्डन किया। समाज मे प्रचलित सती प्रथा विधवाओ के उत्पीडन तथा अ या य विकृतियो का भी उ होने साहसपूवक प्रतिरोध किया। ईसाई मत के धार्मिक एव दाशनिक म त यो के समीक्षक होने पर भी राममोहनराय ईसा मसीह द्वारा प्रतिपादित नतिक धारणाओ के बडे प्रशसक थे। कालान्तर मे जब केशवच द्रसेन ने ब्राह्मसमाज को भारत की मौलिक वदिक चिन्तन प्रणाली से पृथक कर उसे ईसाई विचारो और विश्वासो से अधिकाधिक जोड दिया तो अपने समय का यह प्रगतिशील सामयिक आ दोलन सवथा अस्त व्यस्त होकर नामशेष रह गया।

भारतीय तत्त्व चि तन के आधार पर पुनर्जागरण और नवोदय का एक विशुद्ध स्वदेशी आ दोलन प्रवर्तित करने वाले दयान द सरस्वती भी मूलत उसी सस्कारक वग मे परिगणित होगे जि होने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि विभिन्न पुरातन आचार विचार केवल प्राचीन एव परम्पराप्राप्त होने के कारण ही सवाश मे साधु तथा ग्राह्य नही होते। इसी प्रकार जो कुछ नवीन है वह भी अनिवायत अवद्य ही हो यह भी आवश्यक नही है। दयान द के रूप मे भारतीय इतिहास मे एक ऐसा युग पुरुष अवतरित हुआ जो भारत के

दि`य एव गरिमाशाली अतीत से प्ररणा लेते हुये भी धम समाज तथा सस्कृति के क्षत्र मे बहुमुखी क्रा ति का समथक था तथा जिसने मध्यकालीन धार्मिक सामाजिक रूढियो मूढ विश्वासो तथा परम्परागत अ ध धारणाओ का प्रबल विरोध किया। दयान द द्वारा प्रवर्तित इस वचारिक क्रा त को सुप्रसिद्ध अमरीकी बिचारक एण्डयू जक्सन डविस ने एक ऐसी प्रचण्ड अग्नि से उपमित किया है जो ससार मे याप्त अज्ञान अ`याय और अत्याचार को जलाकर के ही दम लेगी।

जिस समय दयान द अपने प्रगतिशील धार्मिक सामाजिक विचारो का प्रचार करने की इच्छा लेकर देश भ्रमण करते हुये भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता आये उस समय रानी रासमणि नामक एक धनी शूद्रा विधवा द्वारा निर्मित काली म दिर के पुजारी रामकृष्ण परमहस अपनी रहस्य सकुल साधना प्रणाली के द्वारा लोक प्रचलित पौराणिक धम तथा वेदा त के दाशनिक मतवाद को गड्डमड्ड कर हि दू धम और मतविश्वासो की एक ऐसी अभिनव यारया कर रहे थे जो आपात रमणीय तो थी ही नवपठित युवक वग को आकृष्ट करने मे भी समथ सिद्ध हो रही थी। कलकत्ता निवासकाल म स्वामी दयान`द और रामकृष्ण की स्वल्पकालीन भट का उल्लेख दोनो महापुरुषो के जीवन चरितो मे उपलब्ध होता है पर तु रामकृष्ण के जीवनी लेखको ने उसे जिस रूप मे वर्णित किया है वह अधिक विश्वसनीय नही लगता क्योकि स्वामी दयान`द न तो किसी नवीन मतप्रवतन के लिये ही उत्सुक थे और न वे अपनी शास्त्र प्रतिभा और अध्ययन द्वारा लोगो को आतकित और त्रस्त कर बलात् अपनी बाते मनवाना ही पस द करते थे। उनका विनम्र प्रयास तो यही था कि उनके देशवासी मध्यकालीन पौराणिक मतविश्वासो का त्याग कर उस विशुद्ध वदिक तत्त्वज्ञान और जीवन प्रणाली को स्वीकार कर जो भारत के लोकोत्तर गौरव की प्रतीक रही है। खेद है कि दयान`द के जीवनी लेखक भी अपने युग के इन दो महापुरुषो के पारस्परिक वचारिक आदान प्रदान का यथातथ विवरण सकलित करने मे असमथ रहे, अ`यथा

हमे ज्ञात होता कि श्री रामकृष्ण जसे शास्त्र ज्ञान रहित कि तु अलोकिक आध्यात्मिक साधना सम्पन्न निरीह व्यक्ति ने किस प्रकार दयान द सरस्वती जस अपूव शास्त्रीय एव बौद्धिक सम्पत्ति से युक्त युग पुरुष से अपना विचार परिवतन किया हागा तथा पौराणिक मा यताओ का प्रचण्ड खण्डन करने वाले स्वामी दयान द ने ही किस प्रकार धम सशोधन समाज सुधार तथा लोक मगल के लिये प्रस्तुत अपने भावी कायक्रमो को उन रामकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत किया होगा जो वयक्तिक साधना तथा ब्रह्मानुभूति के समक्ष समाज सशोधन तथा लोक हित को दम्भ और प्रवञ्चना कहने मे भी नही चूकते थे।

यह सचमुच आश्चय की बात है कि लोक हित और समष्टि कल्याण की योजनाओ का निरथक बताने वाले रामकृष्ण को विवेकान द के रूप मे एक ऐसा तेजस्वी शिष्य मिला जिसने यद्यपि प्रत्यक्षतया तो अपने गुरु के विचारो को ही सर्वात्मना स्वीकार किया पर तु यावहारिक दृष्टि से उसने भी स्वदेश हित समाज सेवा तथा लोककल्याण के उसी पथ का अनुसरण किया जिसे उनके पूववर्ती दयान द सरस्वती प्रशस्त कर चुके थे। विवेकान द ने अपने गुरु श्री रामकृष्ण द्वारा प्रतिपादित धम मीमासा दाशनिक चि तन तथा मतवाद को सकीण परिवेश से मुक्त कर व्यापक धरातल प्रदान किया। जहा रामकृष्ण अपनी विचाराभिव्यक्ति मे सुगम लौकिक दृष्टा तो की सहायता लेते थे वहा विवेकान द ने अपनी विचारधारा के प्रसार मे यापक शास्त्राध्ययन तथा प्रौढ युक्तिप्रवणता का भी सहारा लिया है। यह लिखने मे हमे कोई सकोच नही है कि यदि रामकृष्ण की विचारधारा को विवेकान द जसा दूरदर्शी समयज्ञ तथा प्रौढ भाष्यकार नही मिलता तो वह काली मन्दिर के प्रागण मे एकत्रित होने वाले भक्तो और श्रोताओ की मण्डली तक ही सीमित रह कर कालकवलित हो जाती।

प्रस्तुत प्रब ध मे दयान द और विवेकान द भारत के साँस्कृतिक नव-जागरण के पुरोधा, इन दोनो महापुरुषो के धार्मिक सामाजिक, सास्कृतिक तथा दार्शनिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हमे

यह कहने मे कुछ भी विप्रनिपत्ति नही है कि दयान द ने जहा भारत के गौरव पूण अतीत से प्ररणा लेकर पुरातन वदिक जीवन-दशन को सम्पूणतया मा यता प्रदान की वहा उन्होने इस देश मे प्रचलित मध्यकालीन धार्मिक एव सामाजिक रुढियो को तिलाञ्जलि देने के लिये एक तेजस्वी अभियान भी चलाया इसके विपरीत स्वामी विवेकान द यदा कदा यत्र तत्र वचारिक क्रा ति का उदघोष करते हुये भी दबी जबान से पुरानी रूढियो मिथ्या विश्वासो एव समाज मे याप्त बुराइयो का येन केन प्रकारेण समथन करते हुए प्रतीत होते हैं। यूरोप और अमेरिका मे भारतीय धम एव सस्कृति की विजय पताका फहराने वाला यह महापुरुष स्वय अपने वचारिक चितन के क्षेत्र मे कितने अ तर्विरोधो स घिरा है यह तब तक नही जाना जा सकता जब तक उनके ग्र थो भाषणो एव पत्रो की एक एक पक्ति को सावधानी पूवक न पढ लिया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि विवेकान द की उपलब्धियो एव उनके अ त-र्राष्टीय प्रभाव की चचा जितनी अधिक हुई है उस मात्रा मे उनके म त यो तथा विचारो का अध्ययन एव आलोचन नही हुआ। तभी तो आज भारत के पठित आभिजात्य वग मे विवेकान द एक आदश नायक के रूप मे तो स्मरण किये जाते हैं परन्तु उनके प्रशसको मे कितने ऐसे हैं जि होने विवेकान द वाड मय का सम्पूणरीत्या आलोडन कर उसके आधार पर अपनी प्रशस्ति-मूलक धारणाय बनाई हैं।

विदेशो मे भारतीय धम सभ्यता एव सस्कृति का प्रचार प्रसार एक भिन्न बात है पर तु उससे भी अधिक महत्त्वपूण है स्वदेश मे रहने वाले लाखो करोडो दुदशा ग्रस्त स तप्त एव रूढिग्रस्त मनुष्यो का उद्धार करने का सक्रिय प्रयास। ल दन वाशिगटन तथा सनफ्रा सिसको जैसे नगरो मे विशाल वेदा त म दिरो का निर्माण कर धनो मादग्रस्त अमरीकी एव यूरोपियनो को वेदा त योग एव भक्ति पर आकषक प्रवचन सुनाना अधिक आसान है जब कि अशिक्षित मूढताग्रस्त एव शता द्यो के कुसस्कारो मे लिप्त कोटिश भारतीयो को स्वधम स्वभाषा एव स्वसस्कृति के उदात्त एव मौलिक तत्त्वो

से परिचित कराना अधिक कठिन है। अग्र जी भाषा मे शाङ्कर वेदा त और मायावाद की दाशनिक विवेचना चाहे पश्चिमी धनपतियो और भौतिक चाकचिक्य मे आकण्ठमग्न गौरांग लोगो के लिये मनोविनोद की वस्तु हो सकती है पर तु उससे उस अशेष भारतीय जनसमाज को कोई उत्बोधन नही मिलता जो शताब्दियो तक भौतिक एव वचारिक शोषण का शिकार रहे।

यह लिखकर मैं निश्चिय ही स्वामी विवेकान द के महत्त्वपूण कार्यों का अवमू यन करने की धष्टता कर रहा हू ऐसा समझना भूल होगी। पर तु मेरा विनम्र निवेदन है कि पहने घर मे दिया जलाकर तब मस्जिद मे जलाया जाता है। प्रवासी भारतवासियो मे आजीवन काय करने वाले स्वामी भवानी दयाल स यासी के श दो मे— जिस समय स्वामी विवेकान द अमेरिका क यूयाक चिकागो आदि शहरो मे मुट्ठी भर अमेरिकनो को वेदा तो बनाकर मठ स्थापित कर रहे थे ठीक उसी समय अमेरिका के दक्षिणीय भाग मे डिमरेरा टिनीडाड जमैका ग्रनेडा सुरीनाम आदि उपनिवेशो मे हजारो प्रवासी हि दू स्वधम को तिलाञ्जलि देकर ईसाई हो रहे थे। आज उन प्रदेशो मे कोई विरला ही शिक्षित व्यक्ति हि दू रह गया है अ यथा सब के सब शिक्षित युवक ईसाई हो गये। उन अभागे हि दुओ पर स्वामी विवेकान द की दृष्टि नही पडी जो दक्षिणी अमेरिका के द्वीपो मे शतब दी लिखा कर गये थे कि तु हमारी मनोवृत्ति ऐसी दूषित हो गई है कि स्वामी विवेकान द के दो चार अमेरिकन शिष्यो को देखकर हम फूले नही समाते और यह भूल जाते हैं कि उसी अमेरिका के पडौस म लाखो हि दू ईसाई हो गये पर न तो स्वामी विवेकान द और न उनके शिष्यो ने आज तक उनकी खोज खबर ली।' ‡

स्वामी दयानन्द का काय क्षत्र एव उनकी वचारिक प्रक्रिया भिन्न प्रकार

---

‡ शकरान द स दशन—प्रवासी भवन अजमेर से १९४२ ई० मे प्रकाशित पृ० २२१–२२२।

की थी। वे स्वदेशोन्नति को सर्वोपरि महत्त्व देते थे। उनके लिए स्वधम स्वभाषा स्वराष्ट और स्वसस्कृति की उपासना ही एक मात्र ध्येय और लक्ष्य था। जब तक भारत के कोटि-कोटि जन अज्ञान एव अविद्या के अ धकार मे ग्रस्त है तब तक स्वदेश के काय क्षेत्र को छोडकर इगलड या अमेरिका मे वदिक आदर्शों का डिमडिम घोष करना उ हे अनुचित प्रतीत हुआ और इसी तक के आधार पर उ होने केशवच द्रसेन के उस अनुरोध को भी अस्वीकार कर दिया जिसम उन्हे अग्र जी सीख कर धम प्रचार हेतु विदेश यात्रा करने का आग्रह किया गया था।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी दयान द की विचार-धारा जहा सुसगत तकपूण तथा इस देश की परम्परा प्राप्त वदिक विचार सरणि से अनुमोदन प्राप्त करती चलती है वहा स्वामी विवेकान द की विचारधारा यत्र तत्र अ र्तविरोधग्रस्त पश्चिमाभिमुख तथा वदतो व्याघात पूण है। तुलनात्मक अध्ययन का माग पर्याप्त कण्टकाकीण होता हे और अधिक सम्भावना इस बात की रहती है कि समीक्षक कही पक्षपात एव पूव निर्धारित मत के आग्रहवश अपनी आलोचना को विवादग्रस्त न बना बठे। प्रस्तुत आलोचना कहा तक इस दोष से मुक्त है इसका निणय तो सुधी पाठक ही करेंगे। आशा है पाठक इस ग्र थ का अध्ययन उसी मनोवृत्ति और दृष्टि कोण से करगे जिसे दृष्टिपथ मे रख कर इसे लिखा गया है।

कार्तिक अमावस्या
(दयान द निर्वाण दिवस)
२०३२ वि०
दयान द आश्रम अजमेर

Bhavanilal Bharatiya

अध्याय १

वेद विषयक विचार

हमारे देश की परम्परा शास्त्रप्रमाण को अत्यधिक महत्व देती आई है। दूसरे शब्दो मे हम यदि यह कह दे कि हम शब्द प्रमाणवादी है* तो कोई अत्युक्ति नही होगी। दार्शनिक चिन्तन की वैदिक प्रणाली जिसके अन्तर्गत सांख्य योग न्याय वैशेषिक वेदान्त और मीमांसा आते है, एक स्वर से वेद को परम प्रमाण स्वीकार करती है। यह सम्भव है कि वेद विषयक विचारो के विस्तार मे इन दर्शनो मे किञ्चित् मतभेद हो परन्तु जहाँ तक प्रमाण का सम्बन्ध है वेद का नाम आते ही सबको मौन और श्रद्धावनत होना पडता है।

स्वामी दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मे वैदिक दर्शनो की वेद विषयक धारणा को उद्धृत करते हुए वेद ज्ञान की नित्यता और प्रामाणिकता स्वीकार की है। **'अथ वेदानां नित्यत्वविचार'** शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने वेदो के नित्यत्व को पतञ्जलिकृत महाभाष्य के आधार पर सिद्ध करने के अनन्तर दर्शनकार ऋषियो की वेद विषयक सम्मतियां उद्धृत की है।

सर्व प्रथम मीमांसा के रचयिता महर्षि जैमिनि के लिये लिखा—**एवं जैमिनिमुनिनापि शब्दस्य (वेदस्य) नित्यत्वं प्रतिपादितम्–नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य**

---

* *शब्दप्रमाणकावयम् यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्। (महाभाष्य)*

परार्थत्वात् (पू० मी० १।१।१८) । इस प्रकार मूल सूत्र को उद्धत करने के अनन्तर लिखते हैं—'**तु शब्देनानित्यशङ्का निवार्यते । विनाशरहितत्वाच्छब्दो नित्योऽस्ति कस्माद्दर्शनस्य परार्थत्वात्**' । इसी प्रकार अन्यान्य दर्शनों की वेदविषयक धारणा का दिग्दर्शन कराने हेतु स्वामी दयानन्द ने भूमिका में निम्न प्रकार लिखा—

> **अन्यच्च वैशेषिकसूत्रकारः कणादमुनिरप्यत्राह तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्** । (वै० १।१।३)
>
> **तथा स्वकीयन्यायशास्त्रे गोतममुनिरप्यत्राह मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्** (न्या० २।१।६७)
>
> **अत्र विषये योगशास्त्रे पतञ्जलिमुनिरप्याह स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्** । (यो० १।१।२६)
>
> **एवमेव स्वकीयसांख्यशास्त्रे पञ्चमाध्याये कपिलाचार्योऽप्यत्राह—**
>
> **निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्** । (सू० ५१)
>
> **अस्मिन् विषये स्वकीयवेदान्तशास्त्रे कृष्णद्वैपायनो व्यासमुनिरप्याह शास्त्रयोनित्वात्** (१।१।३)
>
> **अन्यच्च तस्मिन्नेवाध्याये अत एव च नित्यत्वम्** (३।२९)

इन विस्तृत उद्धरणों से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है कि वेदों की नित्यता और प्रामाणिकता के विषय में दर्शनकार एक मत हैं, और जो मत वैदिक दर्शनकार ऋषियों का है वही स्वामी दयानन्द का है। इतना ही नहीं अपितु यह कहना भी अनुचित न होगा कि शताब्दियों से विलुप्त वेद विषयक चर्चा को पुनरुज्जीवित करने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द को ही है। भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में दयानन्द के योगदान की चर्चा करते हुए श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने लिखा है—अपनी भावुक अपील के लिए दयानन्द सरस्वती ने युगों की दृढ आधार शिला वेदों का आश्रय लिया। परन्तु वेदों के विषय में दयानन्द की अपील केवल भावुक ही नहीं थी। उसके पीछे एक निश्चित परम्परा थी, एक निश्चित विश्वास था जो युक्ति और तर्क पर

आधारित होने के कारण भारतवासिया को नितान्त सुदृढ और चट्टान के तुल्य दुल्लघ्य लगता था ।

अब हम वेदो के विषय मे दयानन्द और विवेकानन्द की विचारधाराओ का तुलनात्मक विवचन प्रस्तुत करते है। वेदो की नित्यता के विषय मे ऊपर दयानन्द की सम्मति प्रस्तुत की गई। विवेकानन्द की भी वेदा की नित्यता क विषय मे यही धारणा थी— वेद नामक शब्दराशि किसी पुरुष के मुह से नही निकली है। उसके साल और तारीख का अभी निणय नही हुआ है और न आगे चलकर ही होगा। हम हिन्दुओ के मतानुसार वेद अनादि और अनन्त हैं। जगत् के अन्यान्य धम अपने शास्त्रो को यही कहकर प्रामाणिक सिद्ध करते हैं कि वे ईश्वर नामक व्यक्ति अथवा किसी दूत या पगम्बर का वाणी हे पर हिन्दू कहते है वेदो का कोई दूसरा प्रमाण नही है वेद स्वत प्रमाण है क्योकि वेद अनादि अनन्त है वे ईश्वरीय ज्ञानराशि है। वेद कभी लिखे नही गये न कभी स्रष्ट हुए। वे अनादि काल से वतमान है। जसे सृष्टि अनादि अनन्त है वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी। वेद का अथ है यह ईश्वरीय ज्ञान की राशि। विद् धातु का अथ है जानना।*

विवेकानन्द वेदो को नित्य अपौरुषय ईश्वरीय ज्ञान का सग्रह मानते हैं। वह अनादि है और अनन्त है क्योकि उसका रचयिता परमात्मा भी अनादि और अनन्त है। पाश्चात्य विद्वानो द्वारा प्रचारित इस धारणा का कि वेदो की रचना भिन्न भिन्न युगो मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा हुई है स्वामी विवेकानन्द ने बलपूवक खण्डन किया। उन्होने अपने एक भाषण मे कहा— हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तयार नही हैं कि वेदो का कुछ अश एक समय मे और कुछ अन्य समय मे लिखा गया है। उनका अब भी यह दृढ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय उत्पन्न हुए थे अथवा उनकी सृष्टि कभी नही हुई वे चिरकाल से सृष्टिकर्त्ता के मन मे विद्यमान थे।'†

---

* भारत मे विवेकानन्द पृ० २५

† भारत मे विवेकानन्द पृ० १७५

स्वामी दयानन्द ने भी स्वनिर्मित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इसी वेदनित्यत्व विषय के अन्तर्गत लिखा— **ईश्वरस्य सकाशाद्वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति तस्य सर्वसामर्थ्यस्य नित्यत्वात्'** और इसके भावार्थ मे लिखा— वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए है इससे वे स्वत नित्यस्वरूप ही हैं क्योकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है।* इस प्रकार हम यह देखते हैं कि वेदो के नित्यत्व के विषय मे दोनो आचार्य प्राचीन काल से प्रचलित परम्परा को स्वीकार करने के ही पक्षपाती हैं।

वेदो के अपौरुषेयत्व के सिद्धान्त को भी दोनो आचार्यों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं यह वेदो के अन्त साक्ष्य† और बहिर्साक्ष्य से भलीभाति प्रमाणित है परन्तु प्रायेण यह शका की जाती हे कि वेद मन्त्रो पर जिन जिन ऋषियो का नाम लिखा रहता हे उन ऋषियो को ही तत् तत् मन्त्रो का कर्त्ता क्यो न मान लिया जाय ? पाश्चात्य विद्वानो के मत मे तो ये ऋषि ही मन्त्रो के रचयिता थे। परन्तु भारतीय परम्परा इन ऋषियो को मन्त्रकर्ता न मान कर मन्त्रद्रष्टा मानती है‡ जिन्होने मन्त्रो के रहस्य का दर्शन किया और मन्त्रगत चरम सत्य का साक्षात्कार कर वेद वाणी का ससार मे प्रचार किया। इन्ही द्रष्टा ऋषियो की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए अथवा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ उनका नाम वेद मन्त्रो के साथ लिखा रहता है। आचार्य दयानन्द ने अपनी भूमिका मे इस विषय के सम्बन्ध में पूर्वपक्ष स्थापित कर उसका समाधान निम्न प्रकार किया है—

प्रश्न— **यो मन्त्रसूक्तानामृषिर्लिखितस्तेनैव तद्रचितमिति कुतो न स्यात् ?"**

---

* *ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३६*

† *'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ यजु० ३१।७*

‡ *निरुक्तकार महर्षि यास्क ने ऋषि शब्द का निर्वचन करते हुए लिखा है—'ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यव २।११*

जो सूक्त और म त्रो के ऋषि लिखे जाते है इ होने ही वेद रचे हो ऐसा क्यो नही माना जाय ?

उत्तर—**मव वादि। ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनश्रवणयो कृतत्वात्। 'यो व ब्रह्माण विदधाति पूव यो व वेदाश्च प्रहिणोति तस्म' इति श्वेताश्वतरोपनिषदादिवचनस्य** (अ० ६। श्लो० १८) **विद्यमानत्वात्। एव महर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत्तदा ब्रह्मादीना समीपे वेदाना वतमानत्वात्। '***

अर्थात् ऐसा मत्त कहो क्याकि ब्रह्मादि ऋषियो ने भी वदो का अध्ययन और श्रवण किया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे लिखा है कि जिसने ब्रह्मा को भी उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को आदि मे अग्नि आदि के द्वारा वेदो का भी उपदेश किया। इसी प्रकार ऋषिया ने भी वेदो को पढा है। क्योकि जब मरीच्यादि ऋषि और यासादि मुनियो का जन्म भी नही था उस समय म भी ब्रह्मादि के समीप वेद विद्यमान थे।

विवेकानन्द ने भी ऋषियो के म त्रद्रष्टा होने का ही समथन किया है। उन्होने अपने एक याख्यान मे कहा— ऋषि श द का अथ हे म त्रद्रष्टा यह ज्ञान तथा भाव उनके अपने विचार का फल नही है। जब कभी आप सुने कि वेदो के अमुक अश के ऋषि अमुक हैं तब यह मत सोचिये कि उन्होने उसे लिखा था या बुद्धि से बनाया है बल्कि पहले ही से वतमान भाव राशि के द्रष्टामात्र हैं—वे भाव अनादि काल से ही इस ससार मे विद्यमान थे।†

वेदविषयक अ या य समस्याओ पर दोना आचार्यों के मतो का तुलनात्मक विवेचन प्रारम्भ करने से पूव एक मौलिक प्रश्न पर विचार कर लेना आवश्यक है। वेद के अ तगत कौन से ग थो का समावेश किया जाना चाहिये ? स्वामी दयानन्द से पूव तक अर्थात् मध्यकालीन परम्परा वेदो को 'म त्र-ब्राह्मणात्मक ‡ मानती आई है। अर्थात् वेदो के अ तगत ऋग यजु साम

---

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प० २५

† भारत मे विवकान द प० २५ २६

‡ मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्—आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषा सूत्र

और अथर्व संहिताओं के साथ साथ ब्राह्मण ग्रन्थों का समावेश भी किया जाता रहा है। स्वामी दयानन्द ने संहिता और ब्राह्मण को पृथक पृथक मानते हुये मन्त्रसंहिता का मूलवेद और ब्राह्मण भाग को उसकी व्याख्या स्वीकार किया। उन्होंने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस विषय को उठाया। वेद संज्ञा विचार के अन्तर्गत वे लिखते हैं **अथ कोऽयं वेदो नाम** ? वेद किनका नाम है ? **'मन्त्रभागसंहितेत्याह'** मन्त्र संहिताओं का। पुनः कात्यायन के नाम से प्रसिद्ध मन्त्र ब्राह्मणात्मक दोनों भागों को वेद बतलाने वाले सूत्र को पूर्वपक्ष में उद्धृत करते हुये उसका समाधान किया—

पूर्वपक्ष—किञ्च 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति ? अर्थात् जो कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मणग्रन्थों का नाम वेद है फिर ब्राह्मण भाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते ?

उत्तरपक्ष—मैवं वाच्यं। न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति। कुतः, पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्कात्यायनभिन्न-ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वात्मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति।*

ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा न होने में आचार्य दयानन्द ने निम्न कारण बताये—

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण और इतिहास के नाम से प्रसिद्ध हैं।†
(२) ब्राह्मण वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं।
(३) ऋषिप्रोक्त हैं।
(४) ईश्वरोक्त नहीं है।
(५) कात्यायन से अन्य किसी ऋषि ने उन्हें वेद नहीं कहा।
(६) मनुष्य बुद्धि से रचित हैं।

---

* *ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० १०६*

† *ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति।*

इसी प्रसग को विस्तार देते हुये आचाय दयानन्द लिखत हैं— **यथा ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणा नामलेखपूवका लौकिका इतिहासा सन्ति न चव मन्त्रभागे।'*** अर्थात् जिस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थो मे मनुष्या के नाम लेखपूवक लौकिक इतिहास है वसे मन्त्रभाग मे नही। तथा वेदो मे जमदग्नि कश्यप† आदि लौकिक पुरुषो के नाम के प्रयोग से उनमे अनित्य इतिहास की शका की जाने पर उसका समाधान करते हुये ब्राह्मण ग्रन्थो के आधार पर ही‡ वेदो मे प्रयुक्त उक्त शब्दो का तत्त्वाथ बताते हुये उन्हे लौकिक मनुष्यो से भिन्न अथ मे प्रयुक्त सिद्ध किया है। स्वामी दयानन्द ने तो ब्राह्मण ग्रन्था को ही पुराण और इतिहास माना है। इनसे भिन्न आज के तथाकथित श्रीमद्-भागवत और ब्रह्मववत आदि अठारह पुराणो को वे आष पुराण नही मानते।×

ब्राह्मणो की वेदसज्ञा न होन मे दयानन्द ने उपयुक्त युक्तियो के अतिरिक्त भी कुछ तक प्रस्तुत किये है। जसे वे ब्राह्मणा का वेद न मानकर वदो का व्याख्यान मानते है। इसी प्रकरण म उन्होने आगे लिखा **'अ यच्च ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्याना येव सन्ति नव वेदाख्यानीति, कुत इषे त्वोर्जे त्वेति' (शतपथ १।७) इत्यादीनि मन्त्रप्रतीकानि धत्वा ब्राह्मणेषु वेदाना व्याख्याकरणात्'** अर्थात् शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्था मे वेदमन्त्रा की प्रतीके धरकर उनका व्याख्यान किया गया है अत वे मन्त्रसहिता की भाति वेदसज्ञा के अधिकारी नही हो सकते।

महाभाष्य मे शब्दो के लौकिक और वदिक दो भेद बताये गय है और वदिक शब्दो के उदाहरण के रूप मे चारा वेदो की सहिताओ के प्रथम मन्त्र

---

* ऋग्वदादि भाष्य भूमिका प० १०६

† यजर्वेद ३।६२

‡ चक्षव जमदग्नि शतपथ ८।१ कश्यपो व कूम —शतपथ ७।५

× *तथा ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादिनामास्ति न ब्रह्मववत-श्रीमद्भागवतादीना चेति निश्चीयते। भू० १०८*

को महाभाष्यकार ने उद्धत किया है । ऋषि दयानन्द का ब्राह्मण को वेदान्तगत न मानने मे एक यह भी तर्क हे कि यदि ब्राह्मणो की वेदसज्ञा होती तो महाभाष्यकार उनका उदाहरण भी दते । ऐसी स्थिति मे यही मानना समीचीन जान पडता हे कि महाभाष्यकार ने मन्त्रभाग को ही वेद मानकर उनके प्रथम मन्त्रा की प्रतीकें वदिक शब्दो के उदाहरण रूप मे दी है ।*

अब उक्त तथाकथित कात्यायन के वचन का विचार शेष रह जाता है जिसमे मन्त्र और ब्राह्मण की वेद सज्ञा कही गई है । दयानन्द के अनुयायी विद्वानो न इस पर विशेष विचार किया है ।† वस्तुत यह सूत्र आपस्तम्ब के यज्ञ परिभाषा सूत्रो मे पढा गया है । जिस प्रकार किसी सामान्य शब्द का किसी विशिष्ट विज्ञान की शब्दावली मे एक विशिष्ट अर्थ होता है उसी प्रकार वेद के लिये मन्त्रब्राह्मणात्मक सज्ञा का प्रयोग एक विशिष्ट ग्रन्थ मे उसकी विशिष्ट परिभाषा के रूप मे किया गया है । अत इस वाक्य से यही अर्थ लेना उचित है कि कात्यायन अथवा आपस्तम्ब वेद को जब मन्त्र ब्राह्मण से सयुक्त कहते हैं तो वह एक विशिष्ट ग्रन्थ की सकुचित परिभाषा मात्र है । उसे एक स्वतन्त्र सिद्धान्त की तरह स्वीकार किया जाना सम्भव नही ।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्र सहिताओ को ही वेद मानने का सिद्धान्त आचार्य दयानन्द की केवल मन कल्पना न होकर युक्ति और प्रमाणसिद्ध तथ्य है जिसको सहज ही अस्वीकार नही किया जा सकता ।

इस सम्बन्ध मे विवेकानन्द के विचार उनके एक पत्र से जाने जा सकते

---

* *यदि ब्राह्मणग्रन्थानामपि वदसज्ञाभीष्टाभूत्तर्हि तेषामप्युदाहरणमदात् । अतएव महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यव वदसज्ञां मत्वा प्रथममन्त्र-प्रतीकानि वदिकेषु शब्देषूदाहृतानि । ऋ भा भू प ११६ ।*

† *मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् पर विचार—प० युधिष्ठिर मीमासक कृत वदवाणी के वेदाक (१६५८) का सम्पादकीय लेख ।*

है। वे लिखते है— भारत मे यह सवसम्मत मत है कि वेद श द मे तीन भाग सम्मिलित है—सहिता ब्राह्मण और उपनिषद्। इसमे से पहले दो भाग कमकाण्ड सम्ब धी होने के कारण अब लगभग एक ओर कर दिये गये हैं। सब मतो के निर्माताओ तथा तत्त्वज्ञानियो ने केवल उपनिषदो को ही ग्रहण किया है।' इसी प्रसग मे आचाय दयान द के म त्र सहिता ही वेद है इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुये उ होने लिखा— सहिता ही केवल वेद है स्वामी दयान द का शुरु किया हुआ बिलकुल नया विचार है और पुरातन मतावलम्बी या सनातनी जनता मे इसको मानने वाला कोई नही है। इस मतावलम्बन का कारण यह था कि स्वामी दयान द यह समझते थे कि सहिता का एक नई व्याख्या के अनुसार वे पूरे वेद का एक सुसगत सिद्धा त निर्माण कर सकगे। अब यदि यह सम्भव है कि सहिता के आधार पर एक सम वय पूण धम का निर्माण किया जाय तो हजार बार यह अधिक सम्भव हे कि एक सम वयपूण और सामञ्जस्य युक्त मत उपनिषदो के आधार पर बन सकता है। फिर इसमे पहले से प्राप्त राष्ट्रीय सम्मति के विपरीत जाना न पडेगा। यहा भूतकाल के सब आचाय तुम्हारा साथ दगे। *

यह तो सत्य है कि अनेक लोगो की सम्मति मे वेद के अ तगत सहिता ब्राह्मण ओर उपनिषदा का समावेश किया जाता है पर तु इसे सवसम्मत मत कसे कहा जा सकता है ? सहिता और ब्राह्मणा की जो उपेक्षा हुई उसका कारण उनका कमकाण्ड परक होना ही नही है। सत्य तो यह है कि मध्य कालीन भारतीय धम सहिना और ब्राह्मण ही क्या वेद विषयक सभी ग्र थो (विचारो) की उपेक्षा करता रहा। उसकी प्रवृत्ति पुराणो और अ या य साम्प्रदायिक ग्र थो तक ही रही। ऐसी स्थिति मे उपनिषदो की दशा सहिताओ और ब्राह्मणो से कुछ विशेष अच्छी नही थी। विभिन्न दाशनिक मतवादो के प्रवत्तक आचार्यों न यद्यपि उपनिषद् वाक्या से अपने अपने मत को पुष्ट करने की चेष्टा की है पर तु जसा कि हम आगे चलकर विवेकान द के मत द्वारा

---

* *पत्रावली भाग २ पृ० १८७*

ही यह सिद्ध करेंगे कि उपनिषदो से अपने मत की पुष्टि करने मे इन तथाकथित आचार्यो को कितनी खीचतान से काम लेना पडा है। उन्होन शास्त्रा के वाक्यो के साथ कितना बलात्कार किया है यह किसी तटस्थ अध्येता से छिपा नही है।

सहिता ही वेद है यह सिद्धान्त स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित होने के कारण एक नवीन विचार भले ही लगे परन्तु उसे प्रमाण और युक्ति का दृढभित्ति पर जिस प्रकार प्रस्थापित किया गया है इसे देखते हुये इसकी सहज ही उपेक्षा नही की जा सकती। वेद सहिता के आधार पर एक सुसगत धम सिद्धान्त का निर्माण करना स्वामी दयानन्द का एक सुमधुर स्वप्न अवश्य था परन्तु उनकी वेद व्याख्या को नई व्याख्या कसे कहा जा सकता है जबकि नरुक्त प्रक्रिया के अन्तगत वेदाथ की वही शली स्वीकार की गई है जिसे स्वामी दयानन्द ने अपनाया था। स्वामी विवेकानन्द उपनिषदो के आधार पर यदि समन्वयपूण और सामञ्जस्य युक्त मत की स्थापना की सम्भावना स्वीकार कर सकते है तो क्या वेद सहिताओ के आधार पर ऐसे साव भौम धम की कल्पना नही की जा सकती जिसके लिये पुरातन आचार्यो ने निम्न गौरवपूण प्रशस्तियाँ लिखी थी—

वेदोऽखिलो घममूलम्। (मनु २।६)
सवज्ञानमयो हि स। (मनु २।७)

चातुवण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक।
भूत भव्य भविष्य च सव वेदात् प्रसिद्ध्यति॥ (मनु० १२।९७)

पितृदेवमनुष्याणा वेदश्चक्षु सनातनम्।
अशक्य चाप्रमेयञ्च वेदशास्त्रमिति स्थिति॥ (मनु० १२।९४)

सेनापत्य च राज्य च दण्डनेतृत्वमेव च।
सवलोकाधिपत्य च वेदशास्त्रविदर्हति॥ (मनु० १२।१००)

व्यवस्थितार्यमर्यादा कृतवर्णाश्रमस्थिति।
त्रय्या हि रक्षिता लोक प्रसीदति न सीदति॥ (कौटिल्य कृत अथशास्त्र)

अत यह कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही हे कि वेद के आधार पर ही एक सुसगत सावभौम वज्ञानिक धम की स्थापना की जा सकती है। भूतकालीन आचाय यदि उपनिषद् के आधार पर साथ देने के लिये तयार है ता सहिता के आधार पर उन्हे एकमत होने मे भी कुछ अधिक कठिनाई नही होगी।

स्वामी विवेकानन्द के उपनिषदो के प्रति विशेष पूर्वाग्रह युक्त होने का कारण है उनका वेदान्ती होना। नवीन अद्वत वेदान्त का सिद्धान्त जितनी सरलता से उपनिषदो से सिद्ध किया जा सकता है उतना सहिताओ से नही। इस तथ्य से अवगत होने के कारण ही विवेकानन्द ने कमकाण्ड कहकर सहिता भाग की उपेक्षा करने की चेष्टा की। उन्होंने अपने एक व्याख्यान मे कहा— वेदो के कमकाण्ड पर हिन्दुओ की वडी श्रद्धा है परन्तु हम जानते है कि युगो तक श्रुति के नाम से केवल उपनिषदो का ही अथ लिया जाता था। हमारे वडे वडे दाशनिको ने व्यास हा चाहे पतजलि या गौतम यहाँ तक कि सभी दशनशास्त्रा के जनकस्वरूप महापुरुष कपिल ने भी जब अपने मत के समथक प्रमाणो का सग्रह करना चाहा तब उनमे से हर एक को उपनिषदा म ही प्रमाण मिले हे और कही नही क्योकि चिरकालिक सत्यसमूह केवल उपनिषदा मे ही है।*

उपयु क्त उद्धरण पर कुछ विचार करना आवश्यक है। वदिक साहित्य के सम्बन्ध मे सबसे बडा भ्रम जो यूरोपीय विद्वानो के द्वारा फलाया गया और जिसके शिकार भारतीय विद्वान् भी हुए हैं वह है सहिता भाग को केवल कमकाण्ड परक और उपनिषदा को केवल ज्ञानपरक मानना। प्रायेण यह समझा गया कि मन्त्र सहिताओ मे प्राकृतिक शक्तियो की स्तुति और याज्ञिक कमकाण्ड का ही वणन है और भारतीय दशन की चिन्तनधारा उपनिषदो मे ही अपने विकास की चरमसीमा तक पहुची है। यहा इतना स्थान नही है कि सहिता भाग के प्रतिपाद्य विषय की गम्भीर मीमासा की जा सके और उसमे

---

* *भारत मे विवकानन्द—पृ० ४१२*

व्यक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक भावों का सूक्ष्म विवेचन किया जा सके परन्तु यह भी लिख देना आवश्यक है कि उपनिषदों के दार्शनिक चिन्तन का मूलाधार भी वेद संहितायें ही हैं। श्रुति का प्रयोग उपनिषदों के लिये शंकराचार्य आदि वेदान्ताचार्यों ने किया और उसका भी एक विशेष कारण था। वेदान्त सूत्रों में उपनिषदों के आपाततः विरोधी दीखने वाले सिद्धान्तों की सामञ्जस्यपूर्ण संगति लगाई गई है और इसी वेदान्त दर्शन के आधार पर शंकर रामानुज मध्व निम्बार्क और वल्लभ आदि मध्यकालीन विभिन्न धर्माचार्यों ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या की। अतः उपनिषदों को श्रुति अर्थवाद की दृष्टि से ही कहा जा सकता है।

लगभग इसी प्रकार के विचार स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक अन्य भाषण में भी व्यक्त किये। वहाँ उन्होंने कहा—वेद के संहिता और ब्राह्मण भागों की महिमा मानव जाति के इतिहास की खोज लगाने वालों के लिये और शब्द शास्त्रियों के लिये चाहे जितनी अधिक हो **अग्निमीळे या 'इषे त्वोर्जे त्वा' या 'शन्नो देवीरभिष्टये** वेद मन्त्रों से विभिन्न वेदियों यज्ञों और आहुतियों के संयोग से प्राप्य फलसमूह चाहे जितना वाँछनीय हो पर यह सब तो भोगमार्ग है और किसी ने भी उसके द्वारा मोक्ष प्राप्ति का दावा नहीं किया। इसी कारण ज्ञानकाण्ड जो आरण्यक नामक श्रुति का श्रेष्ठ भाग है और जिसमें आध्यात्मिकता की मोक्षमार्ग की शिक्षा दी गई है उसीका प्रभुत्व भारत में आज तक रहा है तथा भविष्य में भी रहेगा।*

यहाँ तो मन्त्र संहिता के विषय में उनके विचार अतिवादिता की सीमा तक पहुँच गये हैं। यूरोपीय विद्वानों के स्वर में स्वर मिलाकर वे संहिता भाग की उपयोगिता केवल इतिहास और भाषाशास्त्र की दृष्टि से ही मानते हैं परन्तु क्या यह सर्वथा सत्य ही है कि वैदिक संहिताओं का अध्यात्म ज्ञान की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं? विवेकानन्द के उपर्युक्त कथन से सहमत होना कठिन है।

---

* *हिन्दू धर्म के पक्ष में—पृ० ४*

उपनिषद् और आरण्यक के प्रमाण से भी यह कहा जा सकता है कि समस्त वेद उसी चरम तत्त्व का व्याख्यान करते है जिस तक पहुँचने के लिये तपस्याचरण किया जाता है।* तब संहिताओ का महत्व कम करना और उपनिषदो तथा आरण्यको को अनावश्यक रूप से गौरवान्वित करना कहाँ तक उचित माना जा सकता है ?

इस प्रकार हम देखते है कि स्वामी विवेकानन्द वेदो के नित्यत्व और अपौरुषेयत्व को स्वीकार करते हुए भी वेद के संहिता भाग को केवल कर्मकाण्ड-परक मानने के कारण उसे हेय दृष्टि से देखते है और उपनिषद् एव आरण्यको को ज्ञानकाण्ड प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ मान कर उनको असीम गौरव प्रदान करते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द अनेक सुपुष्ट प्रमाणो से यह सिद्ध करते हैं कि संहिता भाग ही वास्तव मे वेद शब्द से अभिहित हो सकता है उपनिषद् तो ब्राह्मण ग्रन्थो के ही भाग हैं और ब्राह्मणो का ऋषिप्रोक्त होना स्वत सिद्ध है। ऐसी स्थिति मे उन्हे स्वत प्रमाण नही माना जा सकता। वेदानुकूल होने से ही उनकी प्रामाणिकता स्वीकार की जा सकती है।†

स्वामी विवेकानन्द के विचार यही तक सीमित नही रहते। कही कही भावावेश मे आकर उन्होने ऐसी बाते भी कही और लिखी जो उनकी पूर्व कथित विचार शृंखला से सर्वथा विरुद्ध पडती है। जैसा कि हम निम्न उद्धरणो मे देखेंगे वे ईश्वरीय ज्ञान की संज्ञा से विभिन्न मत-सम्प्रदायो के ग्रन्थो को भी अभिहित करने के लिये तयार है। उन्हे बाइबिल और कुरान को भी ईश्वरीय ज्ञान कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही है। यो देखा जाय

---

* सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि॥

—कठोपनिषद्

† नतेषां वेदवत्प्रामाण्यं कर्तुं योगमस्ति कुत ?
ईश्वरोक्ताभावात्तदनुकूलतयैव प्रमाणार्हत्वाच्चेति।
ऋ० भा० भू०—पृ० ११५

तो ससार के समग्र ज्ञान विज्ञान का मूल वेद ही है और बाइबिल और कुरान मे भी यत्किञ्चित् बुद्धि और तर्क से ग्राह्य होने वाली जो बात लिखी गई है व वेदानुकूल होने से ग्राह्य ही है। फिर भी वेद की इयत्ता को स्थापित करना ही पडेगा। और इसी दृष्टि से विवेकानन्द का निम्न मत हमे आक्षेप योग्य प्रतीत होता है जब वे कहते है— क्या ईश्वर का ग्रन्थ समाप्त हो गया ? अथवा अभी भी वह क्रमश प्रकाशित हो रहा है ? बाइबिल वेद कुरान और अन्य धार्मिक ग्रन्थ समूह मानो उसी ग्रन्थ के विभिन्न पृष्ठ है और उसके असख्य पृष्ठ अभी भी अप्रकाशित है। *

ईश्वर का ग्रन्थ चाहे असमाप्त ही क्यो न हो परन्तु यह तो मानना ही पडेगा कि मनुष्य के लिये जितना आवश्यक और उपयोगी ज्ञान उसे देना था वह दे चुका। यदि यह कहे कि उसने मानव जीवन का हितसाधक सम्पूर्ण ज्ञान अभी नही दिया तो इससे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता पर ही लाञ्छन लगता है और यह मानना तो और भी हास्यास्पद है कि वह अपना ज्ञान समेटिक मतो की धारणा के अनुसार किस्तो मे भेजता है और नवीन इलहाम के साथ साथ पुरानी इलहामी पुस्तक रद्द मान ली जाती है।

अपनी शिकागो वक्तृता मे तो एक बात कहकर स्वामी विवेकानन्द ने वेद की इयत्ता के साथ साथ अपना पूर्व स्वीकृत वेद के ईश्वरोक्त होने के सिद्धान्त पर भी पानी फेर दिया। सम्भवत अमेरिकावासियो के सम्मुख ईश्वरीय ज्ञान को एक पुस्तक विशेष तक ही सीमित कर देना इन्हे अनुचित जान पडा हो। यहा उन्होने कहा— वेद अभिप्राय किसी पुस्तक विशेष से नही है। वेद का अर्थ है भिन्न भिन्न व्यक्तियो द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक तत्वो का सचित कोश। † इस कथन पर विस्तृत टिप्पणी करने की अपेक्षा यही लिख देना अल होगा कि यह बात कहने मे चाहे जितनी सुन्दर प्रतीत हो परन्तु भारतीय धर्म परम्पराओ की दृष्टि से उसका तात्त्विक मूल्य शून्य के बराबर है। वेद

---

* *शिक्षा—पृ० ३७*

† *शिकागो वक्तृता—पृ० २*

का अभिप्राय आप पुस्तक से ल या विद धातु के अनुसार ज्ञानमात्र से परन्तु हमारे शास्त्र उस भिन्न भिन्न व्यक्तियो द्वारा आविष्कृत मानने की अपेक्षा ईश्वरीय ज्ञान मानना अधिक समीचीन समझते है। या तो ससार मे जिन-जिन महापुरुषो ने जो आध्यात्मिक तत्व जनता के सम्मुख प्रस्तुत किये है यदि उनमे कुछ भी सत्यता है तो वह वेदमूलक ही है। पर तु फिर भी वद की इयत्ता स्थापित करनी ही पडेगी और वह ऋग यजु साम और अथव से अभिहित होने वाली म त्र-सहिताओ तक ही सीमित रहेगी

वेद श द स सहिता मात्र का ही अभिप्राय लिया जाना चाहिये यह ऊपर के विवेचन से सिद्ध हुआ। अब वेद के सर्वोपरि प्रमाण माने जान और अ यान्य ग्र थो के तदनुकूल होने पर ही प्रामाणिक समझे जाने के सिद्धान्त का विचार करना आवश्यक है। इस विषय के प्रारम्भ मे ही यह लिख देना उचित है कि वद के स्वत प्रमाणत्व और अ या य ग्र थो के परत प्रमाणत्व का सिद्धा त इस देश मे अत्य त पुरातन काल से ही प्रचलित है। शास्त्रो मे जहाँ परस्पर विरोध का प्रसग उत्पन्न हुआ है वहाँ श्रुति का गौरव सर्वोपरि समझा जाता है। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने जाबाल का प्रमाण दते हुये लिखा है—**श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।*** अर्थात् श्रुति और स्मृति का विरोध उपस्थित होने पर श्रुति को ही प्रमाण माना जायगा स्मृति को नही। शता दियो से शास्त्रविषयक यह मर्यादा अद्यतन चली आ रहा है।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ग्र थ के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय के अ तगत इस विषय की मीमासा करते हुये आचाय दयान द ने लिखा, '**य ईश्वरोक्ता ग्र थास्ते स्वत प्रमाण कतु योग्या स ति ये जीवोक्तास्ते परत प्रमाणार्हाश्च। ईश्वरोक्तत्वाच्चत्वारो वेदा स्वत प्रमाणम्। कुत ? तदुक्तौ भ्रमादिदोषाभावात् तस्य सवज्ञत्वात् सवविद्यावत्वात् सवशक्तिमत्वाच्च।**" अर्थात् जो ईश्वरोक्त ग्र थ है वे ही स्वत प्रमाण मानने योग्य है और जो मनुष्योक्त है वे परत

---

* *मनुस्मति पर कुल्लूकभट्ट की टीका—२।१३*

प्रमाण है। ईश्वरोक्त होने से चारो वेद स्वत प्रमाण हैं क्योकि वे भ्रमादि दोष स रहित सर्वज्ञ सर्वविद्या निधान सर्वशक्तिमान परमेश्वर प्रणीत है।

अब वेदो के ईश्वरोक्त होने और तदनुसार उनके स्वत प्रमाण होने मे हेतु की जिज्ञासा हो तो स्वामी दयानन्द उन्हे सूर्य अथवा प्रदीप के तुल्य स्वत प्रमाण मानते हैं। जसे अपने सम्मुख प्रकाशित सूर्य या दीपक को सिद्ध करने के लिये अन्य प्रमाण जुटाने की आवश्यकता नही रहती इसी प्रकार परमेश्वरोक्त वेदो को भी अपने प्रमाण के लिये अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नही हैं। **तत्र वेदेषु वेदानामेव प्रामाण्य स्वीकार्य सूर्यप्रदीपवत्। यथा सूर्य प्रदीपश्च स्वप्रकाशेनव प्रकाशितौ सवमूर्तद्रव्यप्रकाशकौ भवत तथव वेदा स्वप्रकाशेनव प्रकाशिता सन्त सर्वानन्यविद्याग्रन्थान् प्रकाशयन्ति'*** अर्थात् वेदा के स्वत प्रमाणत्व मे सूर्य या दीपक का दृष्टान्त लेना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य या दीपक अपने प्रकाश से ही प्रकाशित होकर सब मूर्त पदार्थों के प्रकाशक होत हैं उसी प्रकार वेद अपने हो प्रकाश से प्रकाशित होकर अन्य विद्या ग्रन्थो को प्रकाशित करते है।

पुन अन्यान्य ग्रन्थो के विरुद्ध होने पर उनकी अप्रमाणिकता पर स्वामी दयानन्द ने लिखा **ये ग्रन्था वेदविरोधिनो वर्तन्ते, नव तेषा प्रामाण्य स्वीकर्तु योग्यमस्ति। वेदाना तु खलु अन्येभ्यो ग्रन्थेभ्यो विरोधादप्यप्रामाण्य न भवति। तेषा स्वतप्रामाण्यात्तद्भिन्नाना ग्रन्थाना वेदाधीनप्रामाण्याच्च।"** अर्थात् जो ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं उनका प्रमाण स्वीकार करना उचित नही। और वेदो का अन्य ग्रन्थो के साथ विरोध भी हो तब भी अप्रमाण नही हो सकता क्योकि वे तो स्वत प्रमाण है और उनसे भिन्न ग्रन्थो की प्रामाणिकता वेदो के अधीन है।

यह है वह मूलभूत सिद्धान्त जिसकी सहायता से ग्रन्थो के प्रामाण्या-प्रामाण्य का विचार किया जाता है। वदिक परम्परानुमोदित इस प्राचीन

---

* *ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका—प० ३७१। तुलना करो "महत ऋग्वदादे शास्त्रस्यानेकविधविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थाविद्योतिन" —शांकर भाष्य (ब्रह्मसूत्र १।१।३)*

सिद्धान्त को स्वामी दयान द ने एक बार पुन दृढता से स्थापित किया। केवल स्थापित ही किया हो सो बात नही इसी कसौटी के आधार पर उन्होने शतश तथाकथित धमग्र थो की परीक्षा की और उ हे वेदानुकूल होने से प्रमाण और वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण घोषित किया। यहाँ इस सिद्धान्त पर अधिक ऊहापोह करने का अवकाश न होते हुए भी यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि आयपरम्परानुमोदित शास्त्र प्रमाण के इस विचार से कोई सनातन वेद धर्मावलम्बी विमुख नही हो सकता।

स्वामी विवेकान द के ग्र थो से एक नही अनेक ऐसे स्पष्ट उद्धरण दिये जा सकते है जो वेद की स्वत प्रामाणिकता और अ या य स्मृति पुराणादि की परत प्रामाणिकता सिद्ध करते है। कुछ महत्त्वपूण उद्धरण देखिये। एक स्थान पर वे लिखते है— सभी समय के लिये वेद ही अ तिम ध्येय और प्रमाण हैं और यदि किसी विषय पर पुराणो का वेदो से मतभेद हो ता पुराणो के उस भाग को बिना किसी हिचकिचाहट के एकदम अस्वीकृत कर देना होगा। वेद सवकालीन सव यापी और सावदेशिक है। *

वार्तालाप के प्रसग मे उ होने यही बात कही— वेदो को छोडकर अन्य सारे शास्त्र युग भेद से बदलते रहते है। पर तु वेदो का शासन नित्य है। अन्य शास्त्रो का शासन तो कालविशेष की सीमा के भीतर ही क य करता है'† इसी प्रसग मे उ हाने आगे कहा— वेद ही एकमात्र प्रमाण है। पुराणादि अ यान्य शास्त्र वही तक ग्राह्य है जहा तक वे वेद के अविरोधी है।'‡

मदुरा मे दिये गये अपने एक भाषण मे उ होने कहा सब समय वेद ही हमारे चरम लक्ष्य और मुख्य प्रमाण रहे हैं। यदि किसी तरह पुराणो का

---

* जाति सस्कृति और समाजवाद पृ० १७

† स्वामी विवकान द से वार्तालाप पृ० ६४

‡ स्वामी विवेकान द से वार्तालाप पृ० ६४

कोई हिस्सा वेदा के अनुकूल न हो तो निदयतापूवक उतने अश का त्याग कर देना चाहिये। * कुम्भकोणम् मे दिये भाषण का एक अश भी यही अभिप्राय व्यक्त करता है— वेद चिरकालिक सत्य होने के कारण सदा समभाव मे विद्यमान रहते हैं किन्तु स्मृतियो की प्रधानता युग परिवतन के साथ ही जाती रहती है। † श्रुति की गुरुता का उल्लेख करते हुए उ होंने कहा— 'यह शास्त्र का नियम हैं कि जहा श्रुति एव पुराण और स्मृति मे मतभेद हो वहा श्रुनि क मत को ग्राह्य और स्मृति के मत को परित्याग करना चाहिये।" ‡

उपयु क्त उद्धरण इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि स्वामी विवेकानन्द वेद के प्रमाण के विषय मे सनातन वदिक सिद्धान्त को ही स्वीकार करते थे पर तु मध्यकालीन युग मे वेद का यह महत्त्व केवल कथन मात्र के लिये ही रह गया। हमारे समस्त आचार विचार जहाँ वेदो के द्वारा नियत्रित होने चाहिये थे वहाँ उनका स्थान अनेक रूढियो और अ धविश्वासो ने ले लिया। हम गतानुगतिकता और रूढिवादिता के क्रीत दास बन गये। विवकान द ने अपने एक भाषण मे कितना सत्य कहा है— पुराण त त्र और अ यान्य ग्र थ समूह यहाँ तक कि व्याससूत्र भी गौण हैं—हमारे मुख्य प्रमाण वेद हैं। म वादि स्मृतियो और पुराणो का जितना अश उपनिषदो (वेदो) से मेल खाता है उतना हा ग्रहण योग्य है यदि वे बखेडा करें तो उ हे निदयता-पूवक छोड देना चाहिये। हमे यह सदा स्मरण रखना होगा पर तु भारत के दुर्भाग्य के कारण वतमान समय मे हम यह बिलकुल भूल गये हैं। इस समय छोट छोटे ग्राम्य आचारो को उपनिषदो के उपदेश का आसन मिल गया है।'×

---

* भारत मे विवकानन्द प० ९५

† भारत में विवकानन्द प० ९५

‡ भारत मे विवकान द प० १७४

× भारत मे विवकाव द प० ३१६

ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण से यदि उपयुक्त कथन मे कुछ सशोधन होना चाहिये तो वह यही कि उपनिषदो के स्थान पर वेदो का नाम रख दिया जाय क्योकि उपनिषदें भी तो ऋषिप्रोक्त होने के कारण अपनी प्रामाणिकता के लिये वेदानुकूल होने की अपेक्षा रखती हैं।

वेद प्रमाण को पुन प्रतिष्ठित करने की कामना दयानन्द और विवेकानन्द के जीवन मे सदा जाग्रत रही। दयानन्द का सम्पूण जीवन ही इस प्रयत्न के लिये लगा। उनकी वाणी और लेखनी से वेद के गौरव और महत्त्व का आजीवन गुणगान होता रहा। विवेकानन्द के एक व्याख्यान मे भी हमे उनकी वेद विषयक हार्दिक कामना की एक झलक दृष्टिगोचर होती हे। उन्होने कहा स्मृति पुराण तन्त्र वही तक ग्राह्य है जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करत हैं। ऐसा न होने पर व अग्राह्य हैं। किन्तु आजकल हम लोगो न पुराण को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हू जिस दिन प्रत्येक घर मे शालिग्राम की मूर्ति के साथ आबाल वृद्ध वनिता वेद की पूजा करते दृष्टिगोचर होगे। * तथ्य यह है कि शालिग्राम शिला की प्रतिष्ठा तो घर घर है परन्तु वेद की पूजा मे अभी विलम्ब ही है।

पुराणो की सृष्टिक्रम विरुद्ध अवज्ञानिक और युक्ति एव तक से असिद्ध बाते हमारे लिये अस्वीकरणीय है क्योकि वे वेद से भी विरुद्ध पडती हैं। उदाहरण देते हुये विवेकानन्द ने एक स्थान पर कहा पुराणो मे ऐसी अनेक बातें हैं जिनका वेदा के साथ मेल नही खाता। जसे पुराणो मे लिखा है कोई दस हजार वष और कोई बीस हजार वष जीवित रहता है किन्तु वेदो मे लिखा है—**'शतायुर्वैपुरुष** इस मतभेद मे वेद ही ग्राह्य है।'†

स्मृतियो के वाक्यो की प्रामाणिकता के लिये जिस प्रकार उनका वेदो से अविरुद्ध होना आवश्यक है उसी प्रकार ऋषि महर्षियो और आप्त पुरुषो के

---

* भारत मे विवकानन्द पृ० ४९५

† भारत मे विवेकानन्द पृ० ४९५

वचनो की मान्यता भी उनके वेदानुकूल होने के कारण ही है। स्वामी दयानन्द अपने मत को ब्रह्मा से लेकर जमिनि मुनिपयन्त ऋषियो द्वारा मान्य सिद्धान्त कहा करते थे* परन्तु इन ऋषियो का मत भी वेद से ही पुष्ट प्रमाणित और स्वीकृत होता था और इसीलिये उसकी मान्यता थी। वेद के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति का मत ग्राह्य नही हो सकता चाहे वह कितना ही महान् क्यो न हो? यही बात विवेकानन्द ने भी कही हमारा धम व्यक्ति विशेष के ऊपर नही किन्तु सनातन सिद्धान्तो पर प्रतिष्ठित हे कृष्ण के वचनो से वेदो की प्रामाणिकता सिद्ध नही होती किन्तु वे वेदो के अनुगामी हे इसी से कृष्ण के व वाक्य प्रमाण स्वरूप है। कृष्ण वेद के प्रमाण नही है किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण हैं। कृष्ण का माहात्म्य यही है कि वेदो के जितने प्रचारक हुये हैं उनमे सवश्रेष्ठ वे ही हैं। अन्यान्य महर्षियो के सम्बन्ध मे भी यही समझिये। हम आरम्भ से ही यह स्वीकार कर लेते है कि मनुष्यता की प्राप्ति क लिये जो कुछ आवश्यक है उसका वणन वेदो मे है। †

उपयुक्त उदाहरण देन का प्रयोजन केवल इतना ही है कि वेद के स्वत प्रमाण होन के सम्बन्ध मे दोनो आचार्यो की धारणाय स्पष्ट हो सक। विवेकानन्द की इन स्पष्टोक्तियो के रहते हमारे मन मे तनिक भी यह सन्देह उत्पन्न नही हो सकता कि वेदो के विषय मे उनकी कुछ अन्यथा सम्मति भी हो सकती है। परन्तु कही कही वे ऐसी बाते भी लिख गये हैं जिनसे विदित होता है कि वेद प्रमाण की सीमा रेखा की कल्पना भी उनके मन मे थी। और यही स्वामी दयानन्द से उनका मतभेद भी उत्पन्न हो जाता है। स्वामी दयानन्द की दृष्टि मे वेद के प्रमाण की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। वह सवदा सव कालो मे प्रमाण हैं क्योकि इनमे ईश्वरीय नियमो एव युक्ति तथा तक से विरुद्ध कुछ भी नही है। परन्तु विवेकानन्द ने एक प्रसग

---

* *स्वम तव्यामन्तव्य प्रकाश*

† *भारत मे विवेकानन्द पृ० २०२*

मे कहा मैं वेद का उतना ही अश मानता हू जितना युक्ति सगत है। वेद के अनेक अश तो स्पष्ट रूप स स्वविरोधी है। * यदि यही बात स्वामी दयानन्द से कही जाती तो वे उसके उत्तर म कहते मैं वेद को सर्वांश मे सत्य मानना हू क्योकि वह सम्पूणतया युक्ति सगत है। उसमे स्वविरोध की तो कोई बात ही नही है। स्वामी विवेकानन्द ने वेद पर वदतोव्याघात (Self Contradiction) का दोष तो लगाया परन्तु अपने कथन की सिद्धि मे प्रमाण एक भी नही दिया। ऐसी स्थिति म उनके कथन का क्या मूल्य हो सकता है यह **स्पष्ट है।**

एक अन्य प्रसग मे भी वे वेद प्रमाण की सीमा रेखा का उल्लघन करते हुये प्रतीत होते है। उन्होने कहा वेद कहते है कि वे केवल असिद्ध व्यक्तियो के लिये लिखे गये है। सिद्धावस्था मे वेदो की भी सीमा के पार जाना पडना है। † यहाँ इतना ही निवेदन है कि वद यह कहा कहता कि वे केवल असिद्ध व्यक्तियो के लिय लिख गये है। यदि वस्तुत उनका प्रयोजन असिद्ध व्यक्तियो के लिये ही होता तो महासिद्ध कपिल व्यास पतजलि आदि उनके गौरव के सम्मुख नतशिर क्यो होत और क्यो धमशास्त्रकार मनु उनके माहात्म्य का बखान करते? सिद्धावस्था मे वदो की सीमा के पार जाने की बात तो अन्यत्र भी आई है। परन्तु इसस यही क्यो समझा जाय कि सिद्ध पुरुष निश्चय ही वेदमर्यादा का उल्लघन करने म ही अपना गौरव समझते है। यह सत्य है कि आध्यात्मिक क्षत्र मे चरमतत्त्व का साक्षात्कार कर लेने के उपरान्त सिद्धपुरुष के लिये कोई प्रयोजन शेष नही रहता फिर भी ईश्वरीय आज्ञा के लिये उसके हृदय मे नि शेष श्रद्धा तो रहेगी ही वह अध्यात्मज्ञान के भण्डार वेदो की उपेक्षा कसे करेगा? अस्तु।

वेद केवल ईश्वरीय ज्ञान ही नही अपितु समस्त ज्ञान विज्ञान के

---

* *विवकानन्दजी की कथाय—प० १२५*

† *स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप—प० ११८*

आदिस्रोत-मूल उत्स है । ससार की विविध लौकिक और आध्यात्मिक विद्याओ का मूल उनमे देखा जा सकता है । आयसमाज के नियमो का निर्माण करते समय स्वामी दयानन्द ने ठीक ही लिखा—वेद सब सत्यविद्याओ का पुस्तक है ।* वेदो के विषय मे यह महत्त्वपूण तथ्य जिस समय दयान द ने ससार के समक्ष प्रस्तुत किया उस समय लोगो का इस पर सहज ही विश्वास नही हो सका । परन्तु स्वामी दयान द ने अपनी इस स्थापना को अनेक प्रमाणो से सिद्ध किया । अपनी वद भाष्यभूमिका मे कुछ अध्याय उन्होने इस विषय के सम्ब ध म लिखे । इन अध्यायो मे जिन प्रमुख वज्ञानिक और सामाजिक-राजनतिक विषयो का वेद के आधार पर विवेचन हुआ है वे निम्न है—सृष्टिविद्या पृथिव्यादि लोकभ्रमण धारणाकषण प्रकाश्यप्रकाशक गणितविद्या नौविमानादि विद्या तारविद्या वद्यकशास्त्र विवाह नियोग राजप्रजाधम वर्णाश्रम आदि आदि । यह सूची पर्याप्त लम्बी है और इससे यह स्पष्ट हो जाता हे कि वेद केवल आध्यात्मिक तत्त्वो का विवेचन करने वाले धार्मिक ग्रन्थ ही नही है अपितु उनमे मानव समाज की हित साधक सभी विद्यायें अपने मूल रूप मे विद्यमान हैं ।

यहाँ हम यह सकेत कर देना भी आवश्यक समझने हैं कि सायण जसे मध्यकालीन भाष्यकार ने भी वेद मे अनेक प्रकार के ज्ञानविज्ञानो का अस्तित्व स्वीकार किया है और दयानन्द के इस मन्तव्य की पुष्टि मे तो प्रसिद्ध योगी अरविंद ने जो कुछ लिखा है उससे अधिक शायद ही कोई लिख सके । दयानन्द के वेद भाष्य पर विस्तार से विचार करते हुए प्रसग वश श्री अरविंद लिखते हैं—‘प्राचीन ससार के विषय मे आजकल के ज्ञान की प्रगति दयान द के विचार को उत्तरोत्तर पुष्ट कर रही है । पुरातन सभ्यताओ मे अवश्य अनेक वज्ञानिक रहस्य थे, जिनमे से कइयो को आधुनिक विद्या ने पुन पाया है तथा विस्तृत अधिक सम्पन्न एव सम्यकतया व्यक्त किया है परन्तु अन्य रहस्य अब

---

* *तीसरा नियम*

भी उसने पाये नही हैं। इस प्रकार दयान द क विचार मे तनिक भी मनमानी काल्पनिकता नही है कि वेदो मे धार्मिक सत्य के समान ही वज्ञानिक सत्य भी निहित हैं। बल्कि मै और यह भी कन्गा कि मेरा विश्वास तो है कि वेदो मे एक दिव्य विज्ञान के अतिरिक्त अन्य सत्य भी है जो वतमान ससार के पास बिलकुल ही नही हैं और तब तो दयान द ने वदिक विद्या की गम्भीरता एव विस्तार के विषय मे अधिक नही किन्तु कुछ कम ही वणन किया है। *

योगिराज की इस प्रशस्त सम्मति के पश्चात् और कुछ लिखना शेष नही रह जाता। इसी प्रसग म स्वामी विवेकान न्द की सम्मति भी द्रष्टव्य है। अपने एक वार्तालाप के प्रसग मे विवेकान दजी ने कहा इस ससार मे ऐसा कोई सत्य या विधि नही है जो वेदो मे न हो। हम आपको आह्वान करते है कि आप ऐसे सत्य को दिखायें जिसकी व्याख्या वेदो मे न हो। † एक अन्य प्रसग मे उन्होने प्रकारान्तर से यही बात लिखी— आर्यो की प्रत्येक विद्या का बीज वेद मे विद्यमान है एव उक्त किसी भी विद्या की प्रत्येक सना वेद से आरम्भ करके वतमान समय के ग्रन्थो मे भी दिखाई जा सकती है। ‡

उपयु क्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्द और विवेकान द समान रूप से वेदो को ससार के समस्त ज्ञान विज्ञान का स्रोत

---

* *There is then nothing fantastic in Dnyanand s idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion I will even add my own conviction that Veda contains other truths of science that the modern world does not at all possesses and in that case Dayanand has rather understated than overstated the depth of the Vedic wisdom–Bankim Tilak Dayanand P 67 1940 ed*

† *स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० ४८*

‡ *चिन्तनीय बात पृ० ५६*

मानते हैं और उनका यह भी दृढ विश्वास है कि विविध विद्याओ का मूल वेदो मे देखा जा सकता है ।

निश्चय ही वेदो के विषय मे स्वामी विवेकानन्द के विचार पर्याप्त रूप मे पुरातन भारतीय परम्पराओ का अनुसरण करते है जिसके फलस्वरूप वे वेदो के अपौरुषेयत्व और ईश्वरीय होने को भी सादर स्वीकार करते है । जब वेद ज्ञान सवज्ञ और पूण परमात्मा की मानव जाति के प्रति एक दिव्य देन है तो उसमे किसी प्रकार की न्यूनता असगति एव बुद्धि एव विज्ञान विरुद्ध बात का होना तो किसी भी प्रकार सम्भव नही हो सकता । यह अत्यन्त सतोष का विषय है कि स्वामी दयानन्द का वेद विषयक सम्पूण विचार इसी धारणा को अपना दृष्टिबिन्दु बनाकर किया गया फलत इन्होने अपने वेद विवेचन मे कोई ऐसी बात नही आने दी जिसे पढकर वेद के प्रति हमारी श्रद्धा कम हो । उनके वेद सम्बन्धी विचार सवत्र पूण सगत और युक्ति एव तक से अविरुद्ध हैं । इसका कारण यह भी था कि दयानन्द सस्कृत और वैदिक साहित्य के प्रौढ विद्वान् थे । इनकी वेद भाष्य भूमिका सस्कृत साहित्य के इतिहास मे एक विशेष स्थान रखती है ।*

परन्तु यह बात स्वामी विवेकानन्द के विषय मे नही कही जा सकती । वेदो क विषय मे सामान्यतया परम्परा भुक्त धारणाओ को व्यक्त करने के उपरान्त भी विवेकानन्द वेदो के तलस्पर्शी विद्वान् नही थे । उनके वेदविषयक विचारो पर पाश्चात्य विद्वानो की धारणाओ का भी पर्याप्त प्रभाव पडा था जिसके कारण अनेक स्थानो पर वे ऐसी बाते लिख गये है जो निश्चय ही वेद के गौरव को कम करने वाली तो हैं ही साथ ही लेखक के विचारो मे परस्पर

---

* *We may divide the whole of Sanskrit literature beginning with the Rigveda and ending with Dayanand s Rigveda-bhumika into two great periods F Maxmuller India what can it teach us ? P 85*

विरोध की भी सूचक हैं । हम सक्षिप्त आलोचनात्मक टिप्पणी के साथ विवेकानन्दजी की इन धारणाओ की चर्चा करेंगे ।

अपने एक वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने कहा बहुत से ऐसे मन्त्र हैं जो ईश्वर प्रसूत नही माने जा सकते हैं क्योकि व मानव जाति को प्राणिमात्र को पीडा पहुचाने के लिए अनेक प्रकार के अशुद्ध कर्मो का विधान करते हैं । * यहाँ वे एक बहुत बडी गलतफहमी के शिकार हुये हैं । प्राणि मात्र को पीडा पहुचाने वाले अशुद्ध विधाना से उनका तात्पय उन हिंसापूण यज्ञो से हैं जिनके विषय मे कहा जाता है कि वेदो मे जिनके करने की आज्ञा है । और ऐसे हिंसा प्रधान अशुद्ध विधानो का उल्लेख करने वाले मन्त्रा को ईश्वरीय मानने से उन्हे स्पष्ट इन्कार है । परन्तु यह तक तो किसी चार्वाक मतानुयायी का हो सकता है न कि वेद मे आस्था रखने वाले किसी वेदान्ती सन्यासी का । यदि वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो भला उसमे ऐसे विधान कसे हो सकते हैं जो प्राणि हिंसा को विहित मानते हो । कठिनाई केवल वेद के अथ को समझने की है । जिन मन्त्रो मे उन्हे ऐसी बात दीख पडी उस पर उन्होने विशेष विचार नही किया अन्यथा प्राणिमात्र के प्रति मत्री का उपदेश देनेवाला वेद पशुहिंसा का विधायक कदापि नही हो सकता ।

इसी भयकर भ्रम मे पडकर विवेकानन्द ने अपने एक भाषण मे एक और भ्रमोत्पादक बात कही । उन्होने कहा— इसी भारत मे कभी ऐसा समय था जब कोई ब्राह्मण बिना मास खाये ब्राह्मण न रह जाता था तुम वेद पढो देखोगे जब सन्यासी या राजा मकान मे आता था तब किस तरह और कसे बकरो और बलो के सिर धड से जुदा होते थे ।'† सम्भव है मध्यकालीन युग मे कोई समय ऐसा रहा हो जब ब्राह्मणो मे मासाहार का दुगुण अनिवायत आ गया हो परन्तु अथिति सत्कार के लिये बकरे और बलो की हत्या का

---

* *स्वामी विवकानन्दजी से वार्तालाप पृ० ४७*

† *स्वामी विवकानन्दजी से वार्तालाप पृ० ४८*

विधान वद म है यह लिख कर तो विवकान द ने वेदो पर भयकर आघात किया है और यह आघात उन चार्वाक जन ओर बौद्ध आदि वेद के विरोधी लोगो द्वारा किये गय आघात से किसी प्रकार भी कम नही हे । यदि वेद मे यही बात हैं तो उनके प्रति जन साधारण म श्रद्धा के भाव कसे जाग्रत हो सकते हैं ? यहाँ यह लिख देना अप्रासगिक न होगा कि स्वामी दयान द ने वेद को पशु हिंसा के आरोप से सवथा पृथक रक्खा । सम्भवत वदिक आचार्यों की परम्परा म दयान द ही प्रथम महामानव थे जि हाने वदिक यज्ञो के पूणतया अहिंसक होने का प्रतिपादन किया और शताब्दिया से मूक पशुओ के रक्त से रजित यज्ञवदी को शुद्ध करन की चेष्टा की ।

इस प्रसग म विवेकान दजा न एक बात और कही— कुछ म त्रो मे तो हास्यास्पद कथाय भा वर्णित है । * वक्ता का सकेत वेदवर्णित किन हास्यास्पद (?) कथाओ की ओर है यह तो तभी जाना जाता जब कि वे कुछ निश्चित उदाहरण देते । उसके अभाव म हम यही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि यह कथन भी पाश्चात्या के प्रमादग्रस्त आक्षपो के आधार पर ही किया जाना है जा स्वय वद के निगूढ तत्व को समझने मे सदा असमथ रहे । यदि किसी तथाकथित हास्यास्पद कथा का उल्लेख किया जाता तो उस पर विचार हो सकना था ।

यहाँ एक अ य महत्त्वपूण प्रश्न पर विचार करना भी असमीचीन न होगा । वेदा मे विभिन्न देवताओ के स्तुतिपरक म त्रो का सग्रह किया गया है । परन्तु यदि तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो विभिन्न देवताओ की स्तुति मे उसी एक परमात्म देव की स्तुति दीख पडेगी जिसके लिये स्वय वेद ने ही कहा है— **एक सद् विप्रा बहुधा वद त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु** । † परमात्मा की एक दिव्य शक्ति को ही बुद्धिमान् लोग अग्नि यम मातरिश्वा

---

* भारत मे विवकानन्द पृ० ९५

† ऋग्वद १।१६४।४६

आदि विभिन्न नामो से पुकारते हैं। आचाय यास्क ने भी यही बात अपन निरुक्त नामक ग्रथ मे लिखी— **माहाभाग्यात् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति"*** अर्थात् एक परमात्मा दवता ही विभिन्न प्रकार से स्तुत होता है। वदिक एकेश्वरवाद के साधक इन प्रमाणो की विद्यमानता म आचाय दयानन्द ने अपना यह सुप्रसिद्ध मन्त यक्त किया कि वेदो मे जिन विभिन्न देवताओ की स्तुति की गई है वह एकमात्र पूजनीय परमात्मा की ही स्तुति है। अग्नि वायु इन्द्र आदि नाम प्रकारान्तर से परमेश्वर के ही विभिन्न गुणवाचक नाम है और वेदा को बहुदेववादी कहना वेद के प्रति अपने अज्ञान का प्रदशन करता है।

दयानन्द का मत वस्तुत एक अत्यन्त क्रातिकारी सिद्धान्त था क्याकि यूरोपीय विद्वानो का सम्पूण परिश्रम वेदो की बहुदेववादी व्याख्या करने म ही लगा था। यहाँ हमे पुन श्री अरविंद की कुछ पक्तियाँ उद्धत करने के लिये विवश होना पडता है क्योकि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वदिक एकेश्वरवाद को इतनी भावपूण श्रद्धाजलि यागी अरविंद के अतिरिक्त और कौन दे सकता था? उन्होन लिखा वद की ऋचाओ मे एक ही परम देवता के गीत गाये गये हैं। अनेक नामो द्वारा ऐसे अनक नामा द्वारा जो कि प्रयुक्त किये गये हैं और इसी अभिप्राय और उद्दश्य से सोच विचार कर प्रयुक्त किये गये हैं कि उस एक देव के भिन्न भिन्न गुणो तथा शक्तिया का वणन करें। क्या दयानन्द का यह विचार उसकी मनमानी घडन्त था जो कि उसकी अपनी ही अति चतुराइ पूण कल्पना द्वारा उपस्थित किया गया था? कभी नही यह तो स्वय वेद का ही सुस्पष्ट वचन है—

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

---

* *निरुक्त अ० ७। ख० ४*

श्री अरविन्द ने केवल यह प्रसिद्ध प्रमाण देकर ही अपने विवेचन को समाप्त नही कर दिया। उन्होने पाश्चात्य विद्वानो की इस धारणा का भी सप्रमाण खण्डन किया कि यह वेद मन्त्र पीछे की रचना है। उनका तात्पय यह है कि यह मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का है जो उनके मत मे अन्याय मण्डलो की अपेक्षा नवीन हे—अथवा एकेश्वरवाद विषयक यह विषयक यह विचार उन्होने अपने शत्रु द्राविडो से लिया। इसी प्रसग मे श्री अरविंद ने मैक्समूलर आदि पाश्चात्यो द्वारा आविष्कृत उस तथाकथित एक देव प्रधान (Henotheism) वाद की भी आलोचना की है और निष्कष रूप मे अपनी सुस्पष्ट सम्मति व्यक्त करते हुए लिखा— पर क्यो न वदिक विचार के आधार को स्वाभाविक एकेश्वरवाद (Monotheism) ही माना जाय इस नये निकाले भयकर हीनोथीइज्म (Henotheism) की जरूरत ? और स्वय ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मानो पाश्चात्य मनीषियो के मन के कलुष को उभारकर रख देते है— इसलिये क्योकि प्रारम्भिक असभ्य लोग इस प्रकार के ऊचे विचारो तक नही पहुच सकते थे और यदि उन्हे वहाँ तक पहुचा हुआ मान लिया जाय तो हमार विकासवाद द्वारा अनुमित मानवीय उन्नति की क्रमिक अवस्था के सिद्धान्त पर पानी फिर जाता है और वेद मन्त्रो के आशय के बारे मे तथा वेदो का मनुष्य जाति के इतिहास मे जो स्थान है उसके बारे मे जो हमने विचार बताया है वह सबका सब नष्टभ्रष्ट हो जाता है।'

और यहा पाश्चात्यो के इस पक्षपातपूण तक के प्रति योगी का सात्त्विक रोष उमड पडता है। उनकी वाणी गजना कर उठती है— सत्य को चाहिये वह अपने आप को छिपा ले साधारण समझ को भी चाहिये वह बीच मे रोडा न बनकर एक तरफ हो जाय जिससे कि उनकी एक थ्योरी एक वाद फल फूल सके! यही मतलब हुआ न ? मैं यहाँ पूछता हू खास इस मुद्दे पर पूछता हू और यह मुद्दा आधारभूत मुद्दा है कि कौन यहाँ मूल वेद के साथ बिना तोड मरोड के सीधे और साफ तौर पर बरत रहा है। दयानन्द या योरोपियन विद्वान् ?

लम्बे उद्धरण के लिये पाठक क्षमा करें। ऐसा किये बिना दयानन्द द्वारा प्रचारित वदिक एकेश्वरवाद का स्वरूप भी स्पष्ट नही होता। परन्तु विवेकानन्द ने वेदो को बहुदेववादी ही माना है। एक स्थान पर वे लिखते है— स्तोत्रो मे भिन्न देवो की स्तुतिया है—ये देव अनेक है। उनमे से एक हैं इन्द्र दूसरे वरुण मित्र पर्जन्य आदि। * यह बात भी नही कि विवेकानन्द वेदो के एकेश्वरवादी स्वर से अपरिचित हो। इसी प्रसग मे उन्होने लिखा सम्पूर्ण सहिताओ मे उनके आदिम और अत्यन्त पुराने भाग मे यह एकेश्वर-वाद सम्बन्धी विचार आया है। †

वदिक देवतावाद विषयक एक जटिल सयस्या और है—देवताओ के स्वरूप की। पाश्चात्य विद्वानो ने वदिक देवताओ का अध्ययन किया और उनके विषय मे अनेक ऊटपटाग बातें लिखी। पाश्चात्यो की दृष्टि मे प्रत्येक देवता की कुछ निजी विशेषताय है। इन देवताओ की पूजा मे मास और सुरा (सोम) का प्रयोग होता था। विवेकानन्द के इस सम्बन्ध के विचार सुनिये— वे (आय) यज्ञवेदी बनात है पशु की बलि दकर उसके पके मास का नवेद्य इन्द्र को अपण करते है। ‡

सोमरस नशीला होता था। कभी कभी वे इसे कुछ अधिक पी लेते थे और इसी तरह देवता लोग भी। किसी-किसी समय इन्द्र नशे मे चूर हो जाते थे। कुछ ऋचायें ऐसी भी मिलती है कि इन्द्र एक बार इस सोम को बहुत अधिक पी गये और असम्बद्ध बातें करने लगे। × यही बात उन्होने अपने ज्ञानयोग नामक ग्रन्थ मे भी लिखी है— वेद मे वणन आता है कि कभी कभी

---

* *हिन्दूधम पृ० ३०*

† *हिन्दूधम पृ० ४०*

‡ हिन्दूधम पृ० ३१

× *हिन्दूधम पृ० ३१*

इन्द्र इतना मद्यपान कर लेता था कि वह बेहोश होकर गिर पडता था और अण्डबण्ड बकने लगता था। *

यदि वैदिक देवताओ का यही स्वरूप है कि जिसे विवेकानन्दजी ने अपने ग्रन्थ मे चित्रित किया है तो वह हमारे लिये बहुत अधिक स्पृहणीय नही है। वेदकालीन आचार व्यवस्था का जो विवरण विवेकानन्दजी ने प्रस्तुत किया है वह भी इसी कोटि का है। ज्ञानयोग मे ही वे अन्यत्र लिखते है— उस समय भले बुरे की कोई धारणा ही नही थी। हम जिन्हे बुरा कहते हैं ऐसे बहुत से कार्य देवता लोग करते थे हम वेदो मे देखते है इन्द्र तथा अन्य देवता अनेक बुरे कार्य करते थे किन्तु इन्द्र के उपासको की दृष्टि मे पाप या बुरा काम कुछ भी नही था। इसलिये वे इस सम्बन्ध मे कोई प्रश्न नही करते थे। † वेदकालीन समाज की आचार व्यवस्था का जो चित्र उपर्युक्त पंक्तियो मे अंकित किया गया है वह केवल कथन मात्र ही है क्योकि जब तक उसकी सिद्धि मे वेदमन्त्रो के प्रमाण प्रस्तुत नही किये जाते तब तक उस पर कोई टिप्पणी करना उचित नही।

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा प्रचारित वेदविषयक एक और भ्रान्त धारणा को विवेकानन्द ने अपने ग्रन्थो मे स्थान दिया है। वैदिकस्वर्ग‡ का वास्तविक स्वरूप क्या है इसे बताने का यहाँ स्थान नही है परन्तु इसके सम्बन्ध मे विवेकानन्दजी की सम्मति सुनिये। अपने एक ग्रन्थ मे उन्होने लिखा— वेद के संहिताभाग मे अनन्त स्वर्ग का वर्णन है जिस प्रकार मुसलमान और ईसाइयो के धर्म ग्रन्थो मे है। × वैदिक स्वर्ग की ईसाई और मुसलमान आदि

---

* ज्ञानयोग पृ० १०९

† ज्ञानयोग पृ० १०७

‡ इस विषय मे आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार लिखित 'स्वर्ग' पुस्तक पढनी चाहिये।

× व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त पृ० ३९

समटिक मजहबो के जन्नत या बहिश्त से तुलना कितनी विषम है यह लिखने की आवश्यकता नही। परन्तु इसमे लेखक का वास्तविक अभिप्राय यह बतलाना है कि वद म मोक्ष की कल्पना का सवथा अभाव है। तभी तो ज्ञानयोग मे उन्होने लिखा— वद के सहिता भाग मे हम लोग केवल स्वग की बात पाते है। * मानो अर्थापत्ति से स्वामी विवेकानन्द यह कहना चाहते हैं कि केवल उपनिषदा मे ही मोक्ष की चर्चा है और सहिता भाग केवल भौतिक सुखो के आगार स्वग का ही वणन करता है। हमे इस बात मे कुछ विशेष तथ्य प्रतीत नही होता क्याकि सहिता भाग भी मोक्ष अवस्था का उसी प्रकार वणन करता है जिस प्रकार उपनिषद वाङमय और वदिक स्वग भी प्रकारान्तर से मोक्ष की अवस्था ही है। स्वामी दयानन्द के मत मे स्वग और मोक्ष एक ही हैं।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूव एक बात पर विचार कर लेना और शेष रह जाता है। वदिक उपासना का स्वरूप क्या है? ऋषि दयानन्द जीव को उपासक और परमात्मा को उपास्य मानत है। उनकी सम्मति मे जीव और ईश्वर का सम्बन्ध गुरु–शिष्य पिता–पुत्र शासक–शासित और मित्र-मित्र का है। उन्हे जीव तथा ब्रह्म का एकत्व इष्ट नही। जीव जब परमात्मा के महान ऐश्वय अद्वितीय ज्ञान बल और क्रिया का विचार करता हुआ उसके सच्चिदानन्दमय रूप का ध्यान करता है तो वह प्रभुभक्ति मे मग्न होकर सासारिक दुखो और वासनाओ से छूटकर परमानन्द लाभ करता है। उपनिषद्कार के शब्दो मे—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सवसशया।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मि दृष्टे परावरे॥

उसकी हृदयग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं। सारे सशय छिन्न भिन्न हो जाते है। कमजाल क्षीण हो जाते हैं। परन्तु यह तभी होता है जब जीव ब्रह्म का

---

* ज्ञानयोग पृ० २५४
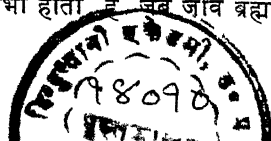
साक्षात्कार कर लता है। परमात्मा की ओर बढने और मोक्षलाभ करने की जीव मे स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वेदवर्णित उपासना और तज्जनित मोक्ष का स्वरूप समझने के लिये ऋषि दयानन्द लिखित सत्यार्थप्रकाश का नवम समुल्लास पढना आवश्यक है।

विवेकानन्द ने सहिताभाग मे वर्णित उपासना को पाश्चात्य विद्वानो के दृष्टिबिन्दु से देखा। फलत उन्होने अपने एक व्याख्यान मे कहा— सहिता के भागो मे भय और क्लेशयुक्त धर्म के चिन्ह पाये जाते है। सहिता के किसी स्थान मे देखा जाता है कि उपासक वरुण अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से काप रहा है।'* परन्तु क्या इस वक्तव्य मे कुछ भी सत्यता है? वदिक ऋचाओ के भक्तिपरक उद्गारो का जिन्होने अध्ययन किया है उनकी सम्मति निश्चय ही विवेकानन्द के कथन से भिन्न होगी। वदिक साधक का अपने प्रभु के प्रति समर्पण भय अथवा आतक से प्रेरित नही है अपितु वह तो सन्तान के अपने पिता के प्रति सहज स्नेह के तुल्य ही है। निम्न ऋचाओ का हम अध्ययन और मनन करे—यह सत्य स्वय ही स्पष्ट हो जायेगा।

स न पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा न स्वस्तये ॥†

जसे पुत्र के लिये पिता ज्ञानदाता होता है वसे ही हे अग्नि परमात्मन्! आप हमारे लिये सुख प्राप्त कराय।

त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥‡

हे सर्वत्र व्यापक शतक्रतो परमात्मन् आप ही हमारे माता और पिता हैं।

---

* *भारत मे विवेकानन्द पृ० १७६*

† ऋग्वद १।१।९

‡ ऋग्वेद ८।९८।११

इन्द्र क्रतु न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥×

हे इन्द्र परमात्मन् ! जिस प्रकार पिता पुत्र को ज्ञान देता है उसी प्रकार तू भी हमे ज्ञान प्रदान कर ।

स नो बन्धुजनिता स विधाता ॥†

वह परमात्मा ही हमारा बन्धु उत्पादक और विधाता है ।

जीव और ईश्वर के स्नेह सम्बन्ध के प्रतिपादक इन मन्त्रो की उपस्थिति मे यह कहना साहसमात्र ही होगा कि वदिक उपासक भयाक्रान्त होकर अपने आराध्य देवता के सम्मुख उपस्थित होता था ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि वेदो के प्रति एक आस्थावान् वैदिक को भाँति सम्पूण श्रद्धा व्यक्त करने के उपरान्त भी वेदो के विषय मे स्वामी विवेकानन्द ने कुछ बात ऐसी कही और लिखी कि जिनसे वेद के प्रति जनसामान्य की आस्था का डावाडोल होना तो स्वाभाविक था ही उसे वेद के विषय मे वक्ता की अनभिज्ञता का भी सूचक माना जा सकता है । अस्तु ।

दयानन्द की स्थिति इससे सवथा भिन्न थी । उनके लिये वेद केवल श्रद्धा के विषय नही थे । उन्होने अपने समग्र धर्मान्दोलन की आधारशिला के रूप मे वेदो को स्वीकार किया क्योकि वे इस तथ्य को हृदयगम कर चुके थे कि आय धम की नीव वेद पर ही खडी है । अत उन्होने वेदो के विषय मे जो कुछ कहा या लिखा वह युक्ति और प्रमाणो से समर्थित तो था ही उसमे किसी प्रकार की अवज्ञानिकता अथवा बुद्धिविरुद्ध बात भी नही थी ।

यह सब कुछ होने पर भी वेद के सावभौम और सावदेशिक स्वरूप को दोनो आचार्यो ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया । वेद की सावभौम और

× ऋग्वद ७/३२/२६
† यजुर्वेद ३२ । १०

सर्वव्यापक सत्ता को स्वीकार करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने लिखा— समस्त देश काल और पात्र मे व्याप्त होने के कारण वेद का शासन अर्थात् वेद का प्रभाव देश विशेष काल विशेष अथवा पात्रविशेष तक सीमित नही है। सार्वजनिक धर्म की व्याख्या करने वाला एकमात्र वेद ही है। .. अलौकिक ज्ञानराशि का सर्व प्रथम पूर्ण और अविकृत संग्रह होने के कारण आर्यजाति के बीच मे प्रसिद्ध वेद नामधारी चार भागो म विभक्त अक्षर समूह ही सब प्रकार से सर्वोच्च स्थान का अधिकार है। समस्त जगत् का पूजार्ह है तथा आर्य एवं म्लेच्छ सबके धर्मग्रन्थो की प्रमाण भूमि है।† कहने की आवश्यकता नही कि वेद के प्रति इतनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि शायद ही किसी अन्य व्यक्ति ने अर्पित की हो।

वेदविषयक प्रमुखतम विषयो की मीमासा उपर्युक्त पृष्ठो मे हुई। परन्तु कुछ गौण समस्याये और हैं, जिन पर विचार कर लेना आवश्यक है। जब वेद को हम परमात्मा का नित्य ज्ञान स्वीकार कर लेते हैं तो यह स्वत ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमे किसी प्रकार का लौकिक इतिहास नही हो सकता। पाश्चात्य विद्वानो ने जब से वैदिक अनुशीलन को अपने हाथो मे लिया तब से वेद के आधार पर भारत के पुरातन इतिहास विषयक अनेक कल्पनायुक्त स्थापनाये उनके ग्रन्थो मे की गई। यद्यपि सायण आदि मध्यकालीन वेद-भाष्यकार वेदो मे अनित्य इतिहास की असम्भावना को दृढता से स्वीकार कर चुके थे परन्तु आर्षदृष्टि और क्रान्तदर्शिता के अभाव के कारण उन्होंने अपने वेद भाष्य मे यत्र तत्र अनेक कपोल कल्पित इतिहासाभासयुक्त कथाओ को वेद मन्त्रो पर मढा है। परन्तु वेदो से इतिहास निकालने का विशेष आग्रह यूरोपीय विद्वानो म ही दीख पडा। ऋषि दयानन्द ही सम्भवत प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इसका तीव्रता से प्रतिवाद किया। उनके विचारानुसार वेद की सज्ञायें किसी व्यक्ति स्थान अथवा घटना विशेष की ओर संकेत नही करती। वेदो

† चिन्तनीय बातें पृ० १३

म प्रयुक्त शब्द यौगिक है—रूढ नही अत वदवर्णित इतिहासाभास युक्त कथाओ की सगति उन्ह आलकारिक (Allegorical) मानकर ही लगाई जा सकती है। स्वामी दयानन्द ने अपनी भाष्यभूमिका म कुछ आलकारिक कथाओ का स्पष्टीकरण भी किया है। भूमिका के ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य प्रकरण क अन्तगत उन्होने इन्द्र और वृत्र के युद्ध को सूय और मेघ का रूपक माना है और निरुक्त के आधार पर सिद्ध किया है† कि इन्द्र और वृत्र की लडाई कोइ अतीतकालीन वास्तविक युद्ध नही था अपितु यह तो आकाश म नित्य होन वाला सूय और मेघ का युद्ध है।

ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट इस तथ्य की पुष्टि म आयसामाजिक विद्वानो ने विस्तृत अनुसन्धान किये और अनक ग्रन्थो की‡ रचना कर यह सिद्ध करने का यत्न किया कि वद म लौकिक इतिहास को ढूढना स हसमात्र है। स्वामी विवेकानन्द की रचनाओ म भी एक उद्धरण हम ऐसा मिला है जिससे ज्ञात होता है कि वे भी वद म लौकिक इतिहास नही मानत थे और ब्राह्मण आदि जिन ग्रन्थो म एसा इतिहास मिलता हे उसे व वद की सज्ञा दन क लिये भी तयार नही थ। उन्होने लिखा है उसका जो अश लौकिक अथवाद अथवा इतिहास सम्बन्धी बातो की विवचना नही करता वही अश वद है। ×

वद मे इतिहास के निपेध का प्रश्न वेद की व्याख्या करने की प्रक्रिया पर निभर करता है। जिन शब्दो को व्यक्ति या स्थानवाचक मानकर इतिहास क

---

† तत्को वृत्रो ? मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका।
—निरुक्त अ० २ ख० १६। १७

‡ वदिक इतिहासाथ निणय प० शिवशकर शमा, वद म इतिहास नही—प० प्रियरत्न आष यास्कयग की वदाथ शलिया—प० चमपति एम० ए० क्या वद मे इतिहास है ?—प० जयदेव विद्यालकार

× चिन्तनीय बात प० १३

आग्रही विद्वान् वेदा म इतिहास ढ ढ निकाल्ते है नरुक्त प्रक्रिया से अथ करने वाल विद्वान् उन्ही शब्दो का यौगिक अथ कर वेद को शाश्वत सत्या का प्रतिपादक सिद्ध करत है। अत वेदाथ की प्रकिया के सिद्धान्त को समझना भी आवश्यक है। वद भाष्यकारा का प्रारम्भ से ही यह मत रहा है कि वेद के त्रिविध अथ आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदविक किये जा सकत है। सायण पूव के स्कन्दस्वामी भट्टभास्कर आदि भाष्यकारो ने इस त्रिविध अथ की प्रक्रिया का अनुसरण करते हुये वेदा के अथ किये थे। ऋषि दयानन्द ने भी अपना वदभाष्य करते समय इसी पुरातन प्रणाली का अनुसरण किया। वद का अथ केवल याज्ञिक प्रक्रिया अनुसार ही हो सकता है इस सिद्धान्त से उनका घोर विरोध था। अपनी वेदभाष्यभूमिका के शका समाधान विषय मे उन्होने सायण आदि याज्ञिक मत के पोषक भाष्यकारो की आलोचना करते हुये लिखा—'**यत् सायणाचार्येण वेदाना परममथमविज्ञाय सर्वे वेदा क्रियाकाण्डतत्परा सन्ती' त्युक्तम् तद यथास्ति। कुत ? तेषा सवविद्यान्वितत्वात्।** † अर्थात् जो सायणाचाय ने वेदो के परमाथ को न जानकर सारे वेद क्रियाकाण्ड प्रधान हैं। ऐसा कहा हे यह मिथ्या ही हे। क्योकि वेद सब विद्याओ से अन्वित है।

इसी प्रकार वेदविषय विचार प्रकरण के अन्तगत ऋषि दयानन्द यह बतलाते हैं कि—वेद मे विज्ञान कम उपासना और ज्ञान इन चार विषयो का वणन हुआ है। परन्तु इनमे भी विज्ञान विषय ही प्रमुख है। (यह विज्ञान आज के Science के अथ मे प्रयुक्त नही हुआ है।) परमेश्वर से लेकर तृणपयन्त पदार्थो का ज्ञान वेद से होता है। इनमे भी ईश्वर का अनुभव मुख्य है। सब पदार्थो मे प्रधान होने का कारण वेदो का तात्पय भी ईश्वर का

---

† ऋ० भा० भू० पृ० ४३६

विवेचन करने मे ही है।† इसमे उन्होने 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'‡ आदि कठोपनिषद् के वाक्यो का प्रमाण भी दिया है।

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि दयानन्द जहा वेद मे ज्ञान कर्म उपासना और विज्ञान की सत्ता स्वीकार करते थे वहा वेदो का चरम तात्पर्य सर्वोपरि परमात्मा का वर्णन करने मे ही मानते थे। साथ ही वेदार्थ की त्रिविध प्रक्रिया को भी वे स्वीकार करते थे। उनका वेदार्थ के विषय मे सर्वोपरि बल नैरुक्त प्रक्रिया का अनुसरण करने मे लगता था क्योकि वे जानते थे कि वेद के शब्द यौगिक है—रूढ नही। उदाहरणार्थ 'अग्नि' शब्द से केवल चूल्हे की आग या यज्ञाग्नि ही समझना भूल होगी। क्योकि अग्नि शब्द की निरुक्ति करते हुए आचार्य यास्क ने लिखा है—'**अग्नि कस्मात् अग्रणी भवति**।× अर्थात् अग्रणी होने से अग्नि शब्द सिद्ध होता है। अब अग्नि का तात्पर्य उन सब अर्थों मे घट सकता है जो आगे बढने या नेतृत्व करने के बोधक हैं। इसी नियम के अनुसार ऋषि दयानन्द ने अग्नि का अर्थ प्रसगानुसार परमेश्वर राजा विद्वान् नेता सेनापति और ऋत्विक् आदि से लिया है।

वेद भाष्य की यह प्रणाली ऋषि दयानन्द की कोई मन प्रसूत नवीन कल्पना नही थी। ब्राह्मण ग्रन्थो निरुक्त तथा अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थो मे वेदार्थ

---

† *अत्र चत्वारो वेद विषया सन्ति। विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात्। तत्रादिमो विज्ञान विषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्तपदार्थेषु साक्षादबोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुत? अत्रैव सर्वेषा वेदाना तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्य पदार्थेभ्य प्रधानत्वात्।* पृ० ५५

‡ कठ० उ० व० २। म० १५

× *निरुक्त* ७

के लिये यही प्रणाली स्वीकृत की गई है। फिर भी जिस समय ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद के कुछ प्रारम्भिक मन्त्रों की इस शैली की व्याख्या प्रकाशित करा कर काशी संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल श्री ग्रिफिथ कलकत्ता संस्कृत कालेज के वाइस प्रिंसिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न और पंजाब संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल पं० गुरुप्रसाद शास्त्री के पास सम्मति के लिये भेजी तो सब विद्वानों ने ऋषि की इस भाष्य शैली के विरोध में ही अपना मत व्यक्त किया। ऋषि ने भ्रान्तिनिवारण के नाम से इन प्रतिकूल सम्मतियों का निराकरण किया और अपने पक्ष को अनेकानेक प्रमाणों से पुष्ट करते हुये यह सिद्ध किया कि वेद में अग्नि आदि शब्दों का प्रयोग केवल लोक प्रसिद्ध अग्नि के अर्थ में ही नहीं हुआ है—अतः अग्नि का अर्थ परमात्मा कर उन्होंने कोई बहुत बड़ा गजब नहीं कर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि में हम स्वामी विवेकानन्द और आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री और नेता महात्मा हंसराज के बीच हुये शास्त्रार्थ पर विचार करें जिसका विवरण विवेकानन्द चरित के लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने दिया है। जीवन चरित के लेखक ने स्वामी विवेकानन्द को उत्तर-पक्ष में रखते हुये आर्यसमाज अथवा महात्मा हंसराज का पूर्व पक्ष इस प्रकार रक्खा है— वेद का केवल एक ही प्रकार का अर्थ हो सकता है। इससे पूर्व कि हम स्वामी विवेकानन्द के उत्तर पक्ष पर विचार करें हमें तो यह पूर्वपक्ष ही आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतीत होता है और यह कदापि सम्भव नहीं कि महात्मा हंसराज जैसा सिद्धान्तमर्मज्ञ पुरुष अपने पक्ष की स्थापना ही गलत ढंग से करे। ऋषि दयानन्द का कभी यह मत नहीं रहा कि वेद का अर्थ केवल एक प्रकार का हो सकता है। वे तो नैरुक्तप्रक्रिया का अनुसरण करते हुए त्रिविध प्रकार के वेदार्थ में विश्वास करते हैं। अतः उन पर यह आक्षेप कभी नहीं आ सकता। हां इसका सम्भवतः यह अर्थ हो सकता है कि ऋषि दयानन्द वेद का केवल याज्ञिक अर्थ करने के विरोधी हों अथवा ऐतिहासिक अर्थ करने के विरुद्ध हों। अब इसका विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त उत्तर-पक्ष सुनिये—

लालाजी आप लोग जिस विषय के बारे मे इतना आग्रह प्रकट करते हैं उसे हम Fanaticism या कट्टरपन कहते है । हम यह जानते हैं कि इसके द्वारा सम्प्रदाय को शीघ्र विस्तृत बनान म सहायता होती है और मै यह भी जानता हूँ कि शास्त्र के कट्टरपन की अपेक्षा मनुष्य के कट्टरपन (इस प्रकार का प्रचार कि व्यक्ति विशेष को अवतार मान कर उसकी शरण लेने से मुक्ति होगी) के द्वारा और भी आश्चयजनक तथा शीघ्रता से सम्प्रदाय का विस्तार होता है । और मेरे हाथ मे वह शक्ति भी है । मेरे गुरुदेव श्री रामकृष्ण का ईश्वरावतार रूप मे प्रचार करने के लिये मेरे अन्य सभी गुरुभाइ गण कटिबद्ध हैं । एकमात्र मै ही उस प्रकार के प्रचार का विरोधी हू । †

अब हम इस कथन पर विचार कर । विवेकानन्द जिसे कट्टरपन अथवा Fanaticism कहते है उसका रहस्य अब खुल जाता है । यह वद का अथ करने की शली विशेष के प्रति आग्रह रखना नही अपितु वेद प्रमाण पर जार देने को वे कट्टरपन कहते है । परन्तु हम जसा कि इस अध्याय के प्रारम्भिक भागा मे देख चुके हैं वदप्रमाण के लिये विवकान द का आग्रह भी दयानन्द से किसी प्रकार कम नहीं है । यह सम्भव है कि वद के ममज्ञ विद्वान् न हाने के कारण अथवा और किसी कारणवश वे वदप्रमाण के प्रति उतना अधिक आग्रह व्यावहारिक रूप मे प्रदर्शित न कर सके हो परन्तु जहा तक शास्त्र-प्रमाण की सर्वोपरि स्थिति का सम्बन्ध है उनमे और दयानन्द मे कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता ।

अब प्रश्न रह जाता है सम्प्रदाय के प्रसार के लिये शास्त्र का कट्टरपन अपनाया जाय या मनुष्य का कट्टरपन । हम इस बात पर तो आग विचार करेंगे कि विवेकान द अथवा उनके साथियो ने रामकृष्ण परमहस का इश्वरावतार बनाकर सम्प्रदाय निर्माण का प्रयास किया या नही यहा इतना सकेत

---

† विवकान द चरित पृ० ३२६

कर देना हो पर्याप्त है कि हमारे धम की परम्परा मे शास्त्र के प्रति आग्रह तो दिखाया गया है चाहे उसे विवेकान दजी कट्टरपन अथवा Fanaticism ही कह पर तु मनुष्य के प्रति आग्रह दिखाकर समेटिक मजहबो की तरह 'पैगम्बर म विश्वास रखने से ही मुक्ति होगी' इस प्रकार की धारणाय हमारे यहाँ कभी प्रश्रय नही पा सकी। शकर का अद्वैत रामानुज का विशिष्टाद्वैत मध्व का द्वैत और वल्लभ का शुद्धाद्वैत शास्त्रो के अर्थो की खीचतान पर ही अधिक निभर करते है। इन मतवादो की स्थिति मे उनके सस्थापक आचार्यों का व्यक्तित्व उतना अधिक कारण नही बना, जितना श्रुति के आधार पर तत् तत् दाशनिक मतवाद का प्रतिपादन। अत इस विवेचन (प्रसग) को आगे न बढाकर इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि ऋषि दयान द का वेदाथचिन्तन परम्परानुमोदित होने के साथ साथ युक्तिसगत और वज्ञानिक भी था। उसके यथाथ महत्त्व को समझना अभी ससार के लिये शेष है।

तथ्य की बात ता यह है कि वेद का अध्ययन अ यापन शता दिया से लुप्त हो चुका था। हमारे देश का ब्राह्मण वग जो कुछ वेदम त्रा को कण्ठस्थ कर लेता था, वह भी म त्राथ का विचार किये बिना ही केवल तोतारट त की तरह। परिणाम यह हुआ कि वेदाथचि तन लगभग समाप्त हो गया। ऋषि दयान द न ही सवप्रथम वेदाध्ययन की परम्परा का जीर्णोद्धार किया। उन्होने कहा वेदो के व्याख्यान करने के विषय मे ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण सुतक, वेदो के श दो का पूर्वापर प्रकरणो याकरण आदि वेदागो शतपथ आदि ब्राह्मणो पूवमीमासा आदि शास्त्रो और शाखा तरो का यथावत् बोध न हो तब तक वेदो के अथ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय मे नही होता † वेदाथज्ञान के लिये निरुक्त ब्राह्मण, वेदाग तथा अन्यान्य आषग्र थो का ज्ञान अनिवाय है। यह स्वामी दयान द का निश्चित मत था। स्वामी विवेकानन्द ने भी एक पत्र मे वेदाध्ययन के लिये पाणिनि व्याकरण में

† ऋग्वदादिभाष्यभूमिका पृ० १०२।

पारगत होना आवश्यक माना है। प्रमदादास मित्र को लिखित अपने पत्र मे उ हाने लिखा बिना पाणिनि व्याकरण पर पूण अधिकार प्राप्त किये वदो की भाषा मे पारगत होना असम्भव हे। ‡

आचाय दयान द और विवेकान द के वेदविषयक विचारो के अध्ययन को उपसहार की ओर ले जाने से पूव एक दो महत्त्वपूण प्रश्न और शेष ह जाते हैं। पाश्चात्य विद्वानो ने वेदो पर पर्याप्त परिश्रम किया है। मक्समूलर, वेबर मकडोनल ग्रिफिथ ह्विटनी राथ ग्रासमेन आदि वे विद्वान् है, जि होने वेदो और वदिक साहित्य पर अनेक अनुस धानपूण ग्र थ लिखे। यहा अत्य त सक्षेप मे भी इन विद्वाना क बृहत् काय की मीमासा और उनका मूल्याकन नही किया जा सकता। पर तु एक बात निश्चित है। इन पाश्चात्या का वेदाध्ययन पूवाग्रह युक्त था। वे ईसाइयत की श्रष्ठता क भाव को लेकर ही वेदाध्ययन म प्रवृत्त होते थे अत जाने या अनजाने वदिकधम के स्वरूप की उदारता, पवित्रता और महत्ता उनके हृदय पर अपनी छाप नही छोड सकी। अनेक लेखको के अध्ययन और लेखन का तो उद्देश्य ही भारतीय धम को विकृत रूप मे पाश्चात्य जनसमाज के सम्मुख प्रस्तुत करना था। मक्समूलर और मोनियार विलियम्स जसे विद्वानो की पूर्वाग्रह युक्त मनोवृत्ति प्रकाश मे आ चुकी है।*

महर्षि दयान द की इन विद्वाना मे तनिक भी श्रद्धा नही थी। इसका एक प्रमुख कारण तो यही था कि वे स्वय वेदो के तलस्पर्शी विद्वान् होने के कारण पाश्चात्य वेदज्ञो के सस्कृत और वेद ज्ञान के छिछलेपन से भलीभाति परिचित थे। द्वितीय बात उनका राष्टीय स्वाभिमान उ हे इस बात की आज्ञा नही देता था कि वेद के चरम तत्त्व का आध्यात्मिक शक्तियो के द्वारा साक्षात्कार

---

‡ पत्रावली भाग १ प० ४।

* *Western Indologists—Their study in motives By pt Bhagvaddatta*

करन वाले तत्त्वद्रष्टा ऋषियो की परम्परा मे उत्पन्न होकर वे पाश्चात्य विद्वाना के उच्छिष्ट भोजी बने। एसी स्थिति मे पाश्चात्य विद्वानो के वेद सम्ब धी अध्ययन और काय के विषय मे उ होने जो धारणा बनाई उसमे हमे काइ अनौचित्य नही दीख पडता। सत्याथप्रकाश के एकादश समुल्लास मे मक्समूलर के वेद भाष्य पर उनकी टिप्पणी द्रष्ट य है 'मक्समूलर साहब के सस्कृत साहित्य और थोडी सी वेद की याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मक्समूलर साहब न इधर उधर आर्यावर्तीय लोगो की की हुई टीका देखकर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है जसा कि **युञ्जति ब्रध्नमरुष चर त परितस्थुष रोचन्ते रोचना दिवि**' (ऋ १।६।१) इस म त्र मे ब्रध्न का अथ घोडा किया है इससे जो सायणाचाय ने सूय अथ लिया है सो अच्छा हैं। इतने से हो जान लीजिये कि जमनी देश और मक्समूलर साहब मे कितना पाण्डित्य है। *

इसी प्रकार अपनी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका मे भ्रममूलक कथनो का खण्डन किया है। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। वेदोत्पत्ति विषय के उपसहार मे विल्सन और मक्समूलर के मत का निरास करते हुये उ हाने लिखा—

'**एतावता कथनेनवाध्यापकविलसनमोक्षमूलराद्यभिधयूरोपाख्यखण्डस्थम नुष्यरचितो वेदोस्ति श्रुतिर्नास्तीति यदुक्त तत्सव भ्रममूलमस्तीति वेद्यम्।**"†
अर्थात् इससे जो अध्यापक विलसन और मक्समूलर आदि यूरोपखण्ड निवासी विद्वानो ने कहा कि वेद मनुष्य के रचे हैं श्रुति नही है, यह उनका सब कथन भ्रममूलक ही है।

स्वामी विवेकान द यद्यपि पाश्चात्य वेदज्ञो के प्रति इतने अश्रद्धालु नही थे

---

* *सत्यायप्रकाश पृ० ३६६ गोवि दराम हासान द का ७वाँ सस्करण*

† ऋ० भा० भू० पृ० ३४

परन्तु अपने एक याख्यान मे उन्होने कहा वेद के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तो मे मेरा कुछ भी विश्वास नही है। ‡ विवेकानन्दजी की मक्समूलर के प्रति अत्यन्त श्रद्धा था। अपने इग्लण्ड प्रवास के दिनो मे उनकी मक्समूलर से भेंट भा हुई थी तथा वे उस वृद्ध वेदाभ्यासी के परिश्रम और तप से अत्यधिक प्रभावित हुये थे। मक्समूलर की प्रशसा का एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि उसने विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहस की जीवनी और उपदेशो पर* एक बडा सुन्दर ग्रन्थ लिखा था। एक वार्तालाप के प्रसग मे ता विवेकानन्दजी ने मक्समूलर की प्रशसा मे अतिशयोक्ति की हद ही कर दी। उनका यह कथन युक्ति और तक की सीमा को लाघ कर भावकता की सीमारेखा मे प्रविष्ट हो गया है। उन्हाने कहा— मुझे कभी-कभी एसा अनुमान होता है कि स्वय सायणाचाय ने अपने भाष्य का अपने ही आप उद्धार करन के निमित्त मक्समूलर के रूप मे पुन जन्म लिया है † स्पष्ट ह कि श्रद्धा विगलित यह कथन किसी टिप्पणी की अपेक्षा नही रखता। क्या सचमुच ही ऐसा होना सम्भव है ? कौन कह सकता हे ?

अब अन्तिम प्रश्न रह जाता है वद क अधिकार। नरूपण का। शताब्दियो से यह धारणा जनमानस म बद्धमूल कर दी गई थी कि वेद मे केवल द्विजो का ही अधिकार है और शूद्र तथा स्त्रिया वेदाध्ययन का अधिकार नही रखत। इसी प्रकार के अनुदार भावो का मिश्रण समय समय पर धमशास्त्र कहे जाने वाल ग्रन्थो मैं किया गया। गौतम धमसूत्र के नाम से प्रसिद्ध एक ग्रन्थ मे तो यहा तक कहा गया है कि यदि शूद्र वेद सुन ले तो उसके कानो मे सीसा और जस्ता भर दिया जाय यदि वह वेद मन्त्र का उच्चारण करे तो उसकी जीभ

---

‡ भारत म विवेकानन्द प० ४९५

* *Ramakrishra His life and Sayings*

† विवेकानन्दजी के सग मे ० ९१

काट ली जाय और वह वेद म त्र को धारण करे तो उसके शरीर के टुकडे-टुकडे कर दिये जाय।† यह जान कर और भी अधिक खेद होता हे कि हमारे मध्यकालीन शकर और रामानुज आदि वेदा ताचार्यो ने इ ही प्रक्षिप्त वचनो को आदर देते हुये अपने अपने भाष्यो मे‡ शूद्रो के वेदाधिकार का निपध किया।

वस्तुत ऋषि दयान द ही प्रथम यक्ति थे जि होने सहस्रा दिया से ब धन में बधे हुए वेद को ब धनमुक्त किया और मानव मात्र के लिय वेदाध्ययन के अधिकार का प्रतिपादन किया। सत्याथप्रकाश के द्वितीय समुल्लास म '**स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्** इस कपोल कल्पित वाक्य का खण्डन करते हुए ऋषि दयान द लिखते है सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को (वेद) पढने का अधिकार है अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद २६वे अध्याय मे दूसरा म त्र है—

यथेमा वाच कल्याणीमावदानि जनेभ्य ।
ब्रह्मराज याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।।

परमेश्वर कहता है कि जसे मैं सब मनुष्यो के लिये इस ससार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारो वेदो की वाणी का उपदेश करता हू वसे तुम भी किया करो। यहा कोइ ऐसा प्रश्न करे कि जन श द से द्विजो का ग्रहण करना चाहिये क्योकि स्मृत्यादि ग थो मे ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य ही के वेद पढने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों को नही।

उत्तर—(ब्रह्म राज याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वय कहता है कि हमने ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने

---

† *अथ हास्य (शूद्रस्य) वदमुपशण्वतस्त्रपुजतुभ्या श्रोत्रपरिपूरणम् उ चारणे जिह्वाच्छदो धारण शरीर भ इति ।*

‡ *वेदा तदशन का अपशूद्राधिकरण*

भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदो का प्रकाश किया है। *

इसी प्रसग मे आगे स्त्रियो के वेदाध्ययन विषयक प्रमाणो का सग्रह करते हुये आचाय दयान द ने अथववेद के **ब्रह्मचर्येण क या युवान वि दते पतिम्** † और श्रौत सूत्र के **इम म त्र पत्नी पठेत्**" आदि वाक्यो के प्रमाण उद्धृत किये है। अ त मे निष्कष रूप मे वे लिखते है— जो स्त्रियाँ वेदादि शास्त्रो को न पढी होवें तो यज्ञ मे स्वरसहित म त्रो का उच्चारण और सस्कृत भाषण कसे कर सक। भारतवष की स्त्रियो मे भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रो को पढ के पूण विदुषी हुई थी यह शतपथ ब्राह्मण मे स्पष्ट लिखा है।"‡

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मे भी आचाय दयान द ने वेद के अधिकारान-धिकार विषय पर सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। वहा प्रश्न किया है— ' वेदादिशास्त्रपठनेसर्वेषामधिकारोऽस्त्याहोस्वि नति ? उत्तर मे वे लिखते हैं—

सर्वेषामस्ति । वेदानामीश्वरोक्तत्वात्सवमनुष्योपकाराथत्वात्सत्यविद्या प्रकाशकत्वाच्च। यद्यद्धि खलु परमेश्वररचित वस्त्वस्ति, तत्तत्सव सर्वाथमस्तीति विजानीम ।×

अर्थात् वेद म सभी का अधिकार है। क्योकि (१) वेद ईश्वरोक्त हैं (२) सब मनुष्यो के उपकार के लिये है और (३) सत्य विद्या के प्रकाशक है जो कोइ वस्तु परमश्वर रचित है वह सब लोगो के लिये ही है—यह जानना चाहिये। यहा भी स्वामीजी ने यथेमा वाच म त्र को ही प्रमाणरूप मे उ दृत किया है।

---

* सत्याथ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृ० ८८-८९

† अथववद का० ११ सू० ५ म० १८

‡ सत्याथ प्रकाश पृ० ९०

× ऋ० भा० भू० पृ० ४२१

ऋषि दयान द की इस महान् मानवहितकारिणी देन की भूरि भूरि प्रशसा ससार क समस्त बुद्धिमान् जना ने की है। हम यहा केवल प्रसिद्ध फ्रासीसी साहित्यकार और विचारक रोमा रोला के विचार दे देना ही उपयुक्त समझते हैं। अपनी पुस्तक The life of RamaKrishna मे श्री रोला ने लिखा It was in truth an epoch making date for India when a Brahmin, not only acknowledged that all human beings have the right to know the Vedas whose study had been previously prohibited by orthodox Brahmins, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya †

अर्थात् यह सत्य है कि भारत का वह दिन एक युगपरिवतनकारा दिन था, जब एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि उस वेद ज्ञान पर मानवमात्र का अधिकार जिनका हे पठन-पाठन उनसे पूव के कट्टर ब्राह्मणा न निषिद्ध कर दिया था अपितु इस बात पर भी बल दिया कि वेदो का पढना पढाना और प्रचार करना प्रत्यक आय का धम है।

ऋषि दयान द के इन उदार विचारो की छाप उत्तरवर्ती सभी धमाचार्यों और विचारको पर पडी। विवेकान द भी इससे अछूने नही रह। उ होन अपने लेखो और भाषणा मे अनेक बार वेद पर मनुष्यमात्र के अधिकार की बात कही। अपने एक भाषण मे उ होने कहा— वेद हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका ही अधिकार है। यथेमा वाच—क्या आप हम वेद मे कोई ऐसा प्रमाण दिखला सकत है जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वेद म सबका अधिकार नही है ? * पुराकाल मे स्त्रियो के वेदाध्ययन की चर्चा करत हुये उन्होंने लिखा अवनति के युग मे जब कि पुरोहितो ने अ य जातिया का वेदाध्ययन के अयोग्य ठहराया उसी समय उ होने स्त्रियो को भी अपने अधिकारो से वचित कर दिया। पर वदिक और औपनिषदिक युग म तो

---

† *The Life of Ramakrishna p 159*

* *भारत मे विवकानन्द पृ० ४६५*

मत्रयी गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओ ने ऋषियो का स्थान ले लिया था। समस्त वेदन ब्राह्मणो की सभा मे गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय मे शास्त्राथ करने के लिये ललकारा था † एक अन्य प्रसग म उन्हाने कहा भारत का अध पतन उस समय हुआ जब ब्राह्मण पण्डिता ने ब्राह्मणतर जातिया का वेदपाठ का अनधिकारी घोषित कर दिया। और साथ ही स्त्रियो के भी सभी अधिकार छीन लिये। नही तो वदिक युग म उपनिषद् युग म मत्रयी गार्गी आदि प्रात स्मरणीय स्त्रिया ब्रह्मविचार मे ऋषि तुल्य हो गई थी। ‡

विवेकानन्द ने मनुष्यमात्र के लिये वेदा के अध्ययन का केवल प्रतिपादन ही नही किया अपितु उन्हान शकराचाय के उन अनुदारतापूण विचारा की कडी टीका भी का, जिनम शूद्रो के वदाध्ययन का निषेध किया गया था। श्री प्रमदादास मित्र को लिखित एक पत्र म तो उन्हाने शकर की इस विषय म दी गई युक्तियो का अत्यन्त तक पूण ढग म खण्डन किया है। उनके पत्र का आवश्यक उद्धरण यहाँ दिया जाता हे। इससे पाठको को विन्ति हो जायगा कि विवेकानन्द ने कही-कही शास्त्रीय विषयो मे कितनी सूक्ष्म तकना की हे। वे लिखते हैं— श्री शकराचाय न वेदा से इस बात का कोई प्रमाण नही निकाला कि शूद्र वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं। उन्होने केवल 'यज्ञे नवक्लृप्न' का प्रमाण इसनिये दिया है कि जब वह (शूद्र) यज्ञ करने का अधिकारी नही है तो अवश्य ही उपनिषदादि पढने का भी उसे अधिकार नही है। परन्तु उन्ही आचाय ने अथातो ब्रह्मजिज्ञासा की व्याख्या करते हुय अथ' के अथ के सम्बन्ध मे कहा हे कि उसका अभिप्राय वेदाध्ययन के पश्चात्' नही है क्योकि सहिता और ब्राह्मण भाग का अध्ययन किय बिना उपनिषद् नही पढे जा सकते यह विधान अप्रमाण है और साथ ही वदिक कमकाण्ड और वदिक

---

† *शिक्षा प० ३८*

‡ *विवकानन्दजी के सग मे प० ३८४*

नानकाण्ड मे कोई पूर्वापर भाव नही है। इससे यह स्पष्ट है कि वेदो के कम काण्डीय नान के बिना भी किसी का उपनिषद पढकर ब्रह्मज्ञान हो सकता है। अनएव यदि कमकाण्ड और ज्ञानकाण्ड मे कोई पूवापर सम्ब ध नही है तो शूद्रो क विषय मे उसी तक के अनुसार (यायपूवकम्) इस प्रकार अपने ही कथन के विरुद्ध वाक्य प्रयोग आचाय ने क्यो किया ? शूद्र को उपनिषद का अध्ययन क्या न करना चाहिये ? *

विवेकान द की इस प्रौढ युक्ति पर और कोई टिप्पणी करने की आवश्यकता नही है। पर तु यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि शकराचाय के इस परस्पर विरुद्ध कथन को देखकर उ होने उपयु क्त बाते एक शका के रूप मे जिज्ञासु भाव से श्री मित्र के समक्ष रक्खी थी। हमे यह ज्ञात नही कि श्री मित्र ने इन शकाओ का कोई सतोषजनक उत्तर दिया या नही परन्तु विवेकान द के अ या य लेखो से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि वे इन वेदा ताचार्यों की अनुदारता पूण भावनाओ के प्रशसक नही थे। एक वार्तालाप के प्रसग मे तो उ होने शकराचाय के इस ब्राह्मणत्व जनित दप का कटु खण्डन किया है। उ होने कहा— शकर विचारक भी थे और पण्डित भी पर तु उनमे उदार भावो की गम्भीरता अधिक नही थी। इसके अतिरिक्त उनमे ब्राह्मणत्व का दप बहुत था। अपने वेदा त भ ष्य मे कसो बहादुरी से समथन किया है कि ब्राह्मण के अतिरिक्त अ य जातियो को ब्रह्मज्ञान नही हो सकता। शकराचाय के ये काय सकीण दीवानेपन से निकले हुये पागलपन के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं ?' † एक वेदा ती सन्यासी के मुख से अपने मत के प्रवतक आचाय की यह निर्भीक परन्तु सत्य समालोचना वस्तुत विवेकान द की सत्य के प्रति अगाध निष्ठा और उनके भावो की उदारता की सूचक है।

वार्तालाप के एक अ य प्रसग मे भी उ होने ब्राह्मण आचार्यो की अनुदारता पर अपनी टिप्पणी करते हुए कहा था— केवल दो ब्राह्मण आचार्यों को छोड

** पत्रावली भाग १ पृ० ११ १२*

† विवकानन्दजी के सग मे पृ० १४५

कर शेष सब ब्राह्मण आचाय अनुदारभाव सम्पन्न थे।' † यह पता नही चलता कि उन्होने किन दो आचार्यो को उदार कहा।

वेद के विषय म दोना आचार्यो के विचारो का तुलनात्मक अध्ययन यहा समाप्त होता हे। हमने विस्तार से देखा कि वेदो के प्रति दयानन्द और विवेकानन्द दोनो ही समान भाव से आस्थावान हैं। उनके नित्यत्व और अपौरुषेयत्व को भी दोनो ने समान रूप से स्वीकार किया है और धम के निणय मे उनका सर्वोपरि प्रमाण भी स्वीकार करते है। आचाय दयानन्द ने अपने सम्पूण विचारा और कार्यो की आधारशिला वेद को ही बनाया। वे स्वय वेद के ममज्ञ विद्वान् थे और शताब्दियो से विलुप्तप्राय वेदाध्ययन मनन और चिन्तन की परम्परा को उन्होने अपने गौरवपूण व्यक्तित्व क सहारे पुनरुज्जीवित किया। विवकान द ने परम्परानुमोदित प्रथा का अनुसरण करते हुए वेद प्रमाण के गौरव का तो स्वीकार किया परन्तु वेद के विस्तृत और शास्त्रीय अध्ययन के अभाव मे वे वेदसम्बन्धी अनेक भ्रान्तियो के भी शिकार हुये जिनका वणन हम ऊपर विस्तारपूवक कर चुके है।

इस अध्याय को हम विवेकानन्द के एक उद्धरण के साथ ही समाप्त करते हैं जो वेदो का सर्वोपरि महत्त्व स्थापित करता ह। अपने ज्ञानयोग नामक ग्रन्थ मे उन्होने लिखा— वेद के द्वारा ही जगत् की सृष्टि हुई है। ज्ञान नाम से जो कुछ समझा जाता है वह वेद मे ही है! जिस प्रकार आत्मा अनादि और अनन्त है उसी प्रकार वेद का प्रत्येक शब्द भी पवित्र एव अनन्त है। सृष्टि कर्त्ता के समस्त मन का भाव ही मानो इस ग्रन्थ मे प्रकाशित है। यह काय नीति सगत क्यो है? क्योकि इसे वेद कहता है। यह काय अन्याय क्या है? क्योकि वेद इसे कहता है।'*

☐☐

---

† *स्वामी विवकानन्दजी से वार्तालाप पृ० १५१*

* *ज्ञानयोग पृ० २७२*

अध्याय २

दार्शनिक मान्यतायें

भारत के सभी धर्माचाय किसी न किमी दाशनिक विचारधारा के अनुयायी रहे है। भारत का दाशनिक चि तन पुरातन वदिक काल से लेकर अर्वाचीन युग तक निर्बाध गति से प्रवाहित होता रहा। यद्यपि वेद मे ज्ञान कम उपासना तथा विज्ञान के भेद से विभिन्न विषय वर्णित और विवेचित हुये हैं पर तु दशन के मूलभूत तत्त्वो का विचार भी शतश वदिक सूक्तो मे हुआ है। हिरण्यगभ सूक्त * पुरुष सूक्त † नासदीय सूक्त ‡ आदि म त्र सग्रहो मे सृष्टि के रहस्यात्मक प्रपच को सुलझाने के लिये दाशनिक प्रश्नो की सुगूढ मीमासा की गई है और ईश्वर जीव तथा जड प्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया हैं। वेद प्रतिपादित दाशनिक म त यो को ही उपनिषदो मे रहस्यपूण कि तु सरल एव का यपूण शली मे उपनिबद्ध किया गया। पश्चिमी विद्वानो ने इस अलीक मत को ज म दिया कि वेदो मे मात्र इहलोक से सम्ब धित विषय ही वर्णित हुये हैं जब कि वास्तविक दाशनिक चि तन का काय उपनिषद्कार ऋषियो ने ही किया। ऐसा कह कर वेदो का अवमूल्यन किया गया तथा

---

* ऋग्वद १० । १२१

† ऋग्वद १० । ६०

‡ ऋग्वद १० । १२६

भारतीय दाशनिक चि ता का मूल स्रोत वेदा को मान लिया गया। तथ्य यह है कि उपनिषदा ने सवत्र वेदो को ही अपन विचारा का मूल उत्स स्वीकार किया है।

काला तर मे जब भारतीय दशन विभिन्न सम्प्रदाया के रूप मे विकसित हुआ तथा साख्य योग याय वशेषिक मीमासा आदि के आधार पर विश्व-प्रपञ्च तथा उसके सूत्रधार चेतन तत्त्वो का विचार आरम्भ हुआ तो भिन्न-भिन्न दशनाचार्यो ने भी वेद को ही अपनी विचारधारा का मूलाधार स्वीकार किया। यद्यपि पश्चिमी विचारका ने षड दशनकारा के वद विषयक इन आस्था-मूलक कथनो को भी एक साधारण वचन मात्र ही कहा पर तु यह निश्चित है कि दशनकार वेदो तथा उसम प्रतिपादित सिद्धा तो के आगे सवथा श्रद्धानत है। वस्तुत हमारे देश का दाशनिक चि तन मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत प्रश्ना का समाधान करने के लिये समवित दृष्टि से ही अग्रसर हो रहा था फलत प्रत्यक दाशनिक सम्प्रदाय न तत्त्वालोचन के किसी एक पहलू को ही अपने विवेचन का विषय बनाया है। अ य सम्प्रदाया मे विवचित विषयो का खण्डन उनका अभीष्ट नही था। पर तु काला तर मे यह मान लिया गया कि षड-दशनो की विचारणा परस्पर विरुद्ध है और वे एक दूसरे के विरोधी सिद्धा तो का प्रतिपादन करते हैं।

स्वामी दयान द ने इन दशनो के अध्ययन के सम्ब ध मे एक नवीन सम वयात्मक दृष्टि प्रदान की। उनकी यह दृढ धारणा थी कि षड दशन परस्पर विरुद्ध नही हैं अपितु वे सृष्टि प्रक्रिया तथा उससे सम्ब धित तत्त्वो की अपनी अपनी दृष्टि से यारया और विवेचना करत है। अपन प्रमुख दाशनिक ग्र थ सत्याथप्रकाश मे सृष्टि के निर्माण का उल्लेख करते हुये उ होने लिखा है छ शास्त्रो मे अविरोध इस प्रकार है। मीमासा मे ऐसा कोई भी काय जगत् म नही होता कि जिसके बनाने मे कम चेष्टा न की जाय ' वशेषिक मे समय न लगे बिना बने ही नही याय म उपादान कारण न होने से कुछ भी नही बन सकता योग मे विद्या ज्ञान विचार न किया जाय तो

नहा बन सकता साख्य म तत्त्वो का मेल न होने से नही बन सकता । और वेदा त म बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदाथ उत्पन्न न हो सके इसलिये सृष्टि छ कारणो से बनती है । उन छ कारणो की व्याख्या एक एक की एक एक शास्त्र मे है । इसलिये उनमे विरोध कुछ भी नही । *

इस प्रकार षड दशनो के सम्बन्ध मे अपने सामञ्जस्यमूलक विचार प्रस्तुत करने के साथ साथ स्वामी दयानन्द ने वदिक विचारधारा के आधार पर अपने दाशनिक चिन्तन को भी स्पष्ट किया । विरक्त जीवनकाल के प्रारम्भ मे वे सन्यासिया मे प्रचलित रूढि के अनुसार शाङ्कर मत के अनुयायी थे । जब गुजरात भ्रमण के समय व कुछ स यासियो के सम्पक मे आये तो उ हे विश्वास हो गया कि वे साक्षात् ब्रह्म ही हैं ।† इसी बीच उन्होने सदान द रचित वेदान्तसार आदि ग्रन्थो का भी अध्ययन किया । पर तु धीरे धीरे जब उनका स्वाध्याय मनन और चि तन अधिक प्रशस्त होता गया तो उन्हे शाङ्कर मत की त्रुटिया स्पष्ट दृष्टिगोचर हुइ ।‡ अब उन्हाने वदिक तत्त्व चिन्तन का अधिकाधिक आलोडन किया तथा इस निष्कष पर पहुँचे कि अद्वैतवाद के द्वारा दशन की जिज्ञासा का समाधान नही हा सकता । वस्तुत चेतन और जड इन दो पृथक तत्त्वो को मानना ही पडेगा और चेतन तत्त्व भी जीवेश्वर भेद से दो

---

* *सत्याथप्रकाश अष्टम समल्लास*

† *वहा चेतन मठ मे ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और स यासियों से वदा त विषय की बहुत बात की । और मैं ब्रह्म हू अर्थात् जीव ब्रह्म एक है एसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने मुझको करा दिया । महर्षि दयानन्द की आत्मकथा सम्पादक डा० भवानीलाल भारतीय प० १३ प्रकाशन विभाग वदिक य त्रालय अजमेर द्वारा प्रकाशित ।*

‡ *आगरा मे विद्यारण्य कृत पञ्चदशी की कथा करते समय जब उन्होंने इस प्रकरण को देखा कि ईश्वर को भी भ्रम हो जाता है तो नवीनवदान्त के प्रति उनकी श्रद्धा समाप्त हो गई ।*

प्रकार का है। इस प्रकार ईश्वर जीव और प्रकृति के रूप म तीन अनादि तत्त्वो को स्वीकार कर स्वामी दयान द ने त्रतवादी दशन को उपस्थापित किया।

शाङ्कर मत दशन के क्षेत्र मे अपना निर्विवाद महत्त्व रखता है। वस्तुत उपनिषद ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भाष्य लिख कर तथा इस भाष्य के द्वारा अद्व तवाद का प्रतिपादन कर शकराचाय ने दाशनिक जगत् मे अपूव ख्याति अर्जित कर अपना गुरुतर महत्त्व स्थापित किया। शकराचाय की अदभुत तक शक्ति उनका विवेचन कौशल तथा ऊहा कुछ एसी प्रबल थी कि वे सहज ही अ य भेदवादी दशना को आक्रा त कर अभेदवाद की विजय-घोषणा कर सके। उ होने वेदा त सिद्धा त को अपने ही चि तन म ढाला और अपने स पूववर्ती वेदा त भाष्यकर्ताओ की भेदवादी यारयाओ को निरस्त कर अद्वितीय ब्रह्मवाद की स्थापना की। इसका यह अथ नही कि जिन ग्र था के आधार पर शकर ने अपने मत को स्थापित किया वे ग्र थ भी मूलत उनकी विचारधारा को ही मानते हैं। न तो उपनिषदो के ही समस्त वाक्यो को अद्व त विधायक कहा जा सकता है और न भगवद्गीता मे ही जीव ब्रह्म का अभेद वर्णित है। वेदा त सूत्रो के आधार पर भी एका त रूप से अद्वैत मत का निरूपण नही हो सकता। तथापि शकराचाय की प्रतिभा का ही यह कौशल है कि उ होने प्रस्थानत्रयी का समन्वित विचार करते हुये उसे एक मात्र अद्व तवाद का निरूपक सिद्ध किया है।

शकर के परवर्ती आचार्यो ने अद्व तवाद को यथावत् स्वीकार नही किया पर तु ऐसा लगता है कि वे शकर के विचारा से आक्रा त और त्रस्त अवश्य थे। अत आचाय म ्व के द्व त को छोडकर रामानुज का विशिष्टाद्व त निम्बाक का द्व ताद्व त तथा वल्लभ का शुद्धाद्व त किसी न किसी प्रकार से अद्वैतवाद को ही स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। वस्तुत मध्यकालीन भारतीय दाशनिक चि ता को अद्वैतवाद का ही पर्याय मान लिया गया और अद्व तवाद के

व्याख्याकारो टीकाकारो तथा भाष्यकारो ने तो अपना सम्पूण बल लगा कर इसी सिद्धान्त की विजय वजयन्ती फहराई ।

दाशनिक क्षत्र मे शकर का विरोध करना वस्तुत एक साहस की बात थी और यह साहस स्वामी दयानन्द जैसा कोई अपूव मेधा सम्पन्न निमल आप प्रज्ञा का धनी महापुरुष ही दिखला सकता था । स्वामीजी के समकालीन महापुरुषो का दाशनिक चिन्तन तो अत्यन्त अस्पष्ट एव धुधला सा है । उनके पूववर्ती ब्राह्मसमाज के प्रवतक राजा राममोहनराय ने उपनिषदो तथा ब्रह्मसूत्रो पर टीका लिखी परन्तु वे अपनी दाशनिक विचारणा को सुस्पष्ट रूप नही दे सके । शायद वे शाङ्कर मत को भी स्वीकार नही करते परन्तु पारमार्थिक सत्ता और विश्व की रचना प्रक्रिया के प्रति उनका इदइत्थम् दृष्टिकोण क्या है यह भी ज्ञात नही होता । देवेन्द्रनाथ ठाकुर उपनिषदो के ब्रह्मवाद से अत्यधिक प्रभावित थे परन्तु उनका भक्ति प्रवण हृदय जीवेश्वर अभेद को स्वीकार करने मे सकोच करता था । ब्राह्मसमाज के प्रगतिशील नेता केशवचन्द्र सेन तो ईसाई चिन्तन से प्राय आक्रान्त ही थे । अत वे जीव को ईश्वर से ही उत्पन्न मानकर उनके परस्पर अशाशी भाव को ही स्वीकार करते थे । निश्चय ही ब्राह्मसमाज ने अपना कोई सुविचारित और सुनिर्धारित दाशनिक मत प्रस्तुत करने की चेष्टा नही की । फलत समस्त ब्रह्म सिद्धान्ता का अध्ययन करने के पश्चात् भी उसका दशनवाद अस्पष्ट ही रहता है ।

इसके विपरीत स्वामी दयानन्द ने दशन की गूढ समस्याओ पर अपने तक पूण विचार प्रस्तुत करते हुये उन्हे एक सुनिश्चित दशन पद्धति का स्वरूप प्रदान किया । उनके दाशनिक विचारो का अध्ययन करने के लिये सत्याथप्रकाश के तृतीय, सप्तम अष्टम नवम और एकादश अध्यायो के प्रासगिक स्थल ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के कतिपय प्रकरण और वेदभाष्य तथा अन्य ग्रन्थो मे इतस्तत बिखरे स्थलो को देखना होगा । दाशनिक विवेचन की प्राचीन पद्धति को स्वीकार करते हुये स्वामीजी ने अवदिक दशनो का खण्डन भी किया है तथा पूवपक्ष और उत्तर पक्ष की स्थापना पूवक अपने पक्ष को स्थापित किया

है। उन्होंने अद्वैतवाद का खण्डन जिन विभिन्न स्थलों पर किया उनका उल्लेख इस प्रकार है—

१—सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में अद्वैतवाद के तथाकथित महावाक्यों का वास्तविक अर्थ बताते हुये जीवेश्वर भेद प्रतिपादित किया गया है। सदेवसोम्येदमग्र आसीत् * आदि उपनिषद् वाक्यों का प्रसंगोपात्त अर्थ करते हुये ब्रह्म का स्वरूप निरूपित किया गया है।

२—अष्टम समुल्लास में द्वासुपर्णा सयुजा सखाया † इस ऋग् मन्त्र को उद्धृत कर ईश्वर, जीव एवं प्रकृति की अनादिता का निरूपण किया गया है। साथ ही नव्य वेदान्त में प्रतिपादित ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मानने का खण्डन करते हुये उसे सृष्टि का निमित्त कारण सिद्ध किया गया है।

३—नवम समुल्लास में न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ‡ इत्यादि माण्डूक्योपनिषद पर विरचित गौडपादीय कारिकाओं का खण्डन करते हुये चिदाभास अध्यारोप आदि शाङ्कर मत स्वीकृत परिभाषाओं की आलोचना की गई है। साथ ही मोक्ष के वैदिक स्वरूप का विवेचन किया गया है।

४—एकादश समुल्लास में अत्यन्त विस्तार में जाकर नवीन वेदान्त की समालोचना की गई है। अभेद प्रतिपादक प्रतीत होने वाले उपनिषद् वाक्यों तथा वेदान्त सूत्रों का तत्त्वार्थ बताते हुये ब्रह्मसूत्रों में से कतिपय स्पष्टतः भेद प्रतिपादित करने वाले सूत्र उपस्थित किये गये हैं।

सं० १९३१ वि० में स्वामीजी ने वेदान्ति ध्वान्त निवारण नामक एक

---

* छान्दोग्य प्र० ६ । ख० २

† ऋग्वेद १ । १६४ । २०

‡ गौडपादीय कारिका प्र० १ । का० ३२

अन्य लघु ग्रन्थ लिखा जिसमे जीव ब्रह्म की एकता जीव के अकर्ता और अभोक्ता होने जगत् के मिथ्यात्व तथा मोक्षावस्था मे जीव का ब्रह्म मे लय मानने का तर्क पूर्ण ढग से खण्डन किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने यथार्थवाद की दृष्टि से ईश्वर जीव और प्रकृति की अनादि सत्ताओ को स्वीकार किया ईश्वर को ससार का रचयिता पालक एव सहारकर्ता मानते हुये त्रिगुणात्मिका प्रकृति को उसका उपादान कारण प्रतिपादित किया। वे जीव को एक स्वतन्त्र चेतन सत्ता मानते है जो कर्मों का भोक्ता और फल प्राप्त कर्ता है। वह ईश्वर की तुलना मे अल्पज्ञ अल्पशक्ति वाला तथा परिच्छिन्न अणु है। प्रकृति जड है जो स्वय गतिहीन होने के कारण ईश्वर की चेतन सत्ता की सहायता से गतिशील होती है तथा सांख्य निरूपित पद्धति के अनुसार विकृत अवस्था मे आकर सृष्टि निर्माण मे सहायक होती है। प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को सवत्र स्वीकार किया गया है तथा उसे ही अजा प्रधान और अव्यक्त आदि नामो से वर्णित किया गया है।

भारत के पुनर्जागरण से सम्बन्धित आन्दोलनो के दार्शनिक चिन्तन का विश्लेषण करते समय यह बात सहज ही ध्यान मे आ जाती है कि नवोदय के सूत्रधार नेताओ मे से अधिकाश का दार्शनिक मतवाद अस्पष्टता के कुहासे से आच्छन्न है। ब्राह्म आचार्यों के दार्शनिक विचारो की चर्चा हम कर चुके हैं। थियोसोफी के प्रवर्तको के तत्त्व चिन्तन का वास्तविक स्वरूप क्या था यह भी अज्ञात सा ही है। निश्चय ही स्वामी दयानन्द सुधारक सम्प्रदायो के आचार्यों मे एक प्रौढ दार्शनिक के रूप मे प्रतिष्ठित है। उनके व्यवस्थित, सुलझे हुये तर्क पूर्ण विचारों ने वैदिक त्रैतवाद को सुस्पष्ट एव निर्विवाद मत के रूप मे उपस्थापित किया। यह दूसरी बात है कि स्वामी दयानन्द के अनुयायी विद्वानो ने जहाँ अपने आचार्य के बहुमुखी व्यक्तित्व के कुछ अन्य पहलुओ को उजागर करने का भरपूर प्रयास किया, वहाँ वे दयानन्द की दार्शनिक अवधारणा को पल्लवित तथा विकसित करने का कोई सफल प्रयास नही कर सके। परिणाम यह हुआ कि दयानन्द एक धर्म सुधारक समाज सशोधक एव

राष्ट्रीयता के जनक महापुरुष के रूप म तो प्रतिष्ठित हुय पर तु तत्त्वचि तक के रूप म उनके योगदान को विस्मृत कर दिया गया ।

उन्नीसवी शती के अ तिम दो दशको मे जब बगाल के अद्व तवादी स त रामकृष्ण परमहस ने अपनी रहस्यपूण साधनाओ से कम कि तु सहज सरल एव बोधगम्य उक्तिया और दृष्टा ता से अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया तो उनके इद गिद जिन जिज्ञासु भक्तो की भीड इकट्ठी हुइ उसमे एक अत्य त प्रतिभाशाली व्यक्ति भी था जिसे काला तर मे ससार ने विवेकान द के नाम म जाना । विवेकान द को अद्व त मत की दीक्षा अपने गुरु परमहस देव से ही प्राप्त हुई पर तु जसा कि हम जानते हैं रामकृष्ण स्वय शास्त्रो स अनभिन होने के कारण अपने शिष्यो को वेदा त निरूपक ग्र थो से शिक्षित करने की अपेक्षा अपनी सुगूढ आध्यात्मिक रहस्यपूण अनुभूतियो के कुहुक से ही अधिक प्रभावित करते थे । काला तर मे स्वामी विवेकान द तथा उनके अ य गुरु-भाइयो ने स्वत त्र रूप से शास्त्राभ्यास किया तथा अपने वेदा त विषयक म तव्यो को पुष्ट किया । पर तु स्वामी विवेकान द के ग्र थो का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह निश्चय हो जाता है कि वे न तो अद्व तवाद के सम्ब ध मे प्रारम्भ से ही सवथा आश्वस्त थे और न वे शकराचाय के द्वारा प्रस्थानत्रयी की व्याख्या मे की गई खीचतान को ही उचित मानते थे । यद्यपि समया तर म व अद्व तवाद के सबसे बडे प्रस्तोता समथक तथा प्रचारक के रूप मे लोक विश्रुत हुये पर तु अद्वैतवाद निरूपण के लिये जो तक पद्धति अपनाई जाती है तथा इस प्रक्रिया मे जो दुबलतायें है उनसे भी वे पूणतया परिचित थे । अ तत वे यह भी मानते प्रतीत होते हैं कि ईश्वर जीव और प्रकृति का स्वत त्र अस्तित्व किसी न किसी रूप मे स्वीकार करना ही पडता है और इस प्रकार वे अ य रूप मे ‍‍तवाद को भी मानते हैं । वेदा त के सम्ब ध मे विवेकान द के विचारा मे अ तर्विरोध भी कम नही है । इस प्रकार के वदतोव्याघात पूण कथनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेकान द शङ्कर प्रतिपादित न य वेदा त के विश्व व्यापी प्रचारक भले ही रहे हो पर तु उनके स्वय के दाशनिक मत मे व्यवस्थित

चिन्तन सगति तथा तर्कमूलकता का अभाव ही है। खेद है कि विवेकानन्द के ग्रन्थो के अध्येताओ ने विचारो की इन असगतियो की ओर कभी ध्यान नही दिया।

इस प्रारम्भिक विवेचन के साथ हम विवेकानन्द के दार्शनिक मन्तव्यो का परीक्षण प्रारम्भ करते है। अपने आपको अद्वैतवादी कहने पर भी अद्वैतवाद पर उनकी पूर्ण आस्था जम नही सकी थी। उनके मन मे एतद् विषयक अनेक शकाये और सदेह थे जिनकी निवृत्ति वे चाहते थे। श्री प्रमदादास मित्र को लिखे अपने एक पत्र मे उन्होने निम्न शकाये प्रस्तुत की है—

चैतन्य ने कहा है मैं व्यास के सूत्रो को समझता हू। वे द्वैतात्मक हैं परन्तु भाष्यकारो ने उन्हे अद्वैतात्मक बना दिया है यह बात समझ मे नही आती।

तन्त्र मे आचार्य शकर को प्रच्छन्न बुद्ध कहा गया है। बौद्ध महायान के प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रज्ञापारमिता मे वर्णित सिद्धान्त आचार्य शकर द्वारा प्रतिपादित वेदान्त मत से बिल्कुल मिलता जुलता है। पचदशीकार का भी यही कहना है कि जिसे हम लोग ब्रह्म कहते है वही तत्त्वत बौद्धो का शून्य है। इस सबका क्या अर्थ है?'

यदि व्यास के अनुसार स्वय महासिद्ध कपिल मुनि ने ही भूल की है तो कौन कह सकता है कि स्वय व्यास ने उसकी अपेक्षा बडी भूल नही की? क्या कपिल वेदो को नही समझ सके?' *

इन शकाओ मे पर्याप्त तथ्याश है इससे इन्कार नही किया जा सकता। एक जिज्ञासु की भाति अद्वैत मत पर उपर्युक्त तर्कपूर्ण शकाये प्रस्तुत करना ही यह सिद्ध करता है कि शकराचार्य ने अपने मत की स्थापना करते समय शास्त्रो का अर्थ करने मे पर्याप्त स्वतन्त्रता तथा स्वेच्छाचारिता बरती थी। यह

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १५ १६ १७

एक ऐतिहासिक तथ्य है कि शकर क पूव वेदा त दशन के जो भाष्यकार थे वे इन सूत्रा की भेद परक याख्या पर ही बल देते थे पर तु जब शकर ने अपने दादा गुरु गौडपाद प्रवर्तित मायावाद पर आधारित ब्रह्म क्यवाद का आधार लेकर वेदा त सूत्रो की यारया की तो यह समझा जाने लगा कि वस्तुत इन सूत्रा का तात्पय अद्व त के प्रतिपादन मे ही है। यह दूसरी बात है कि आज शकर पूव के वेदा त भाष्य ही उपल ध नही होते अत उन पूववर्ती आचार्यो ने बादरायण सूत्रो की व्यारया किन सिद्धा तो का आश्रय लेकर की थी यह ज्ञात नही होता। रामानुज ने अपने भाष्य म बोधायन के भाष्य की चर्चा की है और यह स्वीकार किया है कि बोधायन कृत ब्रह्म सूत्र की विस्तृत वृत्ति का आधार लेकर ही उ हाने सूत्रो की यह याख्या लिखी है।* अत चत य के इस कथन से सहमत होना ही चाहिये कि यास के सूत्र मूलत द्व तात्मक हैं तथा शकरादि भाष्यकारो ने उ ह अद्व तात्मक बना दिया है।

जहाँ तक शकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहने का अभिप्राय है न केवल त त्रो मे अपितु पद्मपुराणादि ग्र था मे भी मायावादमसत शास्त्र प्रच्छ न बौद्ध मेवच † आदि के द्वारा शाङ्कर मायावाद को गुप्त बौद्ध सिद्धा त माना गया है। अब तो यह सिद्ध हो गया है कि गौडपाद ने अपनी माण्डूक्योपनिषद् पर लिखी गई कारिकाआ मे जो तक सरणि अपनाई है वह शू यवादी बौद्धो की ही है और अद्वैतवादिया ने बौद्धो के शू य के स्थान पर ब्रह्म को रख कर उसे एक नया रूप मात्र प्रदान किया है। जहाँ तक विवेकान द की अ तिम शका का सम्ब ध है हम निस्सकोच कह सकते हैं कि कपिल के सम्ब ध मे आलोचनात्मक चर्चा यास के मूल सूत्रा मे कही उपलब्ध नही होती। यह तो भाष्यकार शकर की करामात है कि उ होने प्रकरण की अवहेलना कर सूत्र विशेष से कापिल सारय

---

* *भगवद् बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्र वत्ति पूर्वाचाय सचिक्षिपु त मतानुसारेण सूत्राक्षराणि याख्यास्य ते।*

† *विज्ञानभिक्षु कृत साख्य प्रवचन भाष्य मे उद्धत पद्मपुराण के श्लोक।*

का खण्डन होता है यह मान लिया । वस्तुत व्याससूत्रो का पूवग्रह मुक्त अध्ययन यह स्पष्ट कर दता हे कि इनमे सारय योग याय वशेषिक आदि दशनो का खण्डन नही है । अत कपिल को अनीश्वरवादी कहना या उसके सम्बन्ध मे अन्य प्रकार की भ्रान्तियां फैलाना अद्वैतवादी व्याख्याकारो का ही करिश्मा माना जाना चाहिये । यहाँ हमे पुन स्वामी दयानन्द का स्मरण हो आता है जिन्होने कापिल सारय के सम्बन्ध मे उसके अनीश्वरवादी होने का तीव्र प्रतिवाद ही नही किया अपितु उसक आस्तिक एव ईश्वरवादी स्वरूप की व्याख्या भी की ।*

बात यह है कि स्वामी विवेकानन्द नये नये अद्वैतवादी बने थे । रामकृष्ण के सम्पक मे आने से पूव वे साधारण ब्राह्मसमाज के सदस्य थे । तब उन्होने कहा था मैं ही ब्रह्म हूँ इस बात को कहने के सदृश और दूसरा कोई पाप नही है । † परन्तु अब वेदान्ती बन जाने पर वे अहं ब्रह्मास्मि का खुल कर प्रचार करने लगे । अद्वैत सिद्धान्त का उन्होने किस प्रकार प्रतिपादन किया यह देखना भी आवश्यक है । जसा कि हम ऊपर लिख चुके है विवेकानन्द इस बात से आश्वस्त नही हो सके थे कि शकर कृत वेदान्त की व्यारया सवथा निदोष है । वे यह स्वीकार करते है कि यह प्रमाणित करने के लिये कि वेदो के सभी वाक्य उनके प्रचारित दशन के समथक है शकर को कूट तक का आश्रय लेना पडा ।' ‡ शकर की यह दुबलता जानते हुये भी स्वय विवेकानन्द ने अद्वैत सिद्धि मे जो हेतु प्रस्तुत किये वे शकर द्वारा प्रस्तुत हेतुओ से अधिक भिन्न नही हैं । वस्तुत वे हेतु न होकर हेत्वाभास ही है । कुछ नमूने देखिये—

मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नही है । मुक्ति तो हमारे भीतर पहने

---

* 'इसलिये जो कोई कपिलाचाय को अनीश्वरवादी कहता है, जानो वही अनीश्वरवादी है कपिलाचाय नहीं । सत्याथप्रकाश सप्तम समुल्लास

† विवेकानन्द चरित पृ० ७५

‡ देववाणी पृ० १०८

स ही विद्यमान है × यदि मुक्ति के लिये ईश्वर भक्ति की अपेक्षा नहीं है तो स्वयं वेदान्ती भी मोक्ष हेतु साधन चतुष्टय अनुबंध चतुष्टय श्रवण चतुष्टय आदि को क्यों स्वीकार करते है? तप त्याग संयम और साधना के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि मुक्ति स्वयंसिद्ध वस्तु नहीं है कतिपय साधना से ही उसे प्राप्त किया जाता है।

हेत्वाभासों के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है। स्वामीजी लिखते हैं— स्वप्न और स्वप्न द्रष्टा दो पृथक वस्तुयें नहीं हैं। क्या यह कथन तर्क का प्रहार सहन कर सकता है। यदि स्वप्न और स्वप्न द्रष्टा एक ही हो तो ज्ञान और ज्ञाता कर्म और कर्ता भी एक ही मानने होंगे। जो हो विवेकानन्द जैसे तर्क प्रवण व्यक्ति के लिये यह भी सम्भव नहीं था कि वे वेदान्त के जगन्मिथ्या-वाद को यथातथ रूप में स्वीकार कर लेते। अतः उन्होंने जगत् के अस्तित्व से सर्वथा इन्कार नहीं किया। यदि जगन्मिथ्यावाद का यही अर्थ है जो विवेकानन्द ने किया है तो उसे स्वीकार करने में किसी को क्या विप्रतिपत्ति हो सकती है। ज्ञानयोग नामक पुस्तक में वे लिखते हैं—

जगत् मिथ्या है इसका अर्थ क्या है? इसका यही अर्थ है कि उसका निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। अतएव इसकी सत्ता नहीं है। वह अपरिवर्तनीय अचल अनन्त नहीं है। किन्तु इसको अस्तित्व शून्य नहीं कहा जा सकता कारण इसकी वर्तमानता है और इसके साथ मिल कर ही हमें कार्य करना है। * पर्याप्त सीमा तक यह कथन संगत होने पर भी लेखक के विचारों की असंगति इस बात से विदित होती है कि एक ओर तो वह जगत् की सत्ता को अस्वीकार करता है तो दूसरी ही सांस में वह उसे अस्तित्व शून्य भी नहीं मानता। जगत् को अपरिवर्तनीय अचल और अनन्त

× स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप पृ० ११२

* पृ० १३

का खण्डन होता है यह मान लिया । वस्तुत न्यायसूत्रों का पूर्वग्रह मुक्त अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि इनमे सांख्य योग न्याय वैशेषिक आदि दर्शनों का खण्डन नहीं है । अतः कपिल को अनीश्वरवादी कहना या उसके सम्बन्ध मे अन्य प्रकार की भ्रान्तियां फैलाना अद्वैतवादी व्याख्याकारों का ही करिश्मा माना जाना चाहिये । यहाँ हमें पुनः स्वामी दयानन्द का स्मरण हो आता है जिन्होंने कापिल सांख्य के सम्बन्ध मे उसके अनीश्वरवादी होने का तीव्र प्रतिवाद ही नहीं किया अपितु उसके आस्तिक एवं ईश्वरवादी स्वरूप की व्याख्या भी की ।*

बात यह है कि स्वामी विवेकानन्द नये नये अद्वैतवादी बने थे । रामकृष्ण के सम्पर्क मे आने से पूर्व वे साधारण ब्राह्मसमाज के सदस्य थे । तब उन्होंने कहा था 'मैं ही ब्रह्म हूँ इस बात को कहने के सदृश और दूसरा कोई पाप नहीं है ।'† परन्तु अब वेदान्ती बन जाने पर वे अहं ब्रह्मास्मि का खुल कर प्रचार करने लगे । अद्वैत सिद्धान्त का उन्होंने किस प्रकार प्रतिपादन किया यह देखना भी आवश्यक है । जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं विवेकानन्द इस बात से आश्वस्त नहीं हो सके थे कि शंकर कृत वेदान्त की व्याख्या सर्वथा निर्दोष है । वे यह स्वीकार करते हैं कि 'यह प्रमाणित करने के लिये कि वेदों के सभी वाक्य उनके प्रचारित दर्शन के समर्थक हैं शंकर को कूट तक का आश्रय लेना पड़ा ।'‡ शंकर की यह दुर्बलता जानते हुये भी स्वयं विवेकानन्द ने अद्वैत सिद्धि मे जो हेतु प्रस्तुत किये वे शंकर द्वारा प्रस्तुत हेतुओं से अधिक भिन्न नहीं हैं । वस्तुतः वे हेतु न होकर हेत्वाभास ही हैं । कुछ नमूने देखिये—

मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है । मुक्ति तो हमारे भीतर पहले

---

* *इसलिये जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है कपिलाचार्य नहीं । सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास*

† *विवेकानन्द चरित पृ० ७५*

‡ *देववाणी पृ० १०८*

से ही विद्यमान है × यदि मुक्ति के लिये ईश्वर भक्ति की अपेक्षा नहीं है तो स्वयं वेदान्ता भी मोक्ष हेतु साधन चतुष्टय अनुबंध चतुष्टय श्रवण चतुष्टय आदि को क्यों स्वीकार करते है ? तप त्याग संयम और साधना के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि मुक्ति स्वयंसिद्ध वस्तु नहीं है कतिपय साधना से ही उसे प्राप्त किया जाता है।

हेत्वाभासों के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है। स्वामीजी लिखते हैं—स्वप्न और स्वप्न द्रष्टा दो पृथक वस्तुयें नहीं हैं। क्या यह कथन तर्क का प्रहार सहन कर सकता है। यदि स्वप्न और स्वप्न द्रष्टा एक ही हो तो ज्ञान और ज्ञाता कर्म और कर्ता भी एक ही मानने होंगे। जो हो विवेकानन्द जैसे तर्क प्रवण व्यक्ति के लिये यह भी सम्भव नहीं था कि वे वेदान्त के जगन्मिथ्या-वाद को यथातथ रूप में स्वीकार कर लेते। अतः उन्होंने जगत् के अस्तित्व से सर्वथा इन्कार नहीं किया। यदि जगन्मिथ्यावाद का यही अर्थ है जो विवेकानन्द ने किया है तो उसे स्वीकार करने में किसी को क्या विप्रतिपत्ति हो सकती है। ज्ञानयोग नामक पुस्तक में वे लिखते है—

जगत् मिथ्या है इसका अर्थ क्या है ? इसका यही अर्थ है कि उसका निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। अतएव इसकी सत्ता नहीं है। वह अपरिवर्तनीय अचल अनन्त नहीं है। किन्तु इसको अस्तित्व शून्य नहीं कहा जा सकता कारण इसकी वर्तमानता है और इसके साथ मिल कर ही हमें कार्य करना है। * पर्याप्त सीमा तक यह कथन संगत होने पर भी लेखक के विचारों की असंगति इस बात से विदित होती है कि एक ओर तो वह जगत् की सत्ता को अस्वीकार करता है तो दूसरी ही सांस में वह उसे अस्तित्व शून्य भी नहीं मानता। जगत् को अपरिवर्तनीय अचल और अनन्त

× स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप पृ० ११२

* पृ० १३

तो द्वैतवादी भी नही मानते। स्वप्न के दृष्टान्त से जगत् का मिथ्यात्व प्रतिपादन करना भी वेदान्तियों का एक प्रिय विषय रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा इस जगत् की वास्तविक सत्ता नही है जो है वह केवल प्रतीत हो रही है। ये देवता स्वर्ग जन्म मृत्यु अनन्त संख्यक आत्माये ये जो सब आ रहे है जा रहे हैं ये सब ही केवल स्वप्न मात्र हैं। * स्वप्न का दृष्टान्त देते समय वेदान्ती यह भूल जाते है कि स्वप्न मे देखी हुई वस्तुओ का भौतिक जगत् मे तो किसी न किसी रूप मे अस्तित्व होता ही है। अतः मानसिक संस्कार वश उन्हे स्वप्नावस्था मे परिवर्तित रूप मे देखने पर भी उनके अस्तित्व के विषय मे शंका कैसे हो सकती है।

जीव को सदा मुक्त मानने वाले वेदान्ती भी अज्ञान से उसका बद्ध होना स्वीकार करते है परन्तु तर्क की कसौटी पर विवेकानन्द का यह कथन कितना निस्सार सिद्ध होता है यह कहना आवश्यक नही है ' कल्पना करो तुम मुक्त थे इस समय किसी कारण से उस मुक्त स्वभाव को खोकर बद्ध हुये हो तो ऐसा होने पर प्रमाणित होता है कि तुम पहले से ही मुक्त नही थे। यदि तुम मुक्त थे तो किसने तुम्हे बद्ध किया ? जो स्वतन्त्र है वह कभी परतन्त्र नही हो सकता और यदि हो सकता है तो प्रमाणित हुआ कि वह कभी स्वतन्त्र नही था। ‡ आश्चर्य होता है कि युक्ति और तर्क से वेदान्त की सिद्धि करने वाले महापुरुष की लेखनी से भी ऐसी भ्रान्त उक्तियां निसृत हो सकती है। यह कथन स्पष्ट ही हेत्वाभास पूर्ण है कि जो स्वतन्त्र है वह कभी परतन्त्र नही हो सकता। भारत यदि कभी परतन्त्र रहा तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि वह कभी स्वतन्त्र रहा ही नही। पुनः स्वामीजी के कथन का क्या अर्थ है।

निश्चय ही वेदान्तवादियो की उक्तियो मे तार्किकता की अपेक्षा भावुकता

---

* धर्म विज्ञान पृ० १५

‡ ज्ञानयोग पृ० २९४

ही अधिक रहती है तभी विवकान द ने एक प्रनग म हा— मैं ही सकल चौय वृत्तिकारी सकल चोर स्वरूप ह आर जितन हत्याकारी फासी पर लटक है उनका भी स्वरूप मैं सवमय हू। † कहने के लिय कहा जा सकता है कि यजुर्वेद के रुद्राध्यायान्तगत कतिपय म त्रा क अथ भी इसी भाव को लेकर किये गये है‡ तथा गीता के विभूतियोग परक श्लोको से भी कुछ ऐसी ही ध्वनि निकलती है पर तु तथ्य यह है कि ससारी पुरुषा के शुभाशुभ कृत्या के लिये परमात्मा को उत्तरदायी किस प्रकार ठहराया जा सकता है ?

नवीन वेदा त का सारा भवन ही मायावाद पर आश्रित है। यह निर्विवाद सत्य है कि मायावाद के सिद्धा त को शकराचाय न जिस रूप मे स्थापित किया वह उस रूप मे प्राचीन वदिक वाङमय म उपल ध नही होता। वेद मे माया शक्ति के पर्याय रूप प्रयुक्त हुआ है। श्वताश्वतरोपनिषद् मे माया को साख्य की प्रकृति के लिये प्रयुक्त किया गया है। वेदा ती के लिये मायावाद एक अनिवाय बुराई के रूप म दुर्निवार सिद्धा त बन गया है इस स्वय विवकान द भी स्वीकार करते है। एक प्रसग मे उ होने कहा— मायावाद के बिना अद्व तवाद की किसी भी प्रकार की व्याख्या सम्भव नही है।'* परन्तु वे यह भी जानते है कि माया शब्द का वास्तविक अथ वह नही है जो शाङ्कर मत वाला को अभिप्रेत है। अत वे कहते हैं— वदिक साहित्य मे कुहक अथ मे ही माया श द का प्रयोग देखा जाता है। यही माया शब्द का सबसे प्राचीन अथ है। कि तु उस समय वास्तविक मायावाद तत्त्व का उदय नही हुआ था। × जब विवेकान द यह मानते है कि माया का सबसे प्राचीन अथ वह नही है जो शकराचाय को अभिप्रेत है ता वे इस नवीन अश को क्यो महत्त्व

---

† धम रहस्य पृ० १९

‡ यजुर्वेद १६। २१

* स्वामी विवेकान द से वार्तालाप पृ० ११३

× ज्ञानयोग पृ० ८ (लन्दन मे दिया गया एक भाषण)

दत है ? परन्तु वे तो यह भी अनुभव करत थे कि मायावाद ससार के सभी दार्शनिकों को मान्य नही है। अधिकाश दार्शनिकों ने इस मत को स्वीकार नहा किया। × इस प्रकार हम सहज हा इस निष्कष पर पहुँच जाते है कि वन्ात मत क शकराचाय प्रतिपादित स्वरूप के विवेकानन्द चाहे कितने ही प्रवल समथक क्यो न हा व इस सिद्धान्त की त्रुटियो और दुबलताओ से भी पूण परिचित थे।

स्वामी विवकानन्द के दाशनिक चिन्तन की असगतिया उस समय और भी उभर आती हैं जब वे प्रकारान्तर से अपने अद्वैतवादी मत को तिलाञ्जलि देकर अन्य प्रकार से त्रैतवाद का समथन करने लगते है। यहाँ कुछ ऐसे हो उद्धरण दिये जाते है जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि ईश्वर जीव और प्रकृति की अनादि सत्तायें उन्हे निर्विवाद रूप मे स्वीकाय थी। वे लिखते है— ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीन सत्ताय हमे स्वीकृत करनी ही पडती है। उनको बिना स्वीकार किये हम रह हा नही सकते।'* अन्यत्र भी उन्होने कहा— हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है। वेदान्त मत के अनुसार यह जीव ठीक वसा ही अनन्त है जसा कि ईश्वर। प्रकृति भी अनन्त है पर वह परिवतनशील शील अनन्त सत्ता है। † जब वे जीव और प्रकृति को भी ईश्वर के तुल्य ही अनादि और अनन्त मान लेते है तो विवाद की कोई गुञ्जाइश ही नही रहती।

वस्तुत अद्वैतवाद की आधार शिला हो शास्त्रीय अर्थों की खीचतान है। विवेकानन्द इस तथ्य से अवगत थे कि अद्वैतमत के आदि आचाय शकर ने भी शास्त्रो के यथेच्छ अथ करके ही उनसे अद्वैत सिद्धि की है। यह बात उन्होने

× वही पृ० २८८

* देववाणी पृ० १८८

† वदप्रणीत हिन्दु धम पृ० ६८ ६६

एकाधिक बार कही। व्यास सूत्रो की व्यारया मे शकर के दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुये उन्होने लिखा—'शकर अद्व तवादी थे इसलिये उन्होने सभी सूत्रा की केवल अद्व त मत मे व्याख्या करने की चेष्टा की है। ‡ अपने एक भाषण मे भी उन्होने यही बात कही शकराचाय जसे बडे बडे भाष्यकारो ने अपने मत की पुष्टि के लिये जगह-जगह पर शास्त्रो का ऐसा अथ किया है जो मेरी समझ मे समीचीन नही है। * दयानन्द के विचार भी यहाँ विवेकानन्द के विचारो से अधिक भिन्न नही हैं। परन्तु बात केवल शकर की ही नही है। मध्यकालीन अनेक आचार्यो ने स्वमत की पुष्टि के लिये शास्त्रीय अर्थो का अनथ किया है। स्वामी दयानन्द जसा विचक्षण शास्त्रालोचक इस तथ्य से पूणतया अवगत था। इसोलिये उन्होने पुरातन आष ग्रन्थो की मनमानी दोष पूण व्यारयायें करने के लिये मध्यकाल के इन आचायमन्यो को उत्तरदायी ठहराया था। विवेकानन्द ने भी इस सम्बन्ध मे यही दृष्टिकोण अपनाया। केवल अद्व तवादी भाष्यकार ही नही अपितु विशिष्टाद्वैतवादी भेदाभेदवादी तथा शुद्धाद्वैतवादी भाष्यकारो ने भी सूत्रो की मूल प्रवृत्ति को भुला कर स्वमतानुकूल अथ किये है।† दशन की ही भाति वेदाथ करने मे भी आचार्यों ने इसी सकीण मनोवृत्ति का परिचय

---

‡ *प्राच्य और पाश्चात्य प० ८०*

* *भारत मे विवकानन्द-प० ३३७*

† *वे यह दिखलाते थे कि अपने ही मतानुसार सूत्रों का गलत अथ करने के कारण प्रत्येक भाष्यकार किस प्रकार अपराधी है, वे यह भी दर्शाते थे कि ये भाष्यकार किस प्रकार स्वय की व्याख्या का समथन करने के उद्दश्य से अपने ही अथ को निस्सकोच भाव से इन सूत्रों मे घुसेड देते थे। देववाणी प० १५*

दिया है और वेदार्थ के साथ अपने दार्शनिक मन्तव्यों का तालमेल बिठाने के लिये कपोल कल्पित व्याख्यायें की हैं।‡

शास्त्रों के अर्थों का अनर्थ करने के लिये विवेकानन्द ने शंकराचार्य आदि आचार्यों को दोषी ठहराया परन्तु वे स्वयं भी इस दोष से मुक्त थे ऐसी बात नहीं। ईश्वर जीव और प्रकृति की अनादिता को सिद्ध करने वाला ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ १।१६४।२०

अपने एक ग्रन्थ में उन्होंने इस मन्त्र की व्याख्या की है। यहाँ उस पूरी व्याख्या को हम उद्धृत कर रहे हैं। पाठक ध्यान से देखें कि मन्त्र के मूल अर्थ से हट कर वे किस प्रकार उसको अद्वैत सिद्धि में परिणत कर देते हैं? मन्त्र की व्याख्या में उन्होंने लिखा— एक ही वृक्ष पर सुन्दर पंख वाले दो पक्षी हैं। उनमें से एक वृक्ष के ऊपर वाले भाग पर और दूसरा नीचे वाले भाग पर बैठा है। नीचे का सुन्दर पक्षी वृक्ष के मीठे और कड़ुवे फलों को खाता है— एक बार मीठे फल को और उसके बाद ही कड़ुवे फल को खाता है। जिस मुहूर्त में उसने कड़ुवे फल को खाया उसको कष्ट हुआ कुछ क्षण के बाद ही एक और फल खाया और जब वह भी कड़ुवा लगा तब उसने ऊपर की ओर देखा। ऊपर उसको दूसरा पक्षी दिखाई दिया वह मीठे या कड़ुवे किसी भी फल को नहीं खाता। वह अपनी महिमा में मग्न हो स्थितभाव से बैठा है। किन्तु उसे देख कर भी फिर भूल से फल खाने लगा। अन्त में उसने एक ऐसा फल खाया जो बड़ा ही कड़ुवा था तब वह फल खाने से विरक्त हो फिर उस

---

‡ *बड़े-बड़े भाष्यकारों ने वेदों की अक्षर राशियों के साथ अपने-अपने दर्शन का मेल बैठाने के लिये समय समय पर जानबूझ कर मिथ्या भाषण भी किया है। देववाणी पृ० १०१*

ऊपर वाले महिमामय पक्षी को देखने लगा। यहाँ तक की व्यारया तो हमे निर्दोष लगती है क्योकि इसी म त्र को उद्धत कर श्वेताश्वतर उपनिषद् मे उसकी व्याख्या स्वरूप निम्न म त्र और लिखा गया है—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो अनीशया शोचति मुह्यमान ।
जुष्ट सदा पश्यति अ यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोक ॥ ४। ७

पर तु इससे आगे की व्याख्या मे स्वामी विवेकानन्द म त्र के मूल प्रतिपाद्य अत को छोड कर उससे अद्व तवाद सिद्ध करने के प्रलोभन मे जाने कहाँ कहा भटकने लगे। वे आगे लिखते है— धीरे धीरे वह उस ऊपर वाले पक्षी की ओर अग्रसर होने लगा। जब वह उसके एक दम निकट पहुँचा—तब उसके ऊपर वाले पक्षी की अग ज्योति उसके ऊपर पडी और धीरे धीरे ज्योति ने उसको वेष्टित कर लिया अब तो उसने देखा कि वह उस ऊपर वाले पक्षी मे परिणत हो गया है। तब से वह शा त और महिमामय हो गया है। उसको मालूम हुआ कि असल मे वृक्ष पर दो पक्षी कभी थे ही नही—केवल एक ही पक्षी था। नीचे वाला पक्षी ऊपर वाले पक्षी की केवल छाया थी। वह स्वय बराबर स्वरूपत ऊपर वाला पक्षी ही था। नीचे वाले पक्षी का मीठा और कडुवा फल खाना और एक के बाद एक सुख और दु ख का बोध करना सब मिथ्या सब स्वप्न मात्र है वह प्रशस्त निर्वाक महिमामय शाकदुखातीत ऊपर वाला पक्षी ही सवदा विद्यमान था। *

शब्दाडम्बरपूण इस याख्या को म त्रानुगत भाव का स्पष्टीकरण कहने मे हमे सकोच होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह अभिप्राय कदापि नही था जो स्वामीजी की व्याख्या से झलकता है। ससार के सुख दु खो के फला को म त्र मे न तो मिथ्या कहा गया है और न स्वप्न। पुन इस म त्र के प्रकृत अथ को विकृत कर उससे अपने म त त्र को सिद्ध करना क्या अनधिकार चेष्टा नही है?

---

* धम रहस्य प० ६२

यह तो निश्चय ही स्वीकार करना पडेगा कि विवेकानन्द ने वेदान्त को एक नई अर्थवत्ता प्रदान की। वे वेदान्त के विचारो को सर्व व्यापी और सर्व-ग्रासी मानते है। मध्यकालीन आचार्यो ने जिस प्रकार वेदात को सकीर्णधाराओ मे अवरुद्ध कर दिया था उससे मुक्त कर उसे एक सार्वजनीन रूप मे प्रतिष्ठित करना उनका ध्येय था। यह दूसरी बात है कि इसमे उन्हे कहा तक सफलता मिली अथवा वे ऐसा करके वेदान्त के मूलाधार को कहा से कहाँ ले गये ? अपने एक पत्र में वे लिखते है— समग्र धर्म वेदान्त मे ही हैं अर्थात् वेदान्त दर्शन के द्वैत विशिष्टाद्वैत और अद्वैत इन तीन स्तरो या भूमिकाओ मे है और ये एक के बाद एक आते हैं। योरप की जातियो के विचारो मे उसकी पहली भूमिका का प्रयोग है ईसाई धर्म अद्वैतवाद ही अपनी योगानुभूति के आकार मे हुआ बौद्ध धर्म। * यदि द्वैत और विशिष्टाद्वैत को भी अद्वैतानुयायी वेदान्ती प्रकारान्तर से अपनी ही विचारधारा का अंग मानें तो किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। और क्या द्वैतानुभूति मात्र ईसाइयो मे ही मिलती है ? क्या भारतीय दार्शनिक विचारणा द्वैतानुभूति से सर्वथा शून्य है ? भारत के सभी भक्ति और उपासना सम्प्रदाय द्वैतानुभूति पर ही खडे हैं। यदि जीवेश्वर भेद समाप्त हो जाय तो उपासना का अर्थ ही समाप्त हो जायगा। इसी प्रकार योगानुभूति केवल बौद्धो तक ही सीमित नही रही। पातञ्जल राजयोग की साधना तो वैदिक धर्म की ही सर्व स्वीकृत प्रणाणी है। बौद्धो ने तो योग को विकृत कर उसे नाना जुगुप्सा-मूलक अनाचारो मे परिणित कर दिया था।

निश्चय ही विवेकानन्द एक ऐसे युग मे उत्पन्न हुये थे जिसमे अद्वैतवादी विचारो की सकीर्ण कारा मे अपने आपको अवरुद्ध कर अन्य दार्शनिक मतवादो की आलोचना करना सम्भव नही थी। अत उन्होने शकर तथा उनके अनुवर्ती आचार्यो से अधिक उदारता का परिचय दिया। वे द्वैत

---

* पत्रावली भाग २ पृ० ८७

विशिष्टाद्वैत आदि को भी अद्वैत की चरम अनुभूति के ही प्रारम्भिक सोपान मानते हैं तथा उनका खण्डन करना आवश्यक नही मानते । एक स्थान पर उन्होने कहा— 'सवसदेह विनाशक वेदान्त के विभिन्न मतवाद परस्पर विरोधी नही है । बल्कि एक दूसरे के समथक हैं । अत एक की सत्यता प्रमाणित करने के लिये ऊपर से विरुद्ध प्रतीत होने वाले दूसरे को मिथ्या प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नही है ।'* जब उनसे यह पूछा जाता था कि वेदान्त की विभिन्न विचारधाराओ को सत्य मानने की बात तो किसी अन्य पुरातन आचाय ने नही कही इस पर वे इसे अपना ही दायित्व मान लेते थे ।†

सम्प्रदायगत सकीणताओ से वेदान्त को मुक्त कर उसे सावजनीन धम के रूप मे प्रतिष्ठित करना विवेकानन्द का सुखद स्वप्न था । उनकी यह भविष्य-वाणी थी कि अद्वैत ही इसे चाहे वेदान्त कहे या और कुछ धार्मिक विचारो का अन्तिम निणय है और यही एकमात्र भूमि है जहा से हम सभी धर्मों और सम्प्रदायो को प्रम की दृष्टि से देख सकते है । हमारा विश्वास है कि यही भविष्य की सुशिक्षित मानव जाति का धम होगा । ‡ वे वेदान्त को ही एकमात्र सावजनिक धम मानते थे । अपने एक व्याख्यान मे उन्होने कहा— मै वेदान्त सिफ वेदान्त को ही सावजनीन मानता हू और वेदान्त के सिवा

---

* विवकानन्द चरित प० १५६

† स्वामीजी, वेदान्त के अद्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद आदि सभी प्रकार के मतवाद सत्य है तथा ये चरम उपलब्धि के पथ मे भिन्न भिन्न सीढिया हैं, यह बात तो पूर्वाचार्यों मे से किसी ने नहीं कही । आचायदेव ने मृदु हास्य के साथ उत्तर दिया यह काय मेरे ही लिये नियत था इसालिये मैंने जन्म ग्रहण किया है ।

उपयुक्त प० २८०

‡ पत्रावली भाग १ प० १९३

कोई अन्य धर्म सार्वजनीन नहीं कहला सकता। † परन्तु सार्वजनीनता का दावा करने वाला वेदान्त धर्म उनके अपने देश में ही अल्प मत में है यह भी वे जानते थे। ‡ इससे पूर्व अपने एक पत्र में वे यह लिख चुके थे भारत में द्वैतवाद क्रमशः हीनवीर्य हो रहा है। केवल अद्वैतवाद ही सब क्षेत्रों में प्रभावशाली है।" तथा मनुष्यजाति का अद्वैत ही भविष्य धर्म होगा। +

हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि शांकर वेदान्त ने दर्शन शास्त्र को अत्यधिक प्रभावित किया है तथा भारतीय दर्शन तो प्रायः वेदान्त का ही पर्याय मान लिया गया है परन्तु उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शंकर प्रतिपादित वेदान्त सिद्धान्त न तो भारत के अति प्राचीन दार्शनिक चिन्तन से पूर्ण समानता रखता है और न वह युक्ति एवं तर्क का ही प्रहार करने में पूर्ण समर्थ है। दयानन्द का अद्वैतालोचन हमारी उपपत्तियों को पूर्णतया सिद्ध करता है।

□□

---

† *भारत में विवेकानन्द पृ० १०७ एकमात्र वेदान्त ही सार्वभौमिक धर्म है। पृ० ११०*

‡ *भारत में अधिकांश लोग द्वैतवादी हैं। अद्वैतवादियों की संख्या बहुत अल्प है।* —*स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप पृ० १२५*

+ *पत्रावली भाग २ पृ ९७ ९८*

अध्याय ३

ईश्वर विषयक मान्यताएँ

भारत का धम चिन्तन आस्तिकता के अत्युच्च भाव पर आधारित है। सर्वाधिक प्राचीन ग्रथ वेद में ससार की रचयिता, पालक, एव सहर्ता शक्ति की जो कल्पना की गई है उसे ही परवर्ती उपनिषद दशन तथा अन्य ग्रन्थो मे पल्लवित किया गया। इस पारमार्थिक अलौकिक, चिन्मय सत्ता को ब्रह्म ईश्वर आदि अनेक नामो से अभिहित किया गया। वेदो मे सर्वोच्च सत्ता के रूप में एक ईश्वर की ही कल्पना की गई थी और उसे ही इन्द्र मित्र वरुण अग्नि यम मातरिश्वा आदि विभिन्न नामो से अभिहित किया गया था परन्तु कालान्तर मे वेद प्रतिपादित एकेश्वरवाद के उच्च विचार को ओझल कर उसके स्थान पर बहु देववाद को प्रतिष्ठित किया गया। अब ईश्वरवाद का निमल-स्वरूप पुराण वर्णित विविध देवताओ तथा उनके परिकरो की कल्पना मूलक धारणाओ से आच्छन्न हो गया। फलत उपासना के क्षेत्र मे सकीणता साम्प्रदायिकता तथा कपोल कल्पित धारणाओ का बोलबाला रहा। भारत का मध्यकालीन धम चिन्तन इसी बहुदेव वादी पौराणिकता से प्रभावित है।

मूर्तिपूजा अवतार कल्पना आदि बहुदेवतावाद के ही सुनिश्चित परिणाम हैं। विशुद्ध एकेश्वरवाद की स्थूल एव जड बहुदेववाद मे परिणति का ऐतिहासिक स्वरूप विश्लेषिन करना यहाँ अभीष्ट नही है किन्तु यह अवश्य है कि तथाकथित हिन्दू धम और समाज की बहुविध दुदशा का एक कारण यह

भी था कि उसके धार्मिक एव आध्यात्मिक भाव उसकी पूजा एव उपासना-प्रणाली अत्यन्त दोषपूण, सकीण तथा साम्प्रदायिक-भावापन्न हो चुकी थी। नवजागरण के पुरस्कर्ता महापुरुषो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा पुनीत दायित्व हो जाता है, जब हम देखते हैं कि उन्होने मध्यकालीन साम्प्रदायिक धारणाओ का निरसन कर ईश्वरवाद को उसके मौलिक रूप मे स्थापित किया। राम मोहनराय ने सवप्रथम वेदान्त और उपनिषद् प्रतिपाद्य 'एकमेवाद्वितीयम् ईश्वर को प्रतिष्ठित किया और पुराण प्रतिपादित बहुदेववाद को हिन्दू धम की मौलिक विचारधारा के प्रतिकूल माना। स्वामी दयानन्द का एतद् विषयक काय भी सवथा श्लाघनीय है। उन्होने उपनिषदो से भी आगे बढ कर वेद प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप की समीक्षा की। दयानन्द ने अपने ग्रन्थो मे सवत्र सच्चिदानन्दादि लक्षणो से युक्त शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सवशक्तिमान् सव व्यापक दयालु अजन्मा निर्विकार निराकार ईश्वर का स्वरूप चित्रित किया है। विशेषत सत्याथप्रकाश के सप्तम समुल्लास मे बहुदेववाद का खण्डन ईश्वर के अवतार लेने की धारणा की आलोचना ईश्वर के दयालु और न्यायकारी होने मे अविरोध ईश्वर की सवशक्तिमत्ता का वास्तविक अथ सगुण और निगुण का तात्पर्याथ आदि का शास्त्रीय एव तकपूण विवेचन किया है।

स्वामी विवेकानन्द भी उसी युग मे उत्पन्न हुये थे जिसमे ईश्वर सम्बन्धी विचारो को बौद्धिक एव तक सगत स्वरूप प्रदान किया जा रहा था। ब्राह्म-समाज तथा आयसमाज ने बुद्धिवाद को महत्त्व देकर आस्तिकता के विचारो को जिस प्रकार व्यवस्थित एव युक्ति सगत शली मे उपस्थित किया उससे वेदान्त के प्रति अगाध निष्ठावान् विवेकानन्द का भी प्रभावित होना स्वाभाविक था। अत हम देखते है कि उनके ईश्वर विषयक विचार परिष्कृत तथा मध्यकालीन साम्प्रदायिक धारणाओ से ऊपर उठे हुये हैं। यह स्पष्ट ही आयसमाज तथा स्वामी दयानन्द के विचारो का प्रभाव माना जाना चाहिये। तथापि यत्र तत्र अद्वैत वेदान्त की ईश्वर विषयक रूढ धारणाओ को स्वीकार करने के कारण उनके एतद् विषयक विचारो मे असगति एव अन्तर्विरोध भी

आ गये हैं। कतिपय विशिष्ट उदाहरणो द्वारा हम दोनो आचार्यों के ईश्वर विषयक मन्तव्यो का तुलनात्मक विचार प्रस्तुत करते हैं।

सगुण ईश्वर और सगुणोपासना को लेकर वष्णव सम्प्रदायो ने यह धारणा प्रचलित कर दी थी कि सगुण साकार का पर्याय है अत रूप, आकार प्रकार विशिष्ट ईश्वर ही सगुण है और ऐसे मानवाकृतिधारी राम कृष्ण आदि ईश्वरावतारो की पूजा ही सगुण उपासना है। स्वामी दयानन्द ने इसका खण्डन किया। उन्होने लोक प्रचलित इस धारणा को स्वीकृत नही किया कि निराकार को निगुण और साकार को सगुण कहते हैं। इसके विपरीत वे लिखते है— परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणो से सहित होने से सगुण' और रूपादि जड के तथा द्वेषादि जीव के गुणो से पृथक होने से निगुण कहाता है * विवेकानन्द ने भी सगुण का यही अथ किया। अपने एक भाषण मे उन्होने कहा इस सगुण के अथ से देहधारी सिंहासन पर वठ हुये ससार का शासन करने वाले किसी पुरुष विशेष से मतलब नही। सगुण अथ से गुण युक्त समझना चाहिये। इस सगुण ईश्वर का वणन शास्त्रो मे अनेक स्थलो मे देखने को मिलता है और सभी सम्प्रदाय इस ससार का शासक स्रष्टा सरक्षक और सहर्ता सगुण ईश्वर मानते हैं। †

ईश्वर के अवतार लेने या न लेने के सम्बन्ध मे भारतीय चिन्तन मे दो प्रकार के विचार प्रचलित हैं। निगुणवादियो का कथन है कि सवथा निर्लेप और निरञ्जन होने कारण ईश्वर की मनुष्य के रूप म कल्पना करना ही अनुचित है। मध्यकालीन निगुण सन्तमत मे ईश्वर के अवतार लेने की धारणा का प्रबल प्रतिषेध किया गया है। नवजागरण के धर्माचार्यों ने भी सामान्यत अवतार सिद्धान्त को अस्वीकार किया है। ब्राह्मसमाज मे साकारवाद का

---

* *सत्याथप्रकाश-सप्तम समुल्लास*

† *भारत मे विवकानन्द पृ० ३२०*

खण्डन तथा निराकारवाद की प्रतिष्ठा की गई। स्वामी दयानन्द तो अवतार-वाद क प्रबल विरोधी ही थे। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास मे यजुर्वेद के अज एकपात् तथा सपर्यगाच्छुक्रमकायम् आदि वचनो को उद्धृत कर उन्होने ईश्वर के जन्म धारण करने का निषध किया। स्वामीजी ने गीता के उस प्रसिद्ध श्लोक की लोक प्रचलित इस धारणा को स्वीकार नही किया कि जब जब धर्म का लोप होता है तब तब ईश्वर शरीर धारण करता है।* इसके विपरीत उक्त श्लोक का वास्तविक अभिप्राय उन्होने यह बताया कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा चाहते थे कि मैं युग युग मे जन्म लेके श्रेष्ठो की रक्षा और दुष्टो का नाश करू। †

जहाँ तक विवेकानन्द के अवतार विषयक विचारो का सम्बन्ध है हमे उनमे अनेक असगतियाँ और अन्तर्विरोध दीख पडते है। कही तो वे सम्प्रदाया-भिनिवेशी वैष्णवो के स्वर मे स्वर मिलाकर अवतारवाद की पुष्टि करते है कही अपने वेदान्तवाद के आधार पर अवतारवाद की एक नूतन व्याख्या करते हैं तो अन्यत्र कही अवतार की धारणा को पूर्णतया असत्य कह देते हे। इन विविध मतो मे उनका अवतार विषयक मुख्य तात्पर्य क्या था यह समझना पाठको के लिये उलझन मात्र रह जाता है। हम यहाँ उनके अवतार विषयक इन सभी परस्पर विरोधी वचनो को अपनी टीका सहित प्रस्तुत करेंगे। अवतार विषयक प्रचलित धारणा को यथावत् स्वीकार करते हुये वे लिखते हैं— वेद अर्थात् प्रकृत धर्म की और ब्राह्मणत्व अर्थात् धर्म शिक्षकत्व की रक्षा के लिये भगवान् बारम्बार शरीर धारण करते है यह स्मृत्यादि प्रसिद्ध है। ‡ स्पष्ट है कि यह लिखते समय उनके समक्ष गीता का वह बहुउद्धृत श्लोक ही था

---

* *यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥ गीता ४। ७

† *सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास*

‡ *भगवान् रामकृष्ण धर्म तथा सघ पृ० ५*

जिसमे साधुओ की रक्षा दुष्कृतो के विनाश तथा धम की सस्थापना के लिये गीताकार युग युग मे ज म लेने की बात कहत है ।×

अवतारवाद के समथक लोग शायद यह कहेगे कि ईश्वर की कल्पना भी मनुष्य अपने ही रूप मे करता है और इसीलिये न केवल हि दूधम मे अपितु अ य मत सम्प्रदायो मे भी अवतार का सिद्धा त किसी न किसी रूप मे ग्रहीत होता है । विवेकान द का मत भी यही है— 'ईश्वर की मनुष्य के रूप मे उपासना करना आवश्यक है * पर तु इसके लिये जो तक उ होने दिया वह विचित्र तथा न समझ मे आने वाला है । वे लिखते हैं— इश्वर की पूजा नहीं हो सकती क्योकि ईश्वर तो सृष्टि मे सवव्यापी है । उसके मानव स्वरूप की ही हम उपासना कर सकते है । ईसा मसीह के नाम पर ईसाई लोगो का प्राथना करना बहुत अच्छा है । अधिक अच्छा हो यदि वे ईश्वर से प्राथना करना छोड कवल ईसा मसीह से ही प्राथना करे । † पाठक मुझसे सहमत होगे कि विवेकान द के उक्त कथन मे भावुकतापूण प्रलाप अधिक है यह विवेक का स्वर नही है । क्या शास्त्रो मे सवत्र ईश्वर प्रणिधान और भगवत् पूजा का विधान नही हे ? पुन यह कहने का क्या अथ है कि ईश्वर की पूजा नही हो सकती । इश्वर के नाम पर जड वस्तुओ की पूजा करने वाले भी यही कहते है कि वे इन प्रतीका के माध्यम से ईश्वर की ही पूजा कर रहे हैं । विवेकान द का ईसाई-मतावलम्बियो को यह सुझाव देना तो और भी हास्यास्पद है कि उ हे ईश्वर से प्राथना करना छोड कर ईसा से ही प्राथना करनी चाहिये । क्या एक

× परित्राणाय साधना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धम सस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ।। गीता ४ । ८

* 'तुम चाहे कितनी ही लम्बी चौडी बात क्यों न करो पर तुम भगवान् को मनुष्य के सिवा और कुछ सोच ही नही सकते । भक्तियोग पृ० ४३

† प्रम योग पृ० ५१

ससारी व्यक्ति से अलौकिक सुख और मुक्ति के आनन्द की प्राप्ति सम्भव है पुन क्या ऐसा परामश देना भी उचित होगा कि हम लोग ईश्वर से प्राथना करना छोड कर साधारण शक्ति वाले मनुष्य के आगे याचना करें। तथाकथित सगुण भक्तो ने भी सवत्र अलौकिक सत्ता एव शक्ति सम्पन्न भगवान् के आगे ही हाथ पसारा है न कि किसी मनुष्य के।

पता नही क्यो विवेकानन्द के मस्तिष्क मे यह विचार बद्धमूल हो गया था कि मानवीय भावो को ईश्वर पर आरोपित किये बिना उसकी पूजा या उपासना सम्भव नही है। अत उन्होने इसी भाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया— व्यक्ति विशेष की अचना हमे करनी ही होगी। इसी मे हमारा हित है हम ईश्वर का केवल मानवीय भाव मे ही दशन कर सकते हैं। हममे ऐसा कौन है जो ईश्वर की मानवातिरिक्त अन्य भाव मे कल्पना कर सकता है? * परन्तु यह स्पष्ट है कि मनुष्य पूजा और ईश्वर पूजा दो भिन्न वस्तुयें हैं। ससार के प्राचीनतम धार्मिक साहित्य वेद मे सवत्र ईश्वर पूजा का ही विधान है और उस दिव्य परमेश्वरीय सत्ता को निश्चय ही मानव से पृथक माना गया है।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु।
यस्येमे प्रदिशो यस्य बाहू कस्म देवाय हविषा विधेम॥"†

तथा सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ‡ आदि मन्त्रो मे जिस ईश्वर की कल्पना की गई है वह मनुष्य से सवथा भिन्न उससे अधिक शक्ति सम्पन्न तथा प्रत्येक प्रकार से ज्येष्ठ और वरिष्ठ है। तब यह कहना क्या महत्त्व रखता है कि मानव के अतिरिक्त अन्य किसी रूप मे ईश्वर की कल्पना

---

* *महापुरुषों की जीवन गाथाय पृ० ७७*

† ऋग्वेद १० । १२१

‡ यजुर्वेद ३० । १

नही हो सकती ? यहूदी ईसाइ तथा इस्लाम आदि जिन सामी मजहबो ने भी इश्वर की कल्पना एक सव प्रभुता सम्पन्न स्वेच्छाचारी शासक के रूप मे की उनमे भी मनुष्य पूजा (मदु म परस्ती) को घृणा की दृष्टि से देखा गया है और खुदा के बराबर किसी अन्य को महत्त्व देने की निंदा की गई है।

बात यह है कि विवेकानन्द अवतारवाद के विषय मे एक विचित्र सदेहास्पद स्थिति मे अपने आपको अनुभव करते हैं। उनका प्रबल बुद्धिवादी मन उन्हे इस बात के लिये विवश करता है कि वे अवारवाद जसे दुबल सिद्धान्त को अस्वीकार कर दे परन्तु मध्यकालीन पौराणिकता के साथ किसी न किसी रूप मे अपने को जोडे रखने की इच्छा उन्हे अवतारवाद को येन केन प्रकारेण स्वीकार करने के लिये भी कहती है। अत वे विचित्र द्विविधाग्रस्त मन -स्थिति मे अपने को पाते है। यदि ईश्वर मानव बन जाये तो क्या वह मनुष्य-जन्य सभी दुवलताओ का शिकार हो जायगा ? यह एक ऐसा यक्ष प्रश्न है जो सभी अवतारवादियो के समक्ष रहा है। अनेक शब्दाडम्बरपूण युक्तियो और तर्कों की सहायता से इस आक्षप का समाधान भी किया जाता है। यह कहा जाता है कि मानव रूप मे विभिन्न चरित करना उस परमपुरुष की एक लीला मात्र है और इन मनुष्य जन्म सुलभ निबलताओ के प्रदशन से भी उससे वास्तविक रूप की कोई विकृति नही होती। विवेकानन्द के पास भी यह कहने के अतिरिक्त और कोई समाधान नही है कि मानव के आकार मे अपने को अभिव्यक्त करने पर भी उनके स्वरूप मे कुछ भी क्षति नही पहुचती। वह ज्यो का त्यो बना रहता है ? * परन्तु जिस प्रकार अन्य अवतारवादी आचार्यो की यह युक्ति हमारे गले नही उतरती उसी प्रकार विवेकानन्द का उपयु क्त कथन भी इस जटिल प्रश्न का कोई उत्तर नही देता कि मनुष्य के रूप मे अवतरित होकर परमात्मा अविकारी कसे बना रहेगा ?

---

* *स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० ११४*

ऐसा लगता है कि अवतार के विचार को विवेकानन्द ने आधे मन स ही स्वीकार किया था। तभी तो वे वेदो मे अवतारवाद का कोई उल्लेख नही पात। शतपथ ब्राह्मण मे उल्लिखित मनु और मत्स्य के कथानक के रहस्य को न समझ कर वे इतना तो कह ही देते हे कि वेदो मे हमे केवल मत्स्य अवतार की ही कथा देखने मे आती हे। * परन्तु अन्य दुराग्रही साम्प्रदायिक विद्वानो की भाति उन्हाने वेदो के अर्थों को विकृत कर उनसे राम कृष्ण आदि पुराण-वर्णित ईश्वरावतारो की कल्पनामूलक कथाय सिद्ध करने का प्रयास नही किया। इसके विपरीत उनके साहित्य मे कुछ उक्तियाँ तो ऐसी मिलती हैं जिनम अवतारवाद को सम्पूणतया नकारा ही गया है। उदाहरणाथ अपने एक पत्र मे उन्हाने लिखा— अवतार शन्दो का मतलब उन पुरुषा से है जिन्होने उस ब्रह्मत्व का लाभ किया हे यानी जो जीवन्मुक्त हैं अवतार विशेषत्व मैं नही देख पाता हू। † स्पष्ट है कि यहाँ उन्हाने विशिष्ट अध्यात्म-शक्ति सम्पन्न जीवन्मुक्त ईश्वर भाव को प्राप्त पुरुष को ही अवतार माना न कि सचमुच ईश्वर के धराधाम पर अवतरण को जो सवथा असम्भव ही है। वार्तालाप के एक अन्य प्रसग मे भी उन्होने अवतारवाद का खण्डन करते हुये कहा— भगवान् का अवतार कही भी तथा किसी भी समय नही होता।' परन्तु दबे हुये स्वर मे यह भी कह गये कि गुरु को लोग अवतार कह सकते हैं तथा जो चाहे मान कर धारणा करने की चेष्टा कर सकते है। ‡

अवतारवाद की कल्पना ईश्वर की सवशक्तिमत्ता के भाव से जुडी हुई है। जो लोग सवशक्तिमान् का अथ कतु अकतु-अन्यथाकतु समथ मानते है उनका यह कथन है कि जो सवशक्ति समन्वित है वह क्या मानव रूप धारण नही कर सकता? विवेकानन्द की धारणा भी यही थी। वे कहते है—

भारत मे विवकानन्द पृ० ४६७

† पत्रावली भाग १ पृ० १६०

‡ विवकानन्दजी के सग मे पृ० ३३३

भगवान् किसी नियम के वश मे नही है। * अपनी इसी उक्ति का उपबृंहण करते हुये वे पुन कहते हैं जो इस जगत् को अपनी इच्छानुसार तोडता और बनाता है क्या वह अपनी कृपा से किसी महापापी को मुक्ति नही द सकता ? यह भी उन्ही का लीला हे। † तथा जब साधारण साधको की इच्छा से अघटन घटित हो जाता है तब सिद्धसकल्प ब्रह्म का कहना ही क्या ? ‡

निश्चय ही ईश्वर की सवशक्तिमत्ता का यह अथ नही है। इश्वर अपने ही नियमो से बधा हुआ हे। यदि वह इन नियमा की अवहेलना करने लगे तो विश्व प्रपञ्च की सत्ता और स्थिति ही डावाडाल हो जायगी। ईश्वरीय नियमो को वेदो मे ऋत कहा है और इन्ही दिककालातीत नियमो से परमात्मा सृष्टि की रचना पालन तथा सहार करता है। स्वामी दयानन्द ने सव-शक्तिमान् शब्द की युक्ति सिद्ध व्याख्या करते हुये लिखा— सवशक्तिमान् शब्द का यही अथ हे कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन, प्रलय आदि और सब जावो के पुण्यपाप की यथा योग्य व्यवस्था करने मे किञ्चित भी किसी की सहायता नही लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामथ्य से ही सब अपना काम पूण कर लेता हैं। ×

विवेकानन्द का ईश्वर विषयक समग्र चिन्तन वेदान्तवाद की विचारधारा से आच्छन्न है। और जसा कि हम जानते हैं शाङ्कर वेदान्त ने ईश्वर को निगुण ब्रह्म से अवर माना है इसी प्रकार के विचार विवेकानन्द ने भी व्यक्त किये— जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करने वाले हैं, जो मायाधिष्ठित है जिन्हें माया या प्रकृति का कर्ता कहा जाता है उन्ही सगुण ईश्वर का ज्ञान

---

* *विवकानन्दजी के सग मे पृ० ८५*

† वही पृ० ८६

‡ वही पृ० ९५

× *सत्याथप्रकाश-सप्तम समुल्लास*

वदा त का अन्त नही है । * सृष्टि के सजक और पालक ईश्वर को सगुण कहने म तो कोई विप्रतिपत्ति नही है किन्तु वह प्रकृति का कर्ता कदापि नही है । उपनिषद् मे माया को प्रकृति का जहाँ पर्याय माना गया वहा उसके अधिष्ठाता ईश्वर को मायी कहा हे ।† कर्ता और अधिष्ठाता मे अन्तर है । किसी अपूव कृति की रचना करने वाला कता कहलाता है जब कि पूव से विद्यमान वस्तु का नियमन करने वाला अधिष्ठाता है । स्वामी दयानन्द के मतानुसार परमात्मा प्रकृति का अधिष्ठाता तो है परन्तु कर्ता नही । प्रकृति भी ईश्वर और जीव की ही भाति अनादि और असृष्ट है ।

वेदान्तवादियो के लिये तो सगुण या निगुण किसी भी विशेषण वाले इश्वर का ज्ञान चरम लक्ष्य नही है क्योकि उनके विचार मे तो जीव स्वय ही ब्रह्म है जो अज्ञान या उपाधिजन्य अविद्या के कारण अपने स्वरूप को विस्मृत कर सीमित तथा सकुचित हो गया है । अत सगुण ज्ञान की ही भाति व निगुण इश्वर के ज्ञान को भी अपना लक्ष्य क्यो स्वीकारे ? स्वामी दयानन्द की स्थिति उनसे भिन्न है । वे अन्य आस्तिक ईश्वरवादी विचारको की ही भाति ईश्वर की स्तुति प्राथना उपासना तथा उसके ज्ञान से मनुष्य का मोक्ष प्राप्ति का चरम लक्ष्य सिद्ध होना मानते हैं ।

यहाँ हमने दोनो आचार्यों के ईश्वर विषयक दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया है । निष्कष रूप मे कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द ने वेद प्रतिपादित ईश्वरवादी विचारधारा को मौलिक रूप मे प्रस्तुत करने के साथ साथ उसकी तार्किक सगति तथा युक्तिसिद्धता बताई है । जीवेश्वर सम्बन्ध की विवेचना करते हुये स्वामी दयानन्द ने उन सम्प्रदायो की तीव्र आलोचना की है जो माधुय भाव का आश्रय लेकर स्त्री पुरुष के से दाम्पत्य सम्बन्ध की कल्पना करते हैं । वस्तुत कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे जिस कान्तासक्ति को

---

* *ज्ञानयोग पृ० ३६*

† *माया तु प्रकृति विद्यात् मायिन तु महेश्वर । श्वताश्वतरोपनिषद् ४।१०*
तुलनीय—'माया का सिद्धान्त ऋक सहिता के समान प्राचीन है । श्वताश्वतर उपनिषद् मे माया शब्द का प्रयोग होता है ।'

—पत्रावली भाग २-पृ २३६

महत्त्व दिया गया और भक्तो ने अपने आपको गोपी या राधा भाव मे दीक्षित कर कृष्ण की कल्पना अपने पति या प्रियतम के रूप मे की तथा इसका जो दुष्परिणाम हुआ वह एक पृथक विवेचन का विषय है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास तथा वल्लभ-सम्प्रदाय के खण्डन मे लिखे गये वेदविरुद्धमत खण्डन नामक ग्रन्थ मे इस तथाकथित दाम्पत्य भाव की कटु आलोचना की है। स्वामी विवेकानन्द भी इस तथ्य को अनुभव कर चुके थे कि मधुर भाव की यह भक्ति मनुष्य के लिये कदापि श्रेयस्कर नही हो सकती। एक प्रसग मे उन्होंने कहा—'मुझे तो ऐसा लगता है कि जो मधुर भाव के साधक बताकर अपना परिचय देते हैं उनमे दो एक को छोड,कर सभी घोर तमोभावापन्न हैं। अस्वाभाविक मानसिक दुर्बलता से पूर्ण हैं। *

* विवेकानन्दजी के सग मे—पृ० १५८

मूर्त्तिपूजा विषयक विचार

अब हम एक अन्य महत्त्वपूण कितु विवादास्पद विषय पर विचार प्रारम्भ करते हैं—यह है मूर्त्तिपूजा की उपयोगिता। यह तो एक विश्वविदित नथ्य है कि स्वामी दयानन्द न आजीवन मूर्त्तिपूजा का विरोध किया। ईश्वर प्राप्ति के लिये मूर्त्तिपूजा से अधिक निस्सार साधन उनकी दृष्टि मे और कोई नही था। इसे एक सयोग ही समझना चाहिये कि एक कट्टर पौराणिक ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होकर भी स्वामी दयानन्द मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी बने। परन्तु इस प्रकार की घटनायें भी घटती हैं और ससार की विचारधारा को एक नई गति देने मे उनका विशेष हाथ होता है। कौन कह सकता है कि यदि किशोर अवस्था म बालक मूलशकर ने शिव प्रतिमा पर से चूहे को नैवेद्य उठाते नहीं देखा होता तो उसका भावी जीवन किधर पलटा खाता। इसी प्रकार यह भी कमे कहा जा सकता है कि नरेन्द्रनाथ जसा सदेहवादी मनोवृत्ति का युवक यदि रामकृष्ण परमहस के सम्पक मे नही आता तो उसकी जीवन नौका किस घाट लगती। परन्तु घटनायें घटती हैं और उनके द्वारा महापुरुषो के जीवन मे महान् परिवतन आते है। अस्तु—

स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थो और व्याख्यानो मे मूर्त्तिपूजा का तीव्र विरोध किया और ईश्वर प्राप्ति मे उसे केवल अनावश्यक ही नही अपितु बाधक ही समझा। मूर्त्तिपूजा विषयक उनके विचार यद्यपि उनके सभी ग्रन्थो मे यत्र

तत्र बिखरे पडे हैं परन्तु सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास मे तो उन्होने भारत मे मूर्त्तिपूजा का ऐतिहासिक दृष्टि से प्रारम्भ और विकास दिखलाते हुये उससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न हानिया का विस्तारपूवक दिग्दशन कराया है।

यह तो एक सवस्वीकृत तथ्य है कि मूर्त्तिपूजा ईश्वर प्राप्ति का कोई आवश्यक साधन नही है। जो व्यक्ति मूर्त्तिपूजा के विरोधी नही हैं वे भी यह मानत हैं कि मूर्त्ति क विना भी ईश्वरोपासना की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर लिखा है— वेदो का वाक्य है कि वाह्यपूजा या मूर्त्तिपूजा सबसे नीची अवस्था है।'* वेद के नाम से उन्होने यह वात कही परन्तु प्रमाण दिया महानिर्वाण तन्त्र का जो इस प्रकार है—

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यम ।
स्तुतिजपोऽधमो भावो बहि पूजाऽधमाधमा । †

और अन्त मे निष्कष रूप मे कहा— मूर्त्तिपूजा हिन्दूधम का आवश्यक अङ्ग नही है।' ‡

स्वामी दयानन्द मूर्त्तिपूजा के नितान्त विरुद्ध थे। वे उसे तनिक भी महत्त्व देने के लिये तयार नही थे। जो लोग मूर्त्तिपूजा को ईश्वर प्राप्ति के माग की एक सीढी मानते हैं उनके इस विचार की समालोचना करते हुए उन्होने तो यहाँ तक लिख दिया है— मूर्त्तिपूजा सीढी नही किन्तु एक बडी खाई है जिसमे गिर कर मनुष्य चकनाचूर हो जाता है। पुन उस खाई से निकल नही सकता किन्तु उसी मे मर जाता है। ×

---

* *हिन्दू धम पृ० २३*

† *महानिर्वाण तन्त्र चतुथ उल्लास १२*

‡ *हिन्दूधम पृ २४*

× *सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास पृ० ४१६*

यह भी एक सर्वसम्मत बात है कि आर्यों के पुरातन वैदिक धर्म मे मूर्त्तिपूजा के लिये कोई स्थान नहीं था । चाहे आज के तथाकथित सनातनधर्मी विद्वान् दुराग्रहवश वेद के संहिता भाग, उपनिषद् तथा दर्शन आदि प्राचीन ग्रन्थों से मूर्त्तिपूजा का अस्तित्व प्रमाणित करने की चेष्टा करें परन्तु इन ग्रन्थों के निष्पक्ष अध्येता विद्वानों की दृष्टि मे इनका कोई मूल्य नहीं है। और यही कारण है कि स्वामी दयानन्द की ही भांति विवेकानन्द भी इस तथ्य से सहमत हो सके हैं कि मूर्त्तिपूजा का प्रारम्भ जैन और बौद्ध काल से हुआ। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे मूर्त्तिपूजा के प्रकरण को निम्न प्रश्नोत्तर से प्रारम्भ किया है—

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा कहाँ से चली ?
उत्तर—जैनियों से।
प्रश्न—जैनियों ने कहाँ से चलाई ?
उत्तर—अपनी मूर्खता से।*

अब मूर्त्तिपूजा के प्रारम्भ के विषय मे स्वामी विवेकानन्द का मत सुनिये। एक वार्तालाप के प्रसंग मे उन्होंने कहा, "पहले बौद्ध चैत्य फिर बौद्ध स्तूप, उससे बुद्धदेव का मन्दिर निर्मित हुआ हिन्दू मन्दिरों की उत्पत्ति इन बौद्ध मन्दिरों से हुई है।"† वैदिक काल मे प्रतिमा पूजन के अनस्तित्व की चर्चा करते हुये उन्होंने अन्यत्र कहा—"वैदिक युग मे प्रतिमा का अस्तित्व नहीं था, उस समय लोगों की यह धारणा थी कि ईश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु बुद्ध के प्रचार के कारण हम जगत्स्रष्टा एवं अपने सखा स्वरूप ईश्वर को खो बैठे और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिमापूजन की उत्पत्ति हुई। लोगों ने बुद्ध की मूर्त्ति गढ़ कर पूजा करना प्रारम्भ किया।‡ प्रकारान्तर से यही बात

---

* स० प्र० ११वां समुल्लास पृ० ४०८
† स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप पृ० ११०
‡ देववाणी पृ० ७५

उन्होंने अपने एक भाषण मे कहा—"बौद्धधर्म ने ही भारत मे ब्राह्मण्य धर्म और मूर्त्तिपूजा की सृष्टि की थी। †

उपर्युक्त प्रमाणों से यह भलीभाति स्पष्ट हो जाता है कि मूर्त्तिपूजा का अस्तित्व पुरातन वैदिक धर्म मे नही था। जैन बौद्ध ससर्ग से ही मूर्तिपूजा ने ब्राह्मण धर्म मे प्रवेश पाया और एक दिन उसका इतना विस्तार हो गया कि कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मूर्त्तिपूजा से रहित हिन्दू धर्म का भी कोई अस्तित्व रह सकता है। स्वामी विवेकानन्द भी रामकृष्ण के सम्पर्क मे आने से पूर्व साधारण ब्राह्मसमाज के सदस्य थे और अन्यान्य ब्राह्म मतानुयायियो की भाँति वे भी मूर्त्तिपूजा को गर्हित दृष्टि से देखते थे। परन्तु उनके गुरु रामकृष्ण स्वय एक मन्दिर के पुजारी थे और उनकी समग्र साधनायें भी पौराणिक विश्वासो को साथ लेकर चलती थी। ऐसी स्थिति मे विवेकानन्द को भी अपना मत बदलना पडा। उनके जीवन चरित लेखको ने तो स्वामी विवेकानन्द मे मूर्त्तिपूजा के प्रति विश्वास जागृत होने के मूल मे अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया है। उनका अपने गुरु से इसको लेकर यदा-कदा वाद-विवाद भी होता रहता था परन्तु अन्त मे उनके विचारो मे परिवर्तन हुआ अब उनकी मन स्थिति कुछ बदल सी गई। मूर्त्तिपूजा के समर्थन मे कोई दलील अभी तक वे नही दे पाये परन्तु मूर्त्तिपूजा विरोधी ब्राह्म और आर्यसुधारको से उन्होने कहा "आजकल यह एक आम बात हो गई है और सभी लोग बिना आपत्ति किये ही इसे मान लेते हैं कि मूर्त्तिपूजा दोषयुक्त है। मैं भी एक समय ऐसा ही सोचा करता था और इसकी सजा के रूप मे मुझे एक ऐसे व्यक्ति के पैरो के पास बैठकर शिक्षालाभ करना पडा, जिन्होने मूर्त्तिपूजा से ही सब कुछ पाया था।"*

---

† भारत मे विवेकानन्द पृ० २२२

* विवेकानन्द चरित पृ० ६२

अब हम विवेकानन्द द्वारा मूर्त्तिपूजा के समर्थन मे दी गई कुछ युक्तियो पर विचार करना चाहते हैं। उनके जीवन मे एक घटना आती है। उस समय स्वामीजी अलवर नरेश के यहाँ ठहरे हुये थे। बातचीत के प्रसग मे मूर्त्तिपूजा की चर्चा चल पडी। स्वामीजी ने अलवर नरेश के चित्र पर थूक दिया और कहा कि यद्यपि अलवर नरेश चित्र मे नही हैं परन्तु उनके चित्र पर थूकना जसे उनके अपमान की सृष्टि करता है उसी प्रकार ईश्वर की मूर्त्ति की पूजा भी अपना औचित्य रखती है। उन्होने कहा है— प्रतिमायें भी श्री भगवान् की विशेष गुणवाचक मूर्त्तियाँ है। भक्त मूर्त्ति के द्वारा भगवान् की ही उपासना करते हैं धातु या पत्थर की पूजा नही'† विवेकानन्दजी की यह युक्ति तो निस्सार ही प्रतीत होती है कि प्रतिमा भगवान् की गुणवाचक मूर्त्तियाँ हैं। सच्चिदानन्द प्रज्ञानघन ब्रह्म के गुण जड मूर्त्ति मे किस प्रकार प्रस्फुटित हो सकते है? इसी प्रकार भक्त जो षोडशोपचार पूजन करता है वह प्रस्तरमयी देवमूर्त्ति को उपलक्षित करके ही करता है अन्यथा सवज्ञ सवव्यापक, निराकार परमात्मा का इस प्रकार प्राकृतिक पदार्थों से पूजन सम्भव नही।

वस्तुत बात यह है कि विवेकानन्दजी मूर्त्तिपूजा के औचित्य मे कोई प्रबल प्रमाण या युक्ति जुटा नही पाये थे। उनकी कुछ युक्तियो की हम आगे चलकर परीक्षा करेंगे और देखेंगे कि उनमे से अधिकाश हेत्वाभासो पर ही निभर हैं। उन्होने अपनी वयक्तिक आस्था का ही उल्लेख कर अपने को सतोष देने की चेष्टा की है। एक स्थान पर वे लिखते हैं— यदि इस मूर्त्तिपूजा मे नाना प्रकार के कुत्सितभाव भी प्रविष्ट हो गये हो फिर भी मैं उसकी निन्दा नहो करता। यदि मुझे उस मूर्त्तिपूजक ब्राह्मण की पदधूलि प्राप्त न होती तो मैं कहाँ होता? जो सस्कारक गण मूर्त्तिपूजा की निन्दा किया करते है उनसे मैं यही कहूगा— भाई यदि तुम निराकार की

---

† *विवेकानन्द चरित पृ० १४६*

उपासना के योग्य हो तो वही करो परन्तु दूसरो को गाली क्यो देते हो ? *
मूर्त्तिपूजा मे प्रविष्ट कुत्सित भावो का इस आधार पर विरोध न करना कोई
अर्थ नही रखता। फिर सुधारक वग के लोगो ने मूर्त्तिपूजका को गाली कब दी,
वे तो उसकी अनुपयुक्तता ही बताते रहे।

प्रतिमा पूजन के सम्बन्ध मे विवेकानन्दजी की एक युक्ति यह भी सुनिये।
अपन एक ग्रन्थ मे उन्हाने लिखा— यदि प्रतिमा किसी देवता या किसी
महापुरुष की सूचक हो तो ऐसी उपासना भक्तिप्रसूत नही है और वह हमे
मुक्ति नही दे सकती। पर यदि वह एक परमेश्वर की सूचक हो तो उस
उपासना से भक्ति और मुक्ति दोना प्राप्त हो सकती है।'† युक्ति देने वाले को
यह ध्यान नही रहा कि किसी देवता या महापुरुष की प्रतिमा तो बनाई भी जा
सकती है परन्तु परमेश्वर के अनन्त गुणो की सूचक कोई प्रतिमा कसे हो सकती
है और जब निराकार और सवव्यापक ईश्वर की कोई आकृति बन ही नही
सकती तो उसकी पूजा से भक्ति और मुक्ति कसे मिल सकती है ? अपने एक
भाषण मे तो विवेकानन्दजी ने मूर्त्तिपूजा के समथन मे जो दलील दी वह और
भी लचर और युक्तिशून्य है। उन्होने अपने श्रोताओ की भावनाओ को उभाडने
का प्रयत्न करते हुये कहा यदि मूर्त्तिपूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जसे व्यक्ति
उत्पन्न हो सकते हैं तब आप क्या चाहते है—सस्कारका का धम या
मूर्तिपूजा ?'‡ विचित्र युक्ति है। विवेकानन्दजी शायद यह विश्वास दिलाना
चाहते हैं कि मूर्त्तिपूजको मे श्री रामकृष्ण जसे महापुरुषो का उत्पन्न होना
अनिवाय ही है। थोडी देर के लिये यह मान भी लिया जाय तो क्या सुधारको
मे कोई ईश्वरभक्त उत्पन्न ही नही हुआ ? कबीर नानक मार्टिन लूथर
राममोहनराय दयानन्द सभी सुधारक वग के ही थे और कोई यह नही कह

---

* विवकानन्द चरित पृ० ४२६

† भक्तियोग पृ० ५५

‡ भारत मे विवकानन्द पृ० १५७

सकती कि आध्यात्मिक दृष्टि से ये महापुरुष किसी भी मूर्त्तिपूजक साधक से कम थे। हम यहाँ साधना के क्षेत्र मे सर्वोच्च सोपान पर पहुँचे इन महापुरुषों की तुलना नही करना चाहते परन्तु सुधारक वग के विरोध मे विवेकानन्दजी ने जो अद्भुत युक्ति दी है उसी के कारण यह लिखना पडा।

अपने प्रेमयोग नामक ग्रन्थ मे विवेकानन्दजी ने मूर्त्तिपूजा के पक्षसमथन मे जो युक्तियाँ दी हैं वे तो नितान्त हास्यास्पद सी प्रतीत होती है और सहज ही यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि ये युक्तियाँ किसी ऐसे व्यक्ति की लेखनी से निकल रही है जिसने हिन्दूधम को बुद्धिवाद के धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसकी विजय वजयन्ती देश देशान्तरो मे फहराई थी। प्रेमयोग मे एक स्थान पर वे लिखते हैं— कैसी विचित्र बात है कि यदि मूर्त्ति के सामने कोई घुटने टेकता है तब तो वह काय घृणित मूर्त्तिपूजा कहलाती है और जब वह अपने पति या पत्नी के परो पर गिरता है तो वह एक आदश काम समझा जाता है। † यही बात और विस्तार से उसी ग्रन्थ मे उन्होने इस प्रकार कही क्या किसी साधारण पुरुष या स्त्री के प्रति आसक्ति रखने की अपेक्षा क्राइस्ट या बुद्ध की मूर्त्ति के प्रति व्यक्तिगत आसक्ति रखना कही अधिक श्रेष्ठ नही है? पाश्चात्य लोग कहते है क्राइस्ट की मूर्त्ति के सामने घुटने टेकना बुरी बात है। पर वे लोग किसी स्त्री के सामने घुटने टेककर 'तुम्ही मेरी प्राण हो मेरे जीवन की ज्योति हो मेरी आँखो का प्रकाश हो मेरी आत्मा हो, आदि आदि कहने मे दोष नही मानते। यह तो मूर्त्तिपूजा से भी गई बीती बात है। उस स्त्री को मेरी आत्मा मेरे प्राण कहना क्या है? चार दिनो के बाद ये सब भाव काफूर हो जाते हैं। क्या इनकी अपेक्षा बुद्ध की प्रतिमा या जिनेन्द्र की मूर्त्ति के सामने घुटने टेककर यह कहना कि

---

† *प्रेमयोग पृ० २५*

तुम्ही मेरा प्राण हो' श्रेष्ठ नही है ? मैं तो उसके बदले इसको सौ बार अच्छा कहूगा ।"*

यहाँ विवेकानन्दजी दो भिन्न गुणो वाली वस्तुओ को एक ही स्तर पर लाकर मूर्त्तिपूजा की श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। यदि कोई पति अपनी पत्नी के आगे प्रेम प्रदर्शित करता है अथवा पत्नी अपने पति के आगे समपरण करती है तो हम इस प्रेमसम्बन्ध को गर्हित कसे कह सकते है ? जीती जागती मानव प्रतिमा को क्राइस्ट बुद्ध या जिनेन्द्र की जड प्रतिमा से हेय बतलाना कहा तक न्यायोचित कहा जा सकता है ? यह ठीक है कि मानवप्रेम मानव-जीवन की भाँति ही क्षणभगुर है परन्तु उसकी क्षतिपूर्ति किसी पाषाण प्रतिमा को प्यार करके तो नही की जा सकती। यह भी ठीक है कि विवकानन्द जसे परिव्राजक सन्यासी का किसी मानवी से प्रेम करना सर्वथा असगत ही था परन्तु इससे पाषाण प्रतिमा के प्रति प्रेमप्रदशन करने को उचित कसे माना जा सकता है ? एसे भावुकता पूण आदशवाद से तत्त्व निणय मे क्या सहायता मिलेगी ?

विवेकानन्द यह मानते हैं कि मन की एकाग्रता के लिये प्रतिमा की आवश्यकता है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"मन मे किसी मूर्त्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है जितना कि श्वास के बिना जीवित रहना। † यदि यह बात सत्य हो कि बिना मूर्त्ति के हम कुछ सोच भी न सकते हो तब तो दया करुणा अहिंसा मैत्री आदि अमूत भावनाओ के विषय मे कोई कुछ सोच ही क्या सकेगा ? सच तो यह है कि हम अमूत पदार्थों के बारे मे भी सोचते हैं क्योकि सोचना एक मानसिक क्रिया है

* प्रमयोग पृ० ७५

† हिन्दू धम पृ० २१ *We can no more think about anything without a mental image than we can live without breathing*

और वह किसी जड़ आलम्बन की अपेक्षा नहीं रखता। इसी स्थान पर वे प्रतीकोपासना के महत्व के विषय मे लिखते है— यह बाह्य प्रतीक उसके मन का जिस परमेश्वर का यह ध्यान करता है उसमे एकाग्रता से स्थिर रखने मे सहायता देता है। वह भी उतनी ही अच्छी तरह से जानता है जितना आप जानते हैं कि वह मूर्त्ति न तो ईश्वर ही है और न सर्वव्यापी ही। † सत्य तो यह है कि प्रतीक का ध्यान करने से प्रतीक के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु मन मे आ ही नही सकती। न्यायदर्शनकार ने मन का लक्षण करते समय स्पष्ट कहा है कि मन एक समय मे एक ही वस्तु पर केन्द्रित हो सकता है। ‡ अत्र यदि हम अपने मन को प्रतीक पर लगाते है तो वह प्रतीक का ही विचार करेगा। परमेश्वर पर मन केन्द्रित करना हो तो मन को सम्पूर्णत निर्विषय बनाना होगा। प्रतीक भी तो एक विषय (Object) ही है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि परमेश्वर का प्रतीक हो क्या हो सकता है? वेद ने स्पष्ट कहा हैं—**न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद् यश**। * महान् यशस्वी परमात्मा की कोई प्रतिमा या प्रतीक नही है। एक अन्य स्थान मे तो स्वय विवेकानन्द ने ही प्रतीकोपासना की निस्सारता को स्पष्ट रूप मे घोषित कर दी है। अपने प्रेमयोग नामक ग्रन्थ मे वे लिखते है— यदि लोग ऐसा समझने लगें कि प्रतीको की पूजा द्वारा हम कभी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं तो वह उनकी बड़ी भूल होगी। (पृ० ६७) यह कथन भी साध्य कोटि मे ही रक्खा जाने योग्य है कि मूर्त्तिपूजक मूर्त्ति को मूर्त्ति ही जानता है सर्वव्यापक ईश्वर नही। इसके विपरीत व्यवहार मे तो देखा जाता कि मूर्त्तिपूजक अपनी उपास्य

---

† *हिन्दू धर्म पृ० २१ 'It helps to keep his mind fixed on the Being to whom he prays He knows as well as you do that the image is not God is not omnipresent*

‡ *युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।*

* यजुर्वेद ३२। ३

मूर्त्ति को ही सवज्ञ ईश्वर समझता है। उसकी मूर्त्ति से प्राथना और याचना यह सिद्ध करती है कि वह मूर्त्ति को ही ईश्वर का स्थान दे रहा है।

उपयु क्त पक्तियो मे हमने स्वामी विवेकान द द्वारा दिये गये मूर्त्तिपूजा के समथक तर्कों और युक्तियो को देखा। स्वामी विवेकान द ने यह जानने की चेष्टा नही की कि मूर्त्तिपूजा वदिकधम की मूल चि तनप्रणाली के प्रतिकूल है या अनुकूल। उन्होने यदि उसका समथन किया तो उसका कारण था ईसाइयो द्वारा मूर्त्तिपूजा का विरोध किया जाना और हि दुओ को मूर्त्तिपूजक कह कर बदनाम करना। इसका सबसे अच्छा प्रमाण है उनकी शिकागो वक्तता जिसमे उन्होने हि दुओ मे विद्यमान बहुदेवोपासना को अस्वीकार करते हुए मूर्त्तिपूजा का समथन किया। उ होने कहा—

प्रारम्भ म ही मैं आपसे यह कह देना चाहता हू कि भारतवष मे अनेकेश्वरवाद नही है। प्रत्येक मन्दिर मे यदि कोई खडा होकर सुने तो वह यही पाएगा कि भक्तगण सवव्यापित्व से लेकर ईश्वर के सभी गुणो का आरोप उन मूर्त्तियो मे करते हैं। वृक्ष उसके फलो से जाना जाता है। जब मैं मूर्त्ति पूजको मे ऐसे लोगो को देखता हू जो नतिकता, आध्यात्मिकता और प्रम मे अद्वितीय हैं तो मैं रुकता हू और अपने आप से पूछता हू—क्या पाप से पवित्रता उत्पन्न हो सकती है ? भारत मे मूर्त्तिपूजा भयानकता का प्रतीक नही है। यह व्यभिचार की जननी नही है। *

---

* *At the very outset I may tell you that there is no Polytheism in India In every temple if one stands by and listens one will find the worshippers applying all the attributes of God including omnipresence to the images The tree is known by its fruits When I have seen amongst them that are called idolaters men the like*

(शेष अगले पृष्ठ पर)

उपर्युक्त तर्क दीखने मे जितना प्रभावशाली प्रतीत होता है वस्तुत वह उतना ही खोखला है। यहा हम आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प० गंगाप्रसादजी उपाध्याय के शब्दो मे ही इस युक्ति का समाधान प्रस्तुत करेंगे जिसे उन्होने अपनी Worship नामक पुस्तक के "Some Arguments examined शीर्षक अध्याय मे प्रस्तुत किया है। उपाध्यायजी लिखते हैं— हम आदरणीय स्वामीजी को उनकी स्वदेश भक्ति और पश्चिम मे भारतीय सभ्यता की वकालत के कारण अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं परन्तु उनके इन मूर्त्तिपूजा विषयक साहसपूर्ण समर्थनो पर आश्चर्य प्रकट किये बिना नही रह सकते। हमे शायद अश्रद्धालु समझा जाय यदि हम यह कहे कि उपर्युक्त कथन अनेक त्रुटियो से पूर्ण हैं। परन्तु सत्य सत्य ही है। यह कहना कि भारत मे बहुदेवोपासना नही है तथ्यो के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है। देवताओ और देवियो के बाहुल्य से पुराण भरे पडे हैं जिनमे उनके जन्म विवाह और युद्धों का वर्णन है। और सभी पौराणिक पण्डितो और उनके अनुयायियों का उनमे विश्वास है यदि कोई उन लाखो मूर्त्तिपूजक हिन्दुओ से ईमानदारी से पूछे—गाँव मे मन्दिर मे या किसी धार्मिक पर्व या मेले मे— तो वे मेरे कथन का समर्थन करेंगे। व्याख्यान वेदी का मूर्त्तिपूजक वास्तविक मूर्त्तिपूजक से सर्वथा भिन्न होता है।

यदि यह कहा जाय कि वृक्ष की परीक्षा उसके फल से होती है तो हम निर्भीकता से कह सकते हैं कि मूर्त्तिपूजा वह वृक्ष है जिसने कभी कोई अच्छा फल उत्पन्न ही नही किया। देवदासियो की भयानक अनाचारपूर्ण प्रथा

---

of whom in morality and spirituality and love I have never seen anywhere I stop and ask myself Can sin beget holiness? Idolatry in India does not mean anything horrible It is the not mother of harlots

Chicago Address P 25–30

कलकत्ता के काली मन्दिर के बीभत्स दृश्य और इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रो बुराइयाँ जिनका वर्णन राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द तथा अन्य अनेक हिन्दू सन्तो ने किया है, जो स्वामी विवेकानन्द की अपेक्षा कम देशभक्त नही थे। ये बुराइयाँ हिन्दू सभ्यता को तमसाच्छन्न नही कर देती यदि मूर्त्तिपूजा का अनार्य और अवैदिक तत्त्व उसमे न घुसा होता। सत्यनिष्ठा ही सर्वोपरि देशभक्ति है और यदि हम अपनी कमजोरियो को कम करके बतायें उन्हे सहन करें अथवा उन्हे गौरवान्वित करें तो हम अपने देश की सेवा नही करते।

परमहस रामकृष्ण का उदाहरण अक्सर दिया जाता है जो सर्वोच्च आध्यात्मिक साधक होने के साथ-साथ मूर्त्तिपूजक भी थे। उनका जीवन इतना रहस्यपूर्ण है और उनके शिष्यो—विशेषत स्वामी विवेकानन्द द्वारा रहस्यपूर्ण बना दिया गया है, कि हम व्यक्ति का विचार करना छोड़ देते है। हम दार्शनिक मूर्त्तिपूजक को छोड दें। मूर्त्तिपूजा का प्रचारक एक अन्य ही व्यक्ति होता है। वह वहाँ भी तर्क निकाल लेता है जहाँ उसकी आवश्यकता नही होती। वह सत्यता का अन्वेषक न होकर अपनी कठिनाई का हल ढूढने वाला होता है। उसे अपने अनुयायियो पर अपना प्रभाव रखना होता है और वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी इसे रखता है। उसके तर्क अक्सर परस्पर विरुद्ध और हास्यास्पद होते हैं।

विद्वद्वर उपाध्यायजी के इन समाधानपूर्ण वाक्यो से विवेकानन्दजी की जादूभरी वक्तृता का नशा अवश्य ही उतर जायगा यह हमारा दृढ विश्वास है। सत्य तो यह है कि विवेकानन्दजी ने मूर्त्तिपूजा की जो दार्शनिक व्याख्या की वस्तुत पौराणिक हिन्दूधर्म मे तो उसके लिये कोई आधार ही नही है। पौराणिक युग से पूर्व के किसी वैदिक या दार्शनिक ग्रन्थ में मूर्त्तिपूजा का कोई उल्लेख न मिलना ही यह सिद्ध करता है कि यह कुसस्कार हिन्दुओ मे जैन-बौद्ध ससर्ग से आया उन मतों से जिनमे ईश्वर जैसी पारमार्थिक सत्ता के स्थान पर बोधिसत्त्वो और तीर्थकरो की मनुष्यपूजा विद्यमान थी। ऐसी स्थिति

-म विवेकानन्द का मूर्त्तिपूजा का समथन Defence for Defence s sake (समथन के लिये समथन) ही कहलायगा और यह जानते हुये भी कि विवकानन्दजी के भक्तगण हमे क्षमा नही करेगे उनके शिकागो भाषण की ईसाइयो द्वारा की गई उस आलोचना की कुछ पक्तियाँ उद्धत करना चाहेगे जिनमे कहा गया है— सूक्ष्म तक व युक्ति के द्वारा मूर्त्तिपूजा की दाशनिक व्याख्या कर वे पाश्चात्य जगत् की आखो मे धूल झोकने के लिये उद्यत हुये हैं, क्याकि जड के उपासक पौत्तलिक हिन्दू उक्त प्रकार की व्याख्या स्वप्न मे भी नही सोच सकत । * शब्द कटु अवश्य है परन्तु इनमे इतनी सत्यता तो हे कि मूर्त्तिपूजक हिन्दुओ ने अपने कृत्य के समथन मे कभी इस प्रकार की दाशनिक युक्तियाँ नही सोची थी जसी विवेकानन्दजी ने इसके समथन मे दी हैं । अस्तु

कुछ भी हो दिवेकानन्दजी ने चाहे मूर्त्तिपूजा का समथन ईसाई मिशनरियो क हिन्दूधम पर किये जाने वाले प्रहारो को कुण्ठित करसे के लिये नीति के रूप मे किया हो अथवा और किसी उद्देश्यवश यह भी निश्चित सा ही है कि मूर्त्तिपूजा से उत्पन्न होने वाली बुराइयो से भी वे अपरिचित नही थे और जब कि समस्त देश मे ईश्वर की साकार प्रतिमा–मानवता की हत्या हो रही हो, वे मूर्त्तिपूजा के आडम्बर को समाप्त कर देने के इच्छुक थे । उनके ग्रथो और वक्तव्यो मे शतश वचन ऐसे मिलेगे जो मूर्त्तिपूजा के स्पष्ट विरोधी हैं । एक साथ ही मूर्त्तिपूजा का समथन और विरोध-इसे आप चाहे वदतोव्याघात (Self-contradiction) कहे या और कुछ विवेकानन्द के साहित्य मे आपको मिलेगा । कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं जो इस मत की पुष्टि करेंगे ।

अपने एक पत्र मे स्वामीजी मूर्त्तिपूजको के बाह्याडम्बर से क्षुब्ध होकर लिखते हैं— अगर भला चाहो तो घण्टा, सण्टा गगा मे बहाकर साक्षात् भगवान् नारायण की नरदेह धारी हरएक मनुष्य की पूजा करो करोडो रुपये खच करके बनाये गये काशी और वृन्दावन के श्री ठाकुर के घर के

---

* विवकानन्द चरित पृ० १६३

दरवाजे खुलते और वन्द होत रहते हैं। अब ठाकुरजी कपडे बदलते हैं और अब ठाकुरजी भोग पात हैं और अब ठाकुरजी निपूतो क बापदादो के श्राद्ध मे पिण्डा निगलते हैं और इधर जीत जागते ठाकुर अन्न बिना विद्या विना मर रहे हैं। * यह है विवेकानन्दजी का अन्तस्तल जो देश की आर्थिक दुरवस्था को देखकर चीत्कार कर उटता है। क्या ऋषि दयानन्द की मूर्त्तिपूजा की समीक्षा भी इसी कोटि की नही है? उन्होने भी तो जहाँ मूर्त्तिपूजा की सोलह हानियो की गणना की है वहाँ मन्दिर क निर्माण मे करोडो रुपयो को व्यय करना दरिद्रता का कारण और प्रमाद उत्पन्न करने वाला बताया है।† इसी प्रकार मन्दिरो के ताले लगाकर ठाकुरजी को बन्द कर देने की चर्चा भी उन्होने की है।‡

एक अन्य पत्र म तो विवेकानन्दजी ने मूर्त्तिभजक का सा रूप धारण कर लिया है। प्राणिमात्र मे आत्मतत्त्व को ढूढने का उपदेश देते हुये वे लिखते है— जो उच्च नीच सभी है परम साधु भी हैं और पापी भी जो दवता और कीट हैं उस प्रत्यक्ष जानने योग्य यथाथ सवशक्तिमान् ईश्वर की उपासना करो। बाकी सब मूर्त्तियो को तोड डालो। जिसमे न पूवजन्म है न परजन्म न मृत्यु है न आवागमन जिसमे हम सदा एक होकर रहे हैं और रहेगे उसी ईश्वर की उपसना करो। बाकी सब मूर्त्तिओ को तोड डालो। × हमे भय है कि मूर्त्तियो को तोडने के इस स्पष्ट आदेश का भी विवेकानन्दजी के भक्तगण कोई रहस्यात्मक अथ न निकालने लग? परन्तु हमारे विचार मे उपयुक्त विचारधारा पर्याप्त स्पष्ट है। वेदान्त प्रतिपाद्य सवगत ब्रह्म का अनुभव हो जान पर मूर्त्तिपूजा की आवश्यकता नही रहती शायद विवेकानन्दजी का यही

---

* *पत्रावली भाग १ पृ० १९९*

† *सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास पृ० ३२०*

‡ *स० प्र० पृ० ४६९*

× *पत्रावली भाग २ पृ० २००*

अभिप्राय हो। कुछ भी हो यह सतोष का विषय है कि स्वामी दयानन्द ने अतिवादिता की इस चरमसीमा पर पहुँच कर मूर्त्तियो को तोडने का आदेश अपने अनुयायियों को नही दिया।

मूर्त्तिपूजा से होने वाली आर्थिक हानि से भी विवेकानन्दजी परिचित थे। तभी तो अपने एक सहवर्गी को पत्र लिखते हुये वे उसे पूजा के व्यय मे कमी करने के आदेश देते है। 'पूजा का खच घटा कर एक यों दो रुपये महीने पर ले आओ। प्रभु की सन्तान भूख से मर रही है। केवल जल और तुलसी पत्र से पूजा करो। * आलोचना है परन्तु अत्यन्त मृदु।

पौराणिक हिन्दुओ के तीर्थों मे विद्यमान मन्दिरो और मूर्त्तियों के सम्बन्ध मे जो चमत्कारपूण कथन लोगो मे प्रचलित हैं उनका तकपूण खण्डन स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास मे किया है। स्वामी दयानन्द ने अपने विरक्त जीवन मे वर्षों तक पवित्र कहे जाने वाले वाले तीथस्थानो मे भ्रमण किया था। वहाँ चमत्कारपूर्ण परन्तु असम्भव मिथ्या कथाओ से सामान्य जनता को पण्डे पुजारी किस प्रकार चमत्कृत करते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं यह भी वे जानते थे। भारत के हिन्दू समाज के प्रति दयानन्द के द्वारा किये गये अनेक उपकारो मे से एक उपकार यह भी था कि उन्होंने भोली भाली जनता को धम के नाम पर ठगनेवाले वचक लोगो के दल और उनके धूर्ततापूर्ण कृत्यो से सावधान कर दिया। स्वामी दयानन्द ने इस प्रसग मे जिन-जिन तीथ स्थानों मे प्रचलित मिथ्या प्रवादो का भण्डाफोड किया है उनमे से प्रमुख ये हैं—(१) काशी के लाट भैरव विश्वनाथ और वेणीमाधव (२) गया मे पिण्डदान (३) कलकत्ते की काली (४) पुरी का जगन्नाथ मन्दिर (५) रामेश्वर (६) दक्षिण में कालियाकान्त (७) डाकोरजी (८) सोमनाथ (९) द्वारिका के रणछोडजी (१०) ज्वाला मुखी हिंगलाज (११) अमृतसर (१२) अमरनाथ (१३) हरिद्वार तथा उत्तराखण्ड के अन्य

---

* पत्रावली १ पृ० २३९

तीर्थ (१४) विंध्याचल की विंध्येश्वरी (१५) प्रयाग, अयोध्या, मथुरा वृन्दावन कुरुक्षेत्र आदि।

इसी प्रसग मे हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि तीर्थों मे प्रचलित धूतलीलाओ और तत्सम्बन्धी मिथ्या विश्वासो के प्रति अनास्था का भाव स्वामी विवेकानन्द ने भी दिखलाया है यद्यपि अत्यन्त मृदुभाव से। पाखण्ड के खण्डन मे जसी उग्रता और तेजस्विता अपेक्षित होती है उसके तत्त्व उनमे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान नही थे। तभी तो एक वार्तालाप के प्रसग मे जगन्नाथ की रथयात्रा के सम्बन्ध मे प्रचलित प्रवाद की आलोचना करते हुये भी वे मुख्य प्रसग से हटकर जनसाधारण मे प्रचलित विश्वास की ताईद करने लगे। उनके शब्द ये है— यदि लकडी के रथ मे भगवान् को देखकर ही जीव की मुक्ति हो जाती है तब तो प्रत्येक वष करोडो मनुष्यो को ही मुक्तिलाभ हो जाता फिर भी मैं जगन्नाथजी के सम्बन्ध मे साधारण भक्तो का जो विश्वास है उनके बारे मे यह नही कहता हू कि वह कुछ भी नही अथवा मिथ्या है और सचमुच एक श्रेणी के लोग ऐसे भी हैं जो इसी मूर्त्ति का अवलम्बन लेकर धीरे धीरे उच्च से उच्च तत्त्व को प्राप्त होते हैं अतएव मूर्त्ति का आश्रय लेकर भगवान् की विशेष शक्ति जो प्रकाशित हो रही है इसमे भी किसी प्रकार का सन्देह नही है। * यदि मनोवज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो विवेकानन्दजी जगन्नाथ की मूर्त्ति के दशन से मुक्तिलाभ मानने वालो को अज्ञानी ही समझते है परन्तु स्पष्ट रूप मे उनके विश्वास की आलोचना करना वे नही चाहते। दयानन्द की आलोचना इस प्रकार की लाग लपेट से सवथा मुक्त है।

विवेकानन्द ने मूर्त्तिपूजा के पक्षसमथन म चाहे स्पष्टरूप से अथवा धीमे स्वर से कुछ भी क्यो न कहा हो, हम तो ऐसा अनुभव करते हैं कि देश की तत्कालीन दुर्भिक्षग्रस्त स्थिति के कारण बुभुक्षा से पीडित भारतीय जनवग की

---

* विवकानन्दजी के सग मे पृ० १४८

अभिप्राय हो। कुछ भी हो यह संतोष का विषय है कि स्वामी दयानन्द ने अतिवादिता की इस चरमसीमा पर पहुँच कर मूर्त्तियो को तोडने का आदेश अपने अनुयायियों को नही दिया।

मूर्त्तिपूजा से होने वाली आर्थिक हानि से भी विवेकानन्दजी परिचित थे। तभी तो अपने एक सहवर्गी को पत्र लिखते हुये वे उसे पूजा के व्यय मे कमी करने के आदेश देते हैं। 'पूजा का खर्च घटा कर एक या दो रुपये महीने पर ले आओ। प्रभु की सन्तान भूख से मर रही है। केवल जल और तुलसी पत्र से पूजा करो। * आलोचना है परन्तु अत्यन्त मृदु।

पौराणिक हिन्दुओ के तीर्थों मे विद्यमान मन्दिरो और मूर्त्तियों के सम्बन्ध मे जो चमत्कारपूर्ण कथन लोगो मे प्रचलित हैं उनका तर्कपूर्ण खण्डन स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास मे किया है। स्वामी दयानन्द ने अपने विरक्त जीवन मे वर्षों तक पवित्र कहे जाने वाले तीर्थस्थानो मे भ्रमण किया था। वहाँ चमत्कारपूर्ण परन्तु असम्भव मिथ्या कथाओ से सामान्य जनता को पण्डे पुजारी किस प्रकार चमत्कृत करते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं यह भी वे जानते थे। भारत के हिन्दू समाज के प्रति दयानन्द के द्वारा किये गये अनेक उपकारो मे से एक उपकार यह भी था कि उन्होने भोली भाली जनता को धर्म के नाम पर ठगनेवाले वंचक लोगो के दल और उनके धूर्ततापूर्ण कृत्यो से सावधान कर दिया। स्वामी दयानन्द ने इस प्रसंग में जिन-जिन तीर्थ स्थानों मे प्रचलित मिथ्या प्रवादो का भण्डाफोड किया है उनमे से प्रमुख ये हैं—(१) काशी के लाट भैरव, विश्वनाथ और वेणीमाधव (२) गया मे पिण्डदान (३) कलकत्ते की काली (४) पुरी का जगन्नाथ मन्दिर (५) रामेश्वर (६) दक्षिण में कालियाकान्त (७) डाकोरजी (८) सोमनाथ (९) द्वारिका के रणछोडजी (१०) ज्वाला मुखी, हिंगलाज (११) अमृतसर (१२) अमरनाथ (१३) हरिद्वार तथा उत्तराखण्ड के अन्य

---

* पत्रावली १ पृ० २३९

तीथ (१४) विंध्याचल की विंध्येश्वरी (१५) प्रयाग, अयोध्या मथुरा वृ दावन कुरुक्षेत्र आदि।

इसी प्रसग मे हम यह भी निवदन कर देना चाहते है कि तीर्थों मे प्रचलित धूतलीलाओ और तत्सम्ब धी मिथ्या विश्वासो के प्रति अनास्था का भाव स्वामी विवेकानन्द ने भी दिखलाया है यद्यपि अत्य त मृदुभाव से। पाखण्ड के खण्डन मे जसी उग्रता और तेजस्विता अपेक्षित होती है उसके तत्त्व उनमे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान नही थे। तभी तो एक वार्तालाप के प्रसग मे जग नाथ की रथयात्रा के सम्ब ध मे प्रचलित प्रवाद की आलोचना करते हुये भी वे मुख्य प्रसग से हटकर जनसाधारण मे प्रचलित विश्वास की ताईद करने लगे। उनके श द ये है— यदि लक्डी के रथ मे भगवान् को देखकर ही जीव की मुक्ति हो जाती है तब तो प्रत्येक वष करोडो मनुष्यो को ही मुक्तिलाभ हो जाता फिर भी मैं जगन्नाथजी के सम्ब ध मे साधारण भक्तो का जो विश्वास है उनके बारे मे यह नही कहता हू कि वह कुछ भी नही अथवा मिथ्या है और सचमुच एक श्रेणी के लोग ऐसे भी हैं जो इसी मूर्त्ति का अवलम्बन लेकर धीरे धीरे उच्च से उच्च तत्त्व को प्राप्त होते हैं अतएव मूर्त्ति का आश्रय लेकर भगवान् की विशेष शक्ति जो प्रकाशित हो रही है इसमे भी किसी प्रकार का स देह नही है।'* यदि मनोवनानिक दृष्टि से देखा जाय तो विवेकान दजी जग नाथ की मूर्त्ति के दशन से मुक्तिलाभ मानने वालो को अज्ञानी ही समझते हैं परन्तु स्पष्ट रूप मे उनके विश्वास की आलोचना करना वे नही चाहते। दयान द की आलोचना इस प्रकार की लाग लपेट से सवथा मुक्त है।

विवेकान द ने मूर्त्तिपूजा के पक्षसमथन मे चाहे स्पष्टरूप से अथवा धीमे स्वर से कुछ भी क्यो न कहा हो, हम तो ऐसा अनुभव करते है कि देश की तत्कालीन दुर्भिक्षग्रस्त स्थिति के कारण बुभुक्षा से पीडित भारतीय जनवग की

---

* विवकान दजी के सग मे पृ० १४८

दयनीय दशा को देखकर उनका करुणा विगलित हृदय शतश खण्डित हो रहा था। ऐसी स्थिति मे आडम्बरपूण मूर्त्तिपूजा के प्रति उनकी सहज ही विरक्ति हो जाना कुछ अस्वाभाविक नही। वार्तालाप के प्रसग मे उ होने कहा देश के लोग दो वक्त दो दान खान की नही पाते, यह देखकर मन मे आता है— छोड दे शख बजाना घण्टी हिलाना। * इससे अधिक विडम्बना और क्या होगी कि उनके स्पष्ट आदेश† के रहते हुये भी काला तर मे रामकृष्ण मिशन द्वारा सचालित आश्रमो मे ईश्वर के नये अवतार 'रामकृष्ण परहस की षोडशोपचार पूजा प्रारम्भ हो गई। इस दृष्टि से तो दयान द के अनुयायी वस्तुत बधाई के पात्र हैं जि होने अपने उपासना म दिरो म किसी प्रकार की बाह्यपूजा को स्थान नही दिया।

स्वय मूर्त्तिपूजा की निस्सारता के विषय मे इतने स्पष्ट विचार रखते हुये भी विवेकानन्द को यह सह्य नही था कि कोई सुधारक इस कुसस्कार के विरुद्ध आवाज उठाये। ऐसा सोचने का सम्भवत यही कारण हो सकता है कि सुधार आ दोलनो के प्रति उनमे एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक खीज थी जिसके विषय मे हम अन्य प्रसग म विचार करेगे। अपने एक ग्र थ मे उ होने लिखा प्रत्येक धम मे ऐसे धर्मोपदेशक सदव ज म लेते आये है जि होने प्रतीको और बाह्य अनुष्ठानो के विरुद्ध कमर कसी है। कि तु उनका प्रतिकार व्यथ हुआ। ‡ अत उ होने यह सहज निष्कष निकाल लिया— प्रतीकोपासना के विरुद्ध उपदेश देना व्यथ है। × यह तो सत्य है कि जडपूजा के विरुद्ध क्रान्ति की ध्वजा के वाहक महापुरुष समय समय पर सभी देशो मे उत्प न होते हैं परन्तु

---

* *विवेकान दजी के सग मे पृ० ४०८*

† *'अद्वै त आश्रम मे किसी प्रकार की बाह्यपूजा का अनुष्ठान न रहे।"*
विवेकान द चरित पृ० ४१५

‡ *आत्मानुभूति तथा उसका माग पृ ६१*

× *आत्मानुभूति तथा उसका माग पृ ६२*

यह कसे मान लिया जाय कि उनके प्रयत्न सब व्यथ ही हाते आये है। यह भी सत्य है कि जनसाधारण मे अ धविश्वासो का प्रचार सहज मे ही हो जाता है और बुद्धिवाद को अपना पथ प्रदशक बनाकर चलन वाले भी ससार मे कम ही होते हैं पर तु इसका यह अथ नही कि सशाधको के सुधार काय का कोई मूल्य ही नही। कबीर नानक राममोहनराय और दयान द न लाखा करोडो पथ भ्रष्टो को प्रभु उपासना के वास्तविक पथ का पथिक बना दिया है इसे कौन अस्वीकार करेगा ? और फिर प्रतीकोपासना की यथता का उपदेश देना ब द क्यो कर दिया जाय ? क्या इसलिये कि अधिकाश जनता सुधारका की बातो को बहरे काना से सुनती है ? क्या इसलिये कि स्वार्थी लोग इन महाप्राण यक्तिया के अकारण ही शत्रु बन जाते है ? क्या इसलिये कि कुसस्कार पूण मतवादो का विध्वस करने वाले इन महामानवो को प्रतिष्ठा नही मिलती व मह तो के ऐश्वय पूण पदो से वचित रह जाते हैं ? ऐसा उपदेश देने वालो को सम्भवत यह ज्ञात नही कि भतृ हरि के श दो मे दयान द की तो प्रतिज्ञा ही यह थी—

नि दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुव तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यव वा मरणमस्तु युगा तरे वा
याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥

नि दा स्तुति हानि लाभ और जीवन मरण की तनिक भी चि ता किए बिना जो धीरपुरुष याय के माग पर स्वय चलकर अ यो को भी उस पर चलने की प्रेरणा दे रहे है उ हे यह कहना कि वे प्रतीकोपासना का विरोध न करें वसा ही है जसा सूय को अपना ग त य माग छोडकर विरुद्ध दिशा मे चलने का उपदेश देना। अस्तु।

एक याख्यान मे विवेकान द जी ने कबीर को मूर्तिपूजा का प्रथम निषध कर्ता माना है। उ होने कहा 'भारतवष मे सवप्रथम कबीरदास ने ही

इश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठाई थी। परन्तु भारत मे ऐसे कितने ही बडे बडे दार्शनिक और धर्म सस्थापक हुए हैं जिन्होने भगवान् का सगुणरूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्तिपूजा पर दोषारोपण नही किया। * यो तो कबीर के पूर्व आचार्य शकर ने भी अपने निर्गुण मानसपूजा नामक एक लघुकाय ग्रन्थ मे षोडशोपचार प्रतिमापूजन का उपहास किया है और द्वैतवाद के प्रतिष्ठापक आचार्य मध्व ने भी अपने उपनिषद् और वेदान्त भाष्य मे भी प्रीतकोपासना का खण्डन किया है परन्तु पौराणिक मान्यताओ को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करने की दशा मे न होने के कारण इन आचार्यों ने अन्यत्र अपने ग्रन्थो मे मूर्तिपूजा का विधान भी किया है। सम्भवत विवेकानन्दजी का सकेत इन्ही दार्शनिको की ओर है। कबीर की मूर्तिपूजा का खण्डन यद्यपि बडा तीव्र और आक्रामक भाव लिए हुए था परन्तु उन्होने यह कही नही बताया कि मूर्तिपूजा हिन्दू धर्म (वैदिक मत) की मौलिक मान्यताओ के विरुद्ध हैं। शास्त्र-ज्ञान से वचित रहने के कारण भी वे इस विषय मे अधिक ऊहापोह नही कर सके। राममोहनराय ने साधारणत और दयानन्द ने विशेषत इस बात का प्रतिपादन किया कि मूर्तिपूजा के लिये वदिक धर्म मे कोई स्थान नही है। उनका मूर्तिपूजा का निषध शास्त्र प्रमाण से समन्वित और अनुमोदित एव युक्ति पूर्ण था। ऐसी दशा मे धर्म मे व्याप्त इस मौलिक बुराई से समझौता करना उनके लिए असम्भव ही था।

यद्यपि समय समय पर अनेक युगपुरुष महान् धर्माचार्यो और सुधारको ने मूर्तिपूजा को एक सक्रामक व्याधि समझ कर उसके विरोध मे अपनी आवाज बुलन्द करने की चेष्टा की परन्तु उन आवाजो मे सबसे प्रखर और प्रभावोत्पादक आवाज उस आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द की थी, जिसने वेद मन्त्रो का दर्शन कर इस तथ्य को हस्तामलकवत् प्राप्त कर लिया था कि सच्चिदानन्दादि लक्षण

---

* *भारत मे विवकानन्द पृ ४०४*

युक्त प्रज्ञानघन परमात्मा की कोई प्रतिकृति या प्रतिमा नही है। इस महान् सत्य का साक्षात्कार करने मात्र से ही उसे सतोष नही हुआ उसने इसका ग्राम ग्राम नगर नगर और देश देश म प्रचार करने का भी बीडा उठाया। उस इस पुण्य काय के करने मे कितनी सफलता मिली यह तो भविष्य ही बतायगा पर तु इतना तो हम निश्चयपूवक कह सकते है कि उसके न्ा तदर्शी विचारो की छाप उत्तरवर्ती सभी धर्माचार्यों पर पडी। विवेकान द भी इसके अपवाद नही थे।

□ □

विभिन्न मत-सम्प्रदायो के प्रति दृष्टिकोण

ऋषि दयानन्द के धम सशोधन का काय द्विविध प्रवृत्तियो का अनुसरण करता है। सवप्रथम वे धम के वास्तविक-प्राकृत स्वरूप का दिग्दशन करात है और उसके अनन्तर धम के नाम पर प्रचलित विभिन्न बाह्याडम्बरो और पाखण्डो के पुञ्ज स्वरूप मत मता तरो की आलोचना मे प्रवृत्त होते है। प्रत्येक धम सशोधक को इन दोनो प्रवृत्तियो का सहारा लेना ही पडता है। धम के विधेयात्मक स्वरूप की रूपरेखा निश्चित करने के अनन्तर उसके लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि धम के नाम पर प्रचलित जो नाना कुसस्कार अन्धविश्वास और रूढिबद्ध कमकाण्ड हैं उनके मायाजाल से जनता को मुक्त किया जाय। पुरातन कालीन सभी सस्कारको ने यह काय किया। बुद्ध ने अपने आचार प्रधान धम का उपदेश तो दिया ही साथ ही वे तत्कालीन ब्राह्मण धम मे उत्पन्न हुये विकारो की कटु आलोचना करने से भी विरत नही हुए। शकर ने वाममार्गियो कापालिको और जैन बौद्ध आदि सम्प्रदायो का जो कटु खण्डन किया है वह किसी भी जानकार से छिपा नही है। कबीर से लेकर राममोहनराय तक के धम सुधारको मे भी यह प्रवृत्ति स्पष्टतया लक्षित होती है।

ऋषि दयानन्द ने अपने सिद्धान्तो और अपनी मान्यताओ के स्पष्टीकरण में जो बृहद् साहित्य निर्मित किया है उसमे सत्याथप्रकाश अन्यतम है। इसके

चौदह समुल्लासो का वर्गीकरण और ग्र थ के पूर्वाध मे मानव मात्र के आचरणीय धम की विस्तृत मीमासा तथा उत्तराध के चार समुल्लासो मे भारत-वर्षीय तथा ग्र य देश देशा तरो मे प्रचलित प्रमुख मत सम्प्रदायो की आलोचना यह सिद्ध करती है कि वे अपने इस कत्तव्य के प्रति निता त जागरूक थे कि एक धम सशाधक के नाते उ हे मत मता तरो की समीक्षा रूपी एक कठोर परन्तु आवश्यक कत य का पालन करना है।

स्वामी विवेकान द ने यद्यपि विभि न मतमता तरो के सम्ब ध मे अपना दृष्टिकोण किसी एक ग्र थ मे निश्चित स्थान पर तो प्रकट नही किया है तथापि उनके समग्र ग्र थो और भाषणो मे यत्र तत्र उनके इस सम्ब ध के विचार दृष्टिगोचर होते हैं। बौद्ध ईसाई इस्लाम वष्णव, थियोसोफी ब्रह्मसमाज आयसमाज आदि प्राचीन और नवीन, भारतीय और समेटिक सभी मतो की विचार धाराओ पर उ होने प्रसगानुसार विचार किया और अपनी सम्मति व्यक्त की। अत प्रस्तुत अध्याय मे हम इन दोनो आचार्यों के मत-मतान्तर विषयक दृष्टिकोणो की आलोचना मे प्रवृत्त होते है।

सत्याथप्रकाश के उत्तराध मे चार समुल्लास है। उनमे क्रमश भारतीय वैदिक धारा से उद्भूत मतो बौद्ध, जन ईसाई और इस्लाम की आलोचना की गई है। हम सवप्रथम ऋषि दयान द द्वारा की गई बौद्धमत की आलोचना पर विचार करते है।

दयान द ने चार्वाक बौद्ध और जन मत के लिये अपने ग्र थ का सम्पूण द्वादश समुल्लास लिखा। इन तीनो मतो को एक ही वग मे रखने का एक प्रमुख कारण था—इनकी वेदा के प्रति अश्रद्धा। यद्यपि अनेक बातो मे ये तीनो मत परस्पर विभिन्न दृष्टिकोण रखते है पर तु कुछ बातो मे इनमे समानता भी हैं। इस प्रसग मे स्वामी दयान द लिखते हैं—‘ये चार्वाकादि बहुत सी बातो मे एक है पर तु चार्वाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उसके नाश के साथ ही जीव का भी नाश मानता है। पुनज म और परलोक

को नहा मानता एक प्रत्यक्ष प्रमाण के बिना अनुमानादि प्रमाणो को भी नही मानता। बौद्ध जन प्रत्यक्षादि चारो प्रमाण अनादि जीव पुनजन्म परलाक और मुक्ति को भी मानते हैं इतना ही चार्वाक से बौद्ध और जनियो का भेद है परन्तु नास्तिकता वेद ईश्वर की निन्दा परमतद्वेष और जगत् का कर्ता काई नही इत्यादि बातो मे सब एक ही है। *

ऋषि दयानन्द का यह विवचन कुछ अशो मे सव दशन सग्रह पर आधारित है क्योकि वही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसम चार्वाकादि नास्तिक दशनो का यत् किंचित् विवेचन हुआ है अन्यथा इन दशनो के मूल ग्रन्थो के अभाव म कुछ भी कहा जाना सम्भव नही था। जिस समय ऋषि दयानन्द ने सत्याथ प्रकाश लिखा उस समय बौद्ध और जन धम के बहुत कम ग्रन्थ प्रकाश मे आ सके थे। जनमत के ग्रन्थ तो अब भी पूणतया प्रकाश मे नहीं आ सके है परन्तु बौद्धमत के ग्रन्थो का विदेशो मे पर्याप्त प्रकाशन और प्रचार हुआ है।

ऋषि दयानन्द ने बौद्धमत की जो आलोचना की है वह उसके दाशनिक पहलू को लेकर की है। कालान्तर मे बौद्ध दशन के चार सम्प्रदाय हो गये माध्यमिक या शून्यवादी योगाचार या विज्ञानवादी तथा सौत्रान्तिक और वभाषिक। ऋषि दयानन्द की बौद्ध मत समीक्षा इन्ही चारो दाशनिक सम्प्रदायो की समीक्षा से प्रारम्भ होती है। उन्होने बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन और उनके विचारो के सम्बन्ध मे कुछ भी उल्लेख नही किया। सम्भवत वे बुद्ध को एक नवीन मत प्रवतक न मानकर केवल आयजाति का एक सुधारक ही मानते थे। परन्तु बुद्ध के वयक्तिक जीवन के सम्बन्ध मे उनकी अनुकूल या प्रतिकूल सम्मति के अभाव मे हम केवल अनुमान ही लगा सकते है निश्चित रूप से कुछ भी नही कह सकते। यह भी एक सिद्ध बात है कि बुद्ध का अपना कोई निश्चित दशन प्रचारित करने का उद्देश्य नही था। तत्कालीन ब्राह्मण-धम की विचारधारा और उसके क्रियाकाण्डो मे जो एक प्रकार की

---

* *सत्याथ प्रकाश द्वादश समुल्लास पृ० ५४५–५४६*

अतिवादिता आ गई थी उसके विरुद्ध उ होने आवाज अवश्य उठाई। बुद्ध के युग मे ही मक्खलीगोसाल अजित केसकम्बल सजय वेठ्ठलि-पुत्र और निगण्ठ नाथपुत्र जसे विभिन्न सम्प्रदाय प्रवतक लोग भी विद्यमान थे जो ब्राह्मण धम की भोगवादी और कमप्रधान विचारधारा से हटकर सवागीण वराग्यपूण जीवन यतीत करते तथा अपने देह दण्डन को ही चरम तप समभ्त थे। इन दोनो प्रकार की अतिवादिताओ से बचकर बुद्ध ने मध्यम माग का उपदेश दिया जिसमे चरम भोग और चरम वराग्य से हट कर जीवन यापन का एक सतुलित तरीका ढू ढ निकाला गया था।

आगे चलकर बुद्ध का यह स्वस्थ और सतुलित जीवन दशन ही एक विशेष प्रकार के दाशनिक मतवाद का रूप धारण करता गया। उनका ईश्वर के प्रति अज्ञेयवाद ओर तटस्थवाद आगे चलकर बौद्ध दाशनिको के द्वारा अनात्मवाद और अनीश्वरवाद मे परिणित कर दिया गया और बौद्ध चि तक तथा दाशनिक प्रत्यक्षत वदिक विचार धारा के विरोधी बनकर सामने आये। ब्राह्मण बौद्ध सघष की यह कहानी बडी लम्बी है और दु खद परिणामजनक भी है। अस्तु—

हमारे कथन का अभिप्राय यही है कि ऋषि दयान द ने बौद्ध धम के दाशनिक पहलू की ही समीक्षा की है—बुद्ध के वयक्तिक जीवन और विचारो के प्रति उनका दृष्टिकोण क्या था यह हमे ज्ञात नही। परन्तु विवेकान द ने बौद्ध धम के दशन का विवेचन करने की अपेक्षा बुद्ध के महान् आकषक व्यक्तित्व के प्रति ही अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की हे। भावकतापूण कथन मे वक्ता का ध्यान इस आर नही रहता कि वह जो कुछ कह रहा है कही उसमे असगति और परस्पर विरुद्ध कथन तो नही है। यही बात हम विवेकान द के बुद्ध के प्रति कथनो मे देखते हैं। अपने एक पत्र मे उ होन बुद्ध को साक्षात् ईश्वर स्वीकार करते हुये लिखा भगवान् बुद्ध मेरे ईश्वर है। उनका कोई ईश्वरवाद नही वे स्वय ईश्वर थे। इस पर मेरा पूण विश्वास

है * पुराणो ने बुद्ध को विष्णु का बुद्ध के रूप मे अवतार तो माना है परन्तु साथ ही उनम यह भी कहा गया है कि विष्णु ने बुद्ध के रूप म भ्रान्तमत का प्रचार किया और असुरो को वेद विमुख किया। विवेकानन्द पुराणो के इस मत को स्वीकार नही करते। एक अन्य पत्र मे इसका प्रतिवाद करते हुये वे लिखते है— पुरोहितो ने यह खतरनाक किस्सा बनाया कि भगवान् भ्रान्तमत प्रचार कर असुरो को मोहित करने आये थे। †

बुद्ध के जीवन और उनकी विचार धारा मे विवेकानन्द वेदान्त की विचारधारा को मूत रूप मे देखा करते थे। एक वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने बुद्ध को वेदान्त का स्फूत देवता बतलाया।‡ एक अन्य प्रसग मे उन्होने कहा— बुद्ध एक महावदान्तिक थे क्योकि बौद्ध धम वास्तव मे वेदान्त की शाखाविशेष मात्र है। × अपने ज्ञानयोग नामक ग्रन्थ मे वे बुद्ध को वेदान्त का प्रचारक मानते हुए लिखते है— बुद्धदेव ने आकर साधारण लोगो मे वेदा न का प्रचार करके भारतवष की रक्षा की। (पृ० १५७) यहा हमे पद्मपुराण के उस वचन का बरबस स्मरण हो आता है जिसमे नवीन वेदान्त प्रतिपादित मायावाद को प्रछन्न बौद्धमत कहा गया है। प्रकृत श्लोक इस प्रकार है—

मायावादमसत् शास्त्र प्रच्छन्न बौद्धमेव च।
मयव कथित देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ।।+

पुराणवचन जहाँ मायावादी वेदान्त को गुप्त बौद्ध विचार मानता है वहाँ

** पत्रावली भाग १ पृ० ३७*

† पत्रावली भाग १ पृ० ७२

‡ विवेकानन्दजी के सग मे पृ० १४६

× देववाणी पृ० १४१

+ विज्ञान भिक्षु के साख्य प्रवचन भाष्य मे उद्धत

विवेकानन्द बौद्धमत को ही वेदान्त की एक शाखा मानते है। बौद्धधम वेदान्त की शाखा है या वेदान्त ही प्रच्छन्न बौद्ध है इसका निणय तो इन दोनो विचारधाराओ के पौर्वापय (एक दूसरे से पूर्वापर होने) पर निभर करता और यह किसी से अविदित नही है कि बौद्धमत नवीन वेदान्त से अधिक प्राचीन है।

परन्तु यह प्रश्न यही पर समाप्त नही हो जाता। यदि विवेकानन्द बुद्ध को वेदान्ती मानें तो किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? परन्तु विवेकानन्द ने तो अन्यत्र बुद्ध को नास्तिक जडवादी और अनात्मवादी तक कह दिया है। एक प्रसग मे उन्होने लिखा— बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी जो नास्तिक है जो घोर जडवादी है परमोच्च अवस्था को प्राप्त कर सकता है। † अन्यत्र लिखा बुद्धदेव इसे (आत्मा को) सम्पूणरूपेण अस्वीकार करते थे। वे कहते थे—ब्रह्म या आत्मा नाम की कोई वस्तु नही है।'‡

हमारी कठिनाई यही से प्रारम्भ होती है। यदि बुद्ध ब्रह्म या आत्मा की सत्ता को सम्पूणरूप से अस्वीकार करते है तो उन्हे वदान्ती कहने मे क्या औचित्य है? बौद्धो का अनात्मवाद और वेदान्त का ब्रह्मवाद तो दो ऐसे परस्पर विरोधी सिरे हैं जिनको कभी भी नही मिलाया जा सकता। क्या परम्पर विरुद्ध कथन का इससे अच्छा कोई और भी उदाहरण हो सकता है? इससे भी विचित्र तमाशा एक और देखिए। उपयुक्त प्रसगो मे तो विवेकानन्द ने बौद्धधम को वेदान्त की एक शाखा सिद्ध करने की चेष्टा की परन्तु एक अन्य जगह उन्हाने साफ साफ कह दिया— बौद्धधम को और वेदान्त को समान समझना भूल हे—निरथक है। * अब पाठक के लिए यह नई समस्या

---

† महापुरुषा की जीवन गाथाय प० १३३

‡ देववाणी प० ७७

* हिन्दू धम प० ३४

खडी हा जाती हे। विवेकान द के इन दोनो परस्पर विरुद्ध कथनो मे से किसे सत्य समझे ?

वस्तुत बौद्धधम एक सुधार आन्दोलन के रूप मे प्रारम्भ हुआ। पशुबलि जन्मगत वण व्यवस्था कमकाण्ड की जटिलता समाज मे प्रचलित अ धविश्वास और पौरोहित्यवाद न बौद्ध धम को उत्पन्न किया। बुद्ध के जीवनकाल मे बौद्ध धम चाहे कितना ही प्रगतिशील धम क्यो न रहा हो पर तु कालान्तर मे उसमे अनेक प्रकार की विकृतियाँ समाविष्ट हो गइ। ब्राह्मणधम के जिन बाह्याचारो का विरोध करने के लिये उसकी सृष्टि हुई थी उन्ही बाह्याचारो का समावेश उसम भी हो गया। यहाँ परवर्ती बौद्ध धम के स्वरूप और उसकी विकृतियो पर विचार करने के लिये न तो स्थान ही है और न आवश्यकता ही पर तु इतना कह देना ही पर्याप्त है कि विवेकान द भी बौद्ध धम के इस अपभ्रष्ट रूप से अपरिचित नही थे। उसकी एकमात्र उपलब्धि थी पशु हिंसा का आंशिक निवारण। इसी की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा 'बौद्ध धम यद्यपि आंशिक रूप में वदिक पशुबलि निवारण करने मे सफल हुआ पर उसने समस्त देश को मन्दिर प्रतिमा यन्त्र तथा साधुओ की अस्थियो से पूण कर दिया'* पतित बौद्ध धम ने हमे क्या दिया ? इसकी चर्चा करत हुए अपने एक भाषण मे उन्होने कहा अतिकुत्सित अनुष्ठान पद्धतिया, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ—जो मनुष्यो द्वारा और कभी नही लिखे गये मनुष्य जिसकी कल्पना तक नही कर सके अत्यन्त भीषण पाशविक अनुष्ठान पद्धतियाँ जो और कभी धम के नाम से प्रचलित नही हुई—ये सभी गिरे हुए बौद्ध धम की सृष्टि है।'†

ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर मे विवेकानन्द ने यह अनुभव कर लिया था कि बौद्ध धम के प्रचार और प्रसार से हमारे देश की हानि हुई है।

---

* *हमारा भारत प० २६*

† *भारत मे विवकानन्द प० २२३*

हि दू धम मे जो विकृतिया बौद्धमत के ससग से समाविष्ट हुइ उनका उल्लेख विवकान द के श दो मे ही किया जा चुका है। उनके इस विषय के निष्कर्षों को पढकर सम्भवत कोई चौक जाय पर तु उ होने अपने ग्र थ प्राच्य और पाश्चात्य' मे लिखा जन बौद्ध आदि के फेर मे पडकर हम लोग तामसिक लोगो का अनुसरण कर रहे है। ‡ एक कदम और आगे बढकर वे तो स्पष्ट कह देते हैं—' बुद्ध ने हमारा सवनाश किया और ईसू ने ग्रीक और रोम का सवनाश किया।' × अपने एक भाषण मे उ होने कहा जहा कही भी बुद्धदेव पहुँचे वही उन्होने हि दुओ द्वारा पवित्र मानी जाने वाली सभी वस्तुओ को मिट्टी मे मिला देने का प्रयत्न किया। +

वस्तुत विवेकान द बुद्ध की चरित्रगत महानताओ से ही प्रभावित हुए थे। बौद्ध धम ने आगे चलकर दाशनिक रूप धारण किया तथा और भी आगे चलकर वह वज्रयान के रूप मे एक भ्रष्ट कमकाण्डपरक ता त्रिक सम्प्रदाय मात्र रह गया। विवेकान द ने इस उत्तरकालीन बौद्धमत को ही भारत की दुदशा का कारण भी स्वीकार किया है। अ यथा बुद्ध की मौलिक शिक्षाये तो उपनिषद् की नीति विषयक धारणाओ पर ही आधारित है। उन्होने स्वय लिखा— बुद्धदेव ने उपनिषदो के नीति भाग के ऊपर खूब जोर दिया था शकराचाय ने उनके ज्ञान भाग के ऊपर अधिक जोर दिया। *

जहा तक बुद्ध के व्यक्तित्व का प्रश्न है विवेकान द की दृष्टि मे वह अद्वितीय और अप्रतिम था। उनकी चारित्रिक श्रेष्ठता का वणन करते हुए उ होने लिखा— चरित्र की दृष्टि से बुद्धदेव ससार मे सर्वापेक्षा महान् हैं। †

---

‡ प्राच्य और पाश्चात्य पृ० १३

× प्राच्य और पाश्चात्य पृ० १५

+ हि दू धम पृ० ३८

* ज्ञानयोग पृ० १५७

† देववाणी पृ० ७७

विवेकानन्द की दृष्टि मे बुद्ध एक महान् कमयोगी थे । उनकी अतुलनीय कमनिष्ठा का उल्लख करत हुए उन्होने लिखा अब अन्त मे सक्षेप मे मैं तुम्ह एक एस व्यक्ति के बारे मे बतलाऊगा जो सचमुच कमयोग की शिक्षाओ को प्रत्यक्ष अमल मे लाये थ । वे कमयोगी थे बुद्धदेव म० बुद्ध को छोडकर अन्य सभी महापुरुषो की नि स्वाथ कम प्रवृत्ति के पीछे कोई न कोई बाह्य उद्देश्य अवश्य था । इतिहास मे मुझे जरा एक ऐसा चरित्र तो दिखाओ जो सबसे ऊपर इतना ऊचा उठ गया हो । सारी मानव जाति ने ऐसा केवल एक ही चरित्र उत्पन्न किया है वास्तव मे वे ही आदश कमयोगी है । पूणरूपरण हेतु शून्य होकर उन्होने कम किया है और मानव जाति का इतिहास यह दिखाता है कि सारे ससार मे उनके सदृश महात्मा और कोई पदा नही हुआ । उनके साथ अन्य किसी की तुलना नही हो सकती । *

इस प्रकार हम देखते है कि विवेकानन्द को बौद्धमत या दशन की अपेक्षा बुद्ध का व्यक्तित्व ही अधिक प्रभावशाली लगता था । बौद्धमत के अनात्मवादी और अनीश्वरवादी दशन की गूढ आलोचना करने की अपेक्षा वे बुद्ध को वेदान्त का मूतरूप कह कर ही सन्तुष्ट हो जाते थ । यद्यपि उनका यह कथन एक भावुकतापूरण उद्गार से अधिक महत्त्व नही रखता परन्तु इसमे भी यदि कुछ सत्यता है तो इतनी ही कि बौद्ध दाशनिक नागाजुन के शून्यवाद की भूमि पर ही मायावाद या ब्रह्मवाद के प्रासाद का निर्माण नवीन वेदान्त के पुरस्कर्ताओ ने किया था । इसमे अन्तर केवल इतना ही था कि जहा बौद्ध लोग सव शून्य का नारा लगाते थे वहा वेदान्ती सव ब्रह्म कह कर जीव और प्रकृति के अनस्तित्व को सिद्ध करने की चेष्टा करते थे । इस दृष्टि से यदि विवेकानन्द बुद्ध को महावदान्तिक कहे तो कह सकते हैं परन्तु यह तो पद्मपुराण के उस वचन को ही प्रकारान्तर से स्वीकार करना है जिसमे मायावादी वेदान्त को

---

* कमयोग प० १४२

प्रच्छन्न बौद्धमत कहा गया है भाव दोनो का एक ही है। चाहे बौद्ध धम को वेदात कहा जाय या वेदात को बोद्धमत कहा जाय।

जहा तक ऋषि दयानन्द का सम्बन्ध है उन्हाने बुद्ध के जीवन और व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे कही स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा। उन्होने बौद्ध दशन की ही आलोचना की क्योकि बुद्ध के पश्चात् बौद्ध दशन की अवदिक अनीश्वरवादी और अनात्मवादी विचारधारा को रोकने का जा प्रयास नयायिका ने किया स्वामी दयानन्द भी उसी पथ का अनुसरण करना प्रशस्त समझने थे।

ईसाई मत की समीक्षा के लिये स्वामी दयानन्द ने सत्याथ-प्रकाश का त्रयोदश समुल्लास लिखा। सम्भवत ऋषि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होने इसाईयत और इस्लाम जसे समेटिक मतो की शास्त्रीय समीक्षा की। उनसे पूव राजा राममोहनराय न भी ईसाई मत के विषय मे बहुत कुछ लिखा था और यह कह देना भी अनुचित न होगा कि ईसाई पादरियो की प्रचारात्मक प्रवृत्तियो के विनाशकारी प्रभाव की ओर उन्होने ही सवप्रथम सकेत किया। ईसाइयत की अनेक मान्यताओ से असहमत होते हुए भी राममोहनराय उसके नतिक मूल्या तथा उसकी आचार सम्बन्धी धारणाओ के प्रशसक थे।*

स्वामी दयानन्द द्वारा की गई ईसाई मत की समीक्षा बाइबिल पर आधारित है। उन्होने बाइबिल के हिन्दी और सस्कृत भाषान्तर के आधार पर इस मत की कुछ आलोचना लिखी हैं। यह समीक्षा बुद्धिवादी एव वज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर लिखी गई है। उन्नीसवी शताब्दी मे वज्ञानिक युग के प्रारम्भ के साथ साथ पाश्चात्य विचारको का ध्यान इसाई मत की मिथ्या भ्रान्तिपूण एव अवज्ञानिक मान्यताओ की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होने बाइबिल के विरोध मे विपुल साहित्य की सृष्टि की। स्वामीजी का

---

* देखो लेखक की पुस्तक—*महर्षि दयानन्द और राजा राममोहन राय के प्रासगिक स्थल।*

यह समीक्षात्मक काय भी अपना पृथक महत्त्व रखता है। भारत मे ईसाई पादरियो की गतिविधियो से वे परिचित थे। हिन्दूसमाज के एक बडे अश को शीघ्रातिशीघ्र ईसाइ बनाने की योजनाय जो उनके समक्ष थी उसका भी ज्ञान उन्हे था। उनका काय जहा सुरक्षात्मक था भोले हिन्दुओ को ईसाइयो के चगुल से सावधान करना था वहाँ ईसाई मत के खोखलेपन को प्रकट कर वे इन मजहबी आक्रान्ताओ से यह स्पष्ट कह देना चाहते थे कि स्वय शीशे के महलो मे रह कर दूसरो पर प्रस्तरवृष्टि करना अच्छा नही है। स्वामीजी को इस काय मे पर्याप्त सफलता मिली।

स्वामी विवेकानन्द ने भी ईसाइयत और उसके प्रवतक ईसामसीह के बारे मे बहुत कुछ लिखा और कहा है (स्वामी दयानन्द ने ईसाई पादरियो से अनेक स्थानो पर शास्त्राथ किये, उन्हे उनसे विचार विनिमय का भी पर्याप्त अवसर मिला। बरेली के पादरी स्काट तो उनके अन्तरग मित्र और भक्त थे।) विवेकानन्दजी को अखिल विश्व धम सम्मेलन मे हिन्दू धम के प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ था। फलत वे ईसाई धम के नेताओ के निकट सम्पक मे आये उनकी काय प्रणाली और सिद्धान्तो एव मतवाद का अध्ययन करने का भी उन्हे अवसर प्राप्त हुआ।

विश्व धम सम्मेलन मे दिये गये अपने एक भाषण मे उन्होने ईसाई मत की इस मान्यता का स्पष्ट खण्डन कर दिया कि ईसाइयत ही विश्व धम है और कालान्तर मे सारा विश्व इसाइयत को स्वीकार कर लेगा अथवा ईसाइयत के प्रति आस्थावान् हुये बिना कोई व्यक्ति मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। उन्होने कहा— 'जो लोग इस सभा की काय प्रणाली का निरीक्षण करने के बाद भी हृदय मे इस प्रकार की भावना रक्खगे कि कोई विशेष धम समय पाकर जगत् का एकमात्र धम हो जायगा अथवा कोई विशेष धम ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय है और दूसरे धम भ्रान्त है वे वास्तव मे दया के पात्र हैं।'* यह कटाक्ष स्पष्ट ही ईसाई मत की तथाकथित सावभौमता

---

* विवकानन्द चरित प० १६४

(Universality) को लक्ष्य मे रख कर किया गया था। ईसाइया का यह 'विश्वास कि काइ व्यक्ति तब तक अच्छा और भला नही बन सकता जब तक कि वह ईसाई न बन जाये उनका सावजनिक उदारता का पर्दा फाश कर देता है। विवेकान द ने अ यत्र यही तो लिखा ईसाई भा सावजनिक भ्रातृभाव की बात करते है। कि तु जो इसाई नही हैं उसके लिये अन त नरक का द्वार खुला है। *

विवकान द ने यह लक्षित किया था कि ईसाई धम ग्र थो म भी उसी प्रकार की मिथ्या कपोलकल्पित पौराणिक किवदन्तिया हैं और उनके मत के और विश्वास भा उसी प्रकार साम्प्रदायिकता के रग मे रगे हुये है जिस प्रकार पौराणिक हि दुओ के। ऐसी स्थिति म उनका सनातनी हि दुओ के मत विश्वासो की खिल्ली उडाना कहा तक यायोचित कहा जा सकता है? एक स्थान पर वे लिखत है— ईसाई लोग कहत है कि ईश्वर मेन्ट के रूप मे आया तब तो ठीक था पर यदि ईश्वर गाय क रूप म आता है जसा हि दू लोग मानते है तो वह बिल्कुल गलत और मिथ्या विश्वास है। † स्वामा दयान द ने भी अपना ईसाई मत समालोचना मे ईसाइयो के इस भ्रम का तीव्र खण्डन किया कि व अपने इन मूखता पूण विश्वासो को रखते हुये भी यदि हि दुओ की सनातनी विचारधारा की आलोचना करते हैं तो यह उनका दम्भमात्र ही है।

ईसाइयत के प्रति इस प्रकार की बुद्धिप्रधान और तकपूण धारणा रखने हुये भी ईसा के व्यक्तित्व के प्रति विवेकानन्द के हृदय मे गहरी निष्ठा थी। वस्तुत जिस युग मे मसीह उत्पन्न हुये थे उस समय लोगो मे क्रूरता शत्रुता हिसा और परपीडन के तामसी भावो का प्राधान्य था। यहूदी मत विश्वासी लोगो की आस्थाय जडता और मूखता का चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। ऐसे समय म जब कि मानव मानव का शत्रु बन कर उसके रक्त का प्यासा

---

* धमरहस्य पृ० २४

† प्रमयाग पृ० ७३

बन रहा था ईसा ने एशिया माइनर मे करुणा प्रेम और भ्रातृभाव की पावन मदाकिनी प्रवाहित की। विशेष विद्वान् न होते हुये भी उनकी हार्दिक सरलता ने लोगा को उनकी ओर आकृष्ट किया। फलत ईसा की शिक्षायें वेगवती नदी की तरह विरोधी शक्तियो की उपेक्षा करती हुई उस अधमरुस्थल भूमि मे तीव्र गति से प्रसार पाने लगी।

विवेकानन्द के लिए ईसा का यक्तित्व अत्यन्त आकषक था। इस आकषण की तीव्रता मे उन्होन उस स्वरूप को भी सर्वात्मना स्वीकार कर लिया जो कालान्तर मे ईसाई मतवाद की भित्तिस्वरूप प्रतिष्ठित हुआ था तथा जिसमे अनक अलौकिक चमत्कारो का मिश्रण हो चुका था। ईसाइया की यह प्रसिद्ध मान्यता है कि ईसा ईश्वरपुत्र थे। उनका यह दवीकरण उनके ईश्वरपुत्रत्व तक ही सीमित नही रहता। एक पग आगे बढकर वे स्वय ईश्वर बन जाते हैं। इस स्थिति मे पिता और पुत्र का अन्तर मिट जाता है और पुत्र ही पिता हो जाता है। चमत्कारप्रियता के वशीभूत होकर ही यह कहा गया कि ईसा मरने के पश्चात् जीवित हो गये कब्र से उठ कर आसमान मे चले गये। अन्धविश्वासी भक्ता को ईसा का यही रूप प्रिय है उसी प्रकार जिस प्रकार पौराणिक हिन्दू राम और कृष्ण के मानवी स्वरूप और चरित्र का प्रत्याख्यान करते हुए उनकी अलौकिक लीलाओ मे विश्वास करते है।

हम भावक भक्तो की बात नही करते। परन्तु यहा तो हमे विवेकानन्द भी उसी भावक टोली मे सम्मिलित होकर ईसा की अलौकिकता का प्रतिपादन करते दीख पडते हैं। उन्होने ईसा के ईश्वर को घोषणा की— ईश्वर ने ईसा होकर जन्म लिया। * वे यह भी मानते हैं कि ईसा मे अलौकिक शक्तिया थी। ईसा बुद्ध राम कृष्ण आदि के समान अवतार पुरुष ही धम दे सकते है। वे दृष्टिमात्र अथवा स्पशमात्र से ही दूसरो मे धम की शक्ति का

---

* देववाणी पृ० ४०

सचार कर सकत हैं।'* यह तो है ईसा के ईश्वर होने का प्रतिपादन। अब वे उसक ईश्वर पुत्रत्व और उस पर विश्वास लाये जाने पर मुक्ति प्राप्त हाने का भी प्रतिपादन करते हे। ईशदूत ईसा नामक एक लेख म उन्होने लिखा इसी महापुरुष (ईसा) ने कहा है—किसी भी व्यक्ति ने ईश्वरपुत्र क माध्यम बिना ईश्वर का साक्षात्कार नही किया है। और यह कथन अक्षरश सत्य है। †

यदि काई व्यक्ति ईश्वरीय आदशो के मूर्तिमान प्रतीक इन महापुरुषा की ईश्वरवत् उपासना करे तो विवेकान द इसमे कोई दोष नही देखत। उन्हान कहा आदश के विग्रह स्वरूप इन महापुरुषा ने ईश्वर की साक्षात् उपलब्धि कर अपने महान् जीवन का जो आदश जो दृष्टान्त हमारे सम्मुख रक्खा ह ईश्वरत्व की उससे उच्च धारणा करना असम्भव है। इसलिये यदि काई इनको इश्वर के समान अचना करे, ता उसम क्या अनौचित्य हे? ‡ यहा तो विवेकान द न यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया कि ईश्वरत्व का आदश मनुष्य मे ही सवतोभावेन प्रतिफलित होता है अत महापुरुषा की पूजा ही ईश्वराचन का एक मात्र प्रकार है। स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण से यह कथन सम्पूण-रीत्या सत्य नही हो सकता। मानव अपूण है और ईश्वर पूण है। यदि मानव को ही भगवान् मान ले तो फिर आस्तिकता का प्रयोजन ही कहा रहेगा? फिर प्रत्येक मनुष्य म चाहे वह कितना ही महान् क्यो न हो कोई न कोई त्रुटि तो रहेगी ही। अत वीरपूजा (Heroworship) के औचित्य को स्वीकार करत हुये भी हम उसे परमात्मपूजा (Godworship) का स्थानापन्न नही बना सकते। परन्तु विवेकानन्द का आग्रह स्पष्ट है। वे ईसा को महापुरुष के रूप मे न देखकर ईश्वर के रूप मे देखने के लिये ही लालायित है। तभी तो वे लिखते

---

* देववाणी प० ४६

† ईशदूत ईसा प० ३

‡ वही प० ४

है— यदि एक प्राच्यदशीय के रूप में मैं नाजरथ निवासी ईसा की उपासना करूं तो मेरे लिये ऐसा करने की केवल एक ही विधि है—और वह है उसकी ईश्वर के समान आराधना करना। * यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि विवेकानन्द का भी केशवचन्द्र सेन की तरह ईसा के प्रति आकृष्ट होने का एक कारण उसका एशिया निवासी होना भी था।

भावकता के इसी आवेश ने जहाँ विवेकानन्द को ईसा का ईश्वरत्व प्रतिपादित करने के लिये बाध्य किया वहाँ वे उसकी मृत्यु और उसके पुनरुज्जीवित होने विषयक प्रवाद को भी पूर्ण सत्य मान बैठे। रावण द्वारा हरी जाने वाली छायामयी सीता की तरह ही उन्होंने छाया पुरुष ईसा की कल्पना की। वार्तालाप के एक प्रसंग में उन्होंने कहा ईसा तो ईश्वरावतार थे। लोग उनकी हत्या नहीं कर सकते थे। उन्होंने जिसे Cross (शूली) पर विद्ध किया था वह तो उनकी छायामात्र थी मृगतृष्णा जैसी भ्रांतिमात्र थी। † हम नहीं कह सकते कि आज के इस युग में विवेकानन्दजी की इस बात को कौन सत्य मानेगा? हमें तो इसमें भी सन्देह है कि ईसा की इस छायामयी मूर्त्ति की कल्पना को स्वयं ईसाई भी सत्य मानते हैं। किसी महापुरुष में श्रद्धा की अतिशयता विचित्र रूप धारण कर लेती है और उसके विषय में अतिरंजना पूर्ण कल्पनायें प्रसारित हो जाती हैं। एक सामान्य जन में यदि ऐसे विश्वास हों तो वह समझ में आने की बात है परन्तु एक ऐसा व्यक्ति जो विचार के अन्य क्षेत्रों में युक्ति और बुद्धि का पूर्णतया आश्रय लेकर चलता है वह श्रद्धा और भावना के क्षेत्र में उन्हें पूर्णतया बहिष्कृत कर दे यह समझ के बाहर की बात है। परन्तु विवेकानन्द की विचार-सरणि में यह विरोध एक नितान्त साधारण बात है क्योंकि हम इसी समय यह भी देखते हैं कि जिस ईसा के दैवीकरण (Divinity) का विवेकानन्द ने सर्वात्मना

---

* ईशदूत ईसा पृ० १७

† विवेकानन्दजी से वार्तालाप पृ० १२०

अंगीकार कर लिया था जो उसके ईश्वरत्व का पदे पदे प्रतिपादन करते हुए उससे सम्बंधित अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों का समर्थन करते थे वहीं विवेकानन्द अन्यत्र ईसा के मनुष्य होने का स्पष्ट उद्घोष कर रहे हैं। केवल मनुष्य ही नहीं वे तो उन्हें अपूर्ण मानव मानते हैं जिनके व्यक्तित्व में स्वयं उद्घोषित आदर्शों की चरम परिणति नहीं दीख पड़ती। प्रमाण लीजिये। ईसामसीह मनुष्य थे, इसलिये वे जगत् में अपवित्रता देख पाते थे। * ईसा हम लोगों के समान मनुष्य प्रकृति सम्पन्न थे। †

विवेकानन्द ईसा को केवल मनुष्य ही नहीं अपूर्ण मनुष्य मानते थे। इसी पुस्तक में उन्होंने अन्यत्र लिखा ईसा मसीह असम्पूर्ण थे क्योंकि उन्होंने जिस आदर्श का प्रचार किया उसके अनुसार सम्पूर्ण भाव से उन्होंने जीवनयापन नहीं किया और सर्वोपरि बात तो यह है कि उन्होंने नारी जाति को पुरुष के तुल्य अधिकार नहीं दिया। ‡ ईसा की जिन अलौकिक शक्तियों को अन्यत्र उन्होंने सत्य बताया उन्हीं का प्रत्याख्यान करते हुये वे लिख गये कि ये शक्तियाँ और चमत्कार उनके गंवार और असंस्कृत होने का प्रमाण है। प्रेमयोग में उन्होंने लिखा ईसामसीह की जो शक्तियाँ उनके चमत्कारों में और आरोग्य प्रदानों में दीख पड़ती हैं वे यथार्थ में क्या थीं ? ये तो तुच्छ गंवारी असंस्कृत त्याज्य चीज थी। और वे इन्हें किये बिना नहीं रह सकते थे क्योंकि वे असंस्कृत मनुष्यों के बीच रहते थे। ×

ईसा के विषय में विवेकानन्द की इन पूर्वापर विरुद्ध बातों को देखकर हम सहज ही अनुमान नहीं लगा सकते हैं कि उनका वास्तविक मत क्या था ?

---

* देववाणी पृ० ८६

† देववाणी पृ० ८६

‡ देववाणी पृ० १६५

× प्रेमयोग पृ० ५२

ऋषि दयानन्द ने भी ईसा के जीवन व्यक्तित्व तथा चरित्र के विषय में बहुत कुछ लिखा है परन्तु वह स्वतन्त्र रूप से न होकर बाइबिल की आलोचना के प्रसंग में ही है। भावुकता के वश में होकर कुछ का कुछ लिख जाना तो उनके स्वभाव के ही विरुद्ध था। सत्यार्थप्रकाश के १३ वें समुल्लास में मत्ती रचित इञ्जील† की समीक्षा करते समय स्वामीजी ने ईसा के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। मत्ती की इञ्जील ही ईसा के जीवन और उपदेशों का प्रामाणिक ब्यौरा उपस्थित करती है। इस इञ्जील की प्रथम आयत में‡ ही ईसा के कुमारी मरियम से उत्पन्न होने की कथा आई है। इञ्जील बनाने वाले ने लिखा कि मरियम और यूसफ की मंगनी हुई परन्तु विवाह से पूर्व ही मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती हो गई। फलत ईसा का जन्म हुआ। इस पर टिप्पणी करते हुए दयानन्द ने जो कुछ लिखा उसका यही अभिप्राय है कि कुमारी कन्या के पुत्र उत्पन्न होना उसके व्यभिचारजन्य होने का सूचक है, क्योंकि मनुष्य यदि स्वकृत पाप को छिपाने के लिए परमात्मा को उत्तरदायी ठहरावे तो यह अनुचित है। अगर पवित्र आत्मा मरियम को गर्भवती करता है और ईसाई इस बात को मानते है तो वे पुराणकथित इस गाथा को सत्य क्यों नहीं मानते कि सूर्य ने अपनी शक्ति से कुन्ती को कौमार्यावस्था में गर्भवती कर पुत्र प्रदान किया। यह सब लिखने पर भी स्वामी दयानन्द ने इसके लिये ईसा की निंदा नहीं की क्योंकि जारज पुत्र को उत्पन्न करने में माता-पिता का दोष होता है संतान तो औरस पुत्र की तरह ही निर्दोष है। गुण कर्म के अनुसार मनुष्य की महत्ता का निश्चय करने वाले दयानन्द जैसे व्यक्ति से यह आशा भी कैसे रखी जा सकती थी कि वे केवल जन्म दोष से ही किसी व्यक्ति को दोषी ठहरा देते ? दयानन्द कृत आलोचना के निष्पक्ष और पूर्वाग्रह मुक्त होने का यह सबसे बड़ा प्रमाण है।

---

† *सत्यार्थप्रकाश मे उद्धृत*

‡ *सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८२*

यहाँ इतना स्थान नही है कि हम मत्ती रचित इञ्जील की समीक्षा के प्रसग म आने वाले ईसा के चरित्र की आलोचना का विस्तृत अध्ययन उपस्थित कर सक। सक्षप मे ईसा के विषय मे स्वामीजी की धारणा (जो उन्होन इञ्जील के आधार पर ही बनाई) को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।

१ ईसा ईश्वर का वटा नही था और न उसमे कुछ करामात या सिद्धि ही थी। आ० स० ६१

२ ईसा ने एक नवीन मत चलाया। आ० स० ६२

३ ईसा द्वारा चमत्कार प्रदर्शित करने रोगियो को चगा करने कोढियो को शुद्ध करने आदि की सारी बाते कपोल कल्पित और मिथ्या है। (आ० स० ६२ ६८) ईसा को सूली दी गई और उसका नितान्त करुणापूण अन्त हुआ। स्वामीजी न उसके प्रति किये गये इस क्रूर यवहार की निंदा की है और निष्कष रूप म लिखा है कि यीशु उस समय के जगली मनुष्यो मे कुछ अच्छा था न वह करामाती था न ईश्वर का पुत्र और न विद्वान् था क्योकि जो ऐसा होता तो वह ऐसा दु ख क्यो भोगता ?' *

जहा तक ईसा के ईश्वर या ईश्वर के अवतार होने का सम्ब ध है स्वामी जी इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार करते हैं। उन्होने तो बाइबिल के एक दो प्रसग ऐसे भी उद्धत किये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि ईसा अपने आपको परमात्मा कहलाना पस द नही करता था परन्तु इसके विषय मे उसका कोई स्पष्ट मत न होने कारण उसके ईश्वर पुत्र होने का प्रवाद बल पकडता रहा और वही उसकी मृत्यु का कारण बना। मत्ती की एक आयत हर एक जो मुझे प्रभु कहता है स्वग के राज्य मे प्रवेश नही करेगा उद्धत करने के अनन्तर स्वामीजी लिखते हैं— अब विचारिये बडे बडे पादरी बिशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझे तो ईसा को प्रभु

---

* सत्याथप्रकाश पृ० ६६८

अर्थात् ईश्वर कभी न कहे।' † इसी प्रकार लूकरचित इञ्जील उद्धृत करते हैं— याशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है कोई उत्तम नहीं है अर्थात् ईश्वर इस आयत की समीक्षा में लिखते हुये स्वामीजी कहते हैं कि जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसाइयों ने पवित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहां से बना दिये। ‡

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने ईसा के व्यक्तित्व के बारे में जो कुछ लिखा वह प्रमाणपुरस्सर लिखा। भावुकता और अतिरंजना से दूर रह कर ही उन्होंने अपना मत सुस्पष्ट और निस्संकोच भाव से व्यक्त किया। विवेकानन्द की तरह पूर्वापर विरोध के तो उनकी रचना में कहीं दर्शन भी नहीं होते। शंकर और कुमारिल की वैदिक परम्पराओं को पुनरुज्जीवित करने वाले संन्यासी से यही आशा भी रखी जाती है।

ईसा और ईसाइयत के विषय में दोनों आचार्यों के विचार जानने के अनन्तर हमें इस्लाम के विषय में उनकी सम्मति जाननी चाहिये। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश का अंतिम समुल्लास इस्लाम की समीक्षा के रूप में ही लिखा है। कुरान के हिंदी अनुवाद के आधार पर यह आलोचना लिखी गई है। इस्लाम और ईसाइयत दोनों के मूल सूत्र यहूदी मत में उपलब्ध होते हैं अतः अनेक बातों में दोनों में समानता है। फिर भी यदि एक वाक्य में इस्लाम की विशेषता बतलाई जाय तो उसके पवित्र वाक्य कलमा को देख लेना ही पर्याप्त है। परमात्मा एक है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है। संक्षेप में ईश्वर की एकता और मुहम्मद का पैगम्बर होना मानना ही इस्लाम का मूलाधार है। इस्लाम की प्रशंसा का एक कारण है उसके अनुयायियों में परस्पर प्रेम भाव। संसार के सभी मुस्लिम एक ही विश्वास सूत्र में बंधे होने के कारण परस्पर बंधुत्व भाव का अनुभव करते हैं।

---

* सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८३

‡ वही

सम्भवत मुसलमानो मे परस्पर पाई जाने वाली इस ऐक्यभावना के कारण ही विवेकानन्द ने एक मुस्लिम युवक मुहम्मद सरफराजहुसन को पत्र लिखते हुए इस्लाम मे विद्यमान मानव मानव की एकता की प्रशसा करते हुए उसे वेदान्त की भावना के अत्यन्त निकट पहुँचा हुआ बता दिया था। इस पत्र मे उन्होने लिखा हमारी यह अभिज्ञता है कि अपने नित्य प्रति के जीवन मे यदि किसी धर्म के अनुयायी इस एकत्व के बहुत कुछ समीप पहुँचे हो तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुगामी ही हैं। * क्या विवेकानन्द का यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नही है? तथ्य तो यह है कि यद्यपि मुस्लिम धर्मानुयायी अपने सहधर्मी के प्रति अवश्य ही भ्रातृत्व का व्यवहार करते है परन्तु इतिहास बतलाता है कि अन्य धर्मावलम्बियो के प्रति उनका व्यवहार नितान्त असहिष्णु रहा है। इस्लाम के प्रचार के इतिहास के रक्तरजित पृष्ठ तो कम से कम यही साक्षी देते हैं। अत इसी पत्र मे व्यक्त की गई विवेकानन्द की यह धारणा कि बिना इस्लाम की सहायता के वेदान्त के तत्त्वो का कोई मूल्य नही † हमे नितान्त अतिरजित प्रतीत होती है। यदि इस्लाम के बिना वेदान्त अधूरा ही है तो शकर आदि उन वेदान्ताचार्यों की क्या गति होगी जिनका सम्पूर्ण जीवन ही वेदान्त विचार मे व्यतीत हुआ परन्तु जो इस्लाम के तत्त्वो से अनभिज्ञ थे अथवा उनके समय मे तो इस्लाम का जन्म ही नही हुआ था।

सम्भव तो यही प्रतीत होता है कि उस वैयक्तिक पत्र मे विवेकानन्द ने ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं जो उस मुस्लिम बन्धु को प्रिय लगने वाले हो क्योकि अन्यत्र हम देखेंगे कि विवेकानन्द ने अन्यान्य प्रसगो मे इसके अत्यन्त प्रतिकूल विचार भी इस्लाम के लिये प्रकट किये हैं। अत इस पत्र मे उनका यह लिखना कि अपनी मातृभूमि के लिये हिन्दू धर्म और इस्लाम—इन दो

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १६३

† पत्रावली भाग १ पृ० १६४

महाधर्मों का वेदान्तिक मस्तिष्क और इस्लामीय शरीर का सम्मेलन ही एक मात्र आशास्थल है † केवल अर्थवाद मात्र ही समझा जाना चाहिये। चाहे ऐसे वाक्य शिष्टाचारवश ही क्यो न लिखे गये हो परन्तु यह तो कोई औचित्य की बात नही है कि हम किसी व्यक्ति या समूह का प्रसन्न रखन के लिये अपनी निसर्गसिद्ध अच्छाइयो का बलिदान कर दें। विवेकानन्द ने तो यही किया। एक अन्य पत्र मे उन्होने वेदान्त और इस्लाम की तुलना करते हुये लिखा हमे यह दृढ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यो न हो परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता क बिना मूल्यहीन हैं। * अच्छा तो तब होता यदि यह गोल मोल बात लिखने की अपेक्षा पत्र लेखक यह खुलासा बतलाता कि व्यावहारिक इस्लाम या इस्लाम की व्यावहारिकता से उसका क्या तात्पर्य है और वेदान्त के उदार और विलक्षण सिद्धान्त उसके अभाव मे क्यो मूल्यहीन है ?

यह तो चित्र का एक पहलू है जिसमे इस्लाम के भ्रातृभाव और उसकी ऐक्य भावना की प्रशंसा के गीत गाये गये हैं। अब दूसरा पक्ष भी देखिये। शायद यही सत्य है क्योकि इतिहास के तथ्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। इस्लाम के थोथे भ्रातृभाव और उसकी तथाकथित सार्वभौमता की आलोचना करते हुए विवेकानन्द लिखते हैं मुसलमान सार्वजनीन भ्रातृभाव का शोर मचाते हैं किन्तु वास्तविक भ्रातृभाव से वे कितनी दूर है ? जो मुसलमान नही हैं वे भ्रातृसंघ मे शामिल नही किये जायेंगे। उनके गले काटे जाने की ही अधिक सम्भावना है। ‡ वस्तुत इस्लाम के प्रचार का रहस्य उसकी आक्रामक मनोवृत्ति और बलपूर्वक धर्म परिवर्तन मे ही छिपा है। काफिरो को कत्ल कर देने की आज्ञा भुलाई नही जा सकती चाहे मौलाना आजाद जैसे कुरान के

---

† *पत्रावली भाग १ पृ० १६४*

* *पत्रावली भाग २ पृ० २१०*

‡ *धर्म रहस्य पृ० ४३*

भाष्यकार ऐसे वाक्या के अथ लगाने म कितनी ही खीचातानी क्यो न करे ? इतिहास भी तो यह बतलाता है कि इस्लाम क खलीफा एक हाथ मे कुरान और दूसरे हाथ म तलवार लेकर यही तो कहते थे या तो मुसलमान धम ग्रहण करो नहा ता मौत को अपनाओ, दूसरा उपाय नही है । *

सत्याथप्रकाश के चतुदश समुल्लास म ऋषि दयान द ने इस्लाम की आलोचना के प्रसग मे समीक्षा स० ३५ के अ तगत कुरान की आयत उदधृत करन के अन तर जो कुछ लिखा है वह भी यही सिद्ध करता है कि अ य धर्मावलम्बिया के प्रति मुसलमान लोग निता त असहिष्णु रहे हैं । स्वामीजी की आलोचना इस प्रकार है— जो कुरान मे एसी बाते न होती तो मुसलमान लाग इतना बडा अपराध जो कि अ य मतवालो पर किया है न करत और विना अपराधा का मारना उस पर बडा पाप है जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उसको कुफ्र कहते है अर्थात् कुफ्र से कतल को मुसलमान लोग अच्छा मानते है अर्थात् जा हमारे दीन को न मानेगा उसको हम कतल करेग सो करते ही आय । मजहब पर लडते लडते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गय और उनका मत अ य मत वालो पर अति कठार रहता है । †

हम यह पूव ही सकेत कर चुके है कि ईसाइयत और इस्लाम दोनो समेटिक धम हैं जिनका मूल यहूदी धम है । अत इन दोनो के अधिकाश मत विश्वास और धारणाय लगभग समान हैं । विवेकान द ने इन समेटिक मज़हबा की आलोचना मे बहुत कुछ बातें कही हैं । स्वामी दयान द के सत्याथप्रकाश के १३ वे और १४ वें समुल्लास मे इन बातो के समाना तर ही बहुत कुछ कहा गया हैं । निम्न उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जायगा ।

बाइबिल और कुरान मे सृष्टि रचना विषयक जो मत यक्त किया गया है वह अभाव से भाव की उत्पत्ति मानता है । उसके अनुमार शू य से सृष्टि की

---

* धम रहस्य प० ८५

† सत्याथप्रकाश प० ७४२

उत्पत्ति हाता है। जीवात्मा का स्वत त्र अस्तित्व भी यहा स्वीकार नही किया गया है। ईश्वर भी एक तानाशाह बादशाह के समान है जो क्तु अकतु अ यथाकतु शक्ति वाला हे। विवेकान दजी ने समेटिक मतो की इन धारणाओ का उल्लेख करत हुए एक पत्र मे लिखा शू य से जगत् की उत्पत्ति आत्मा का सृजित होना इश्वर वह बडा स्वेच्छाचारी बादशाह है जो स्वग नामक स्थान मे सिहासन पर बठा हुआ है और अन त नरकाग्नि—ऐसी-ऐसी कल्पनाओ से भी शिक्षित लोगा का जी ऊब गया है। *

महर्षि दयान द कृत समीक्षा भी इसी सरणि पर चलती है। सवप्रथम अभाव से भाव की उत्पत्ति की आलोचना करते हुय लिखत है— समीक्षक—अभाव स भाव को क्यो मानत हा ?

इसाई—सृष्टि के पूव ईश्वर के बिना कोई वस्तु नही थी। समीक्षक—जो नही थी तो यह जगत् कहा से बना ? † १४ व समुल्लास मे भी प्रकारा तर से यही बात लिखी जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूव सिवाय खुदा के कोई भी दूसरी वस्नु न थी तो यह ससार कहा से आया ? बिना कारण के कोई भी काय नही होता तो इतना बडा जगत् कारण के बिना कहा से हुआ। ‡ इसी प्रकार ईश्वर के समेटिक स्वरूप की समीक्षा तथा जन्नत और दोजख के कुरान निर्दिष्ट स्वरूप के विषय मे भी स्वामी दयान द ने अपना स्पष्ट मत इ ही पृष्ठो मे व्यक्त किया है। विस्तारभय से उसे हम उद्धृत नही करते।

समेटिक मतो के अनुसार स्वग और नरक अन त भोगा और अन त कष्टो के स्थान हैं। विवेकान द का यह कथन देखिये— ईसाइयो की स्वग के बारे मे ऐसी धारणा है कि वह एक अत्यधिक भोगो का स्थानमात्र है। × कुरान

---

* *पत्रावली भाग १ पृ० १२४*

† *सत्याथप्रकाश १३ वा समुल्लास पृ० ६३२*

‡ *सत्याथप्रकाश १४ वा समुल्लास पृ० ६१७*

× *देववाणी पृ० १८८*

और बाइबिल के स्वर्ग में कुछ अधिक अन्तर नहीं है। समटिक विश्वास के अनुसार इस स्थान पर सभी प्रकार के भोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। स्वामी दयानन्द का भी यह मत है "भला यह कुरान का बहिश्त संसार से कौनसी उत्तम बात वाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं। †

दोनों आचार्यों की आलोचना शैली में भी अद्भुत समानता मिलती है यह दिखाने के लिये एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—बाइबिल की समीक्षा सं० ६५ में स्वामी दयानन्द ने यह आयत उद्धृत की है—हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। इसकी समीक्षा में वे लिखते हैं— इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ था उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था इसीसे तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता है। ‡ अब विवेकानन्दजी की समीक्षा पढ़िये तो आपको विदित हो जायगा कि बाइबिल की इस प्रकार की उक्तियों को उन्होंने भी हास्यास्पद ही समझा है। वे लिखते हैं भारतवर्ष में अगर कोई ऐसी प्रार्थना करे हे प्रभो आज के दिन हम हमारी हर रोज की रोटी दो तो लोग उस पर हँसेंगे। इसी प्रकार किसी दूरस्थ स्वर्ग में निवास करने वाले समेटिक ईश्वर के बारे में वे लिखते हैं हे पिता जो तू स्वर्ग में रहता है इसके समान दूसरी मूर्खता की कल्पना तो हिन्दुओं की दृष्टि में हो ही नहीं सकती। * इन आलोचनाओं की स्पष्टता पर और कुछ लिखना अनावश्यक है।

समेटिक मतों के अध्येताओं से यह बात छिपी नहीं है कि इस्लाम और ईसाइयत दोनों ही मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी हैं। ईसाई लोग तो फिर भी

---

† सत्यार्थप्रकाश पृ० ७०९

‡ सत्यार्थप्रकाश पृ० ६६७–६८

* आत्मानुभूति और उसका मार्ग पृ० २८

ईसा और उसकी माता मरियम की मूर्त्ति पूजते देखे जाते हैं परन्तु इस्लाम प्रत्येक प्रकार की मूर्त्तिपूजा का तीव्र विरोध करता है। इस्लाम के दीवाने अनुयायियो के मूर्त्ति विरोधी अभियान से भारतवासी तो अच्छी तरह से परिचित ही है। परन्तु क्या इन तथाकथित मूर्त्तिभजको ने कभी अपने हृदय म यह साचा है कि काबा की ओर मुह कर नमाज पढना और हज यात्रा म जाने पर सग असबद को चूमना क्या निकृष्ट कोटि की मूर्त्तिपूजा नही है। विवेकानन्द ने मुसलमाना की धारणा की कटु आलोचना करते हुये यह लिखा है कि स्वय ऐसा करते हुये भी यदि वे अन्य धर्मावलम्बिया की मूर्त्तिपूजा सहन न करें तो इसे पूर्वाग्रह के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? वे लिखते हैं— इसी प्रकार मुसलमान समझते हैं कि नमाज के समय यदि काबा का काला पत्थर वाले मन्दिर की एक आकृति अपने मन मे लाने का प्रयत्न कर और पश्चिम की ओर अपना मुह कर ले तो बिल्कुल ठीक हैं पर यदि चच के आकार वाली मूर्त्ति बनी हो तो वह बुत परस्ती है। †

स्वामी दयानन्द ने भी चतुदशसमुल्लास मे काबे की ओर मुह कर नमाज पढने का बडी बुतपरस्ती बताया है और पौराणिक हिन्दुओ की मूर्त्तिपूजा से इस्लामी काबापरस्ती की तुलना करते हुये लिखा है— जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन उन मूर्त्तियो को ईश्वर नही समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि तुम बुतो को तोडनेहारे हो तो उस मसजिद किबले के बडे बुत को क्यो न तोडा? तुममे और इनमे बुतपरस्ती का कुछ भिन्न भाव नही हैं। तुम बडे बुतपरस्त हो और ये छोटे है क्योकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर मे से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उसके घर मे ऊट प्रविष्ट हो जाय वसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बुत को मुसलमानो के मन से निकाला परन्तु बडा बुत जो कि पहाड सदृश मक्के की मसजिद है वह सब मुसलमानो के मन मे प्रविष्ट करा दी, क्या यह छोटी

---

† *प्रेमयोग* पृ० ७३

बुतपरस्ती है। * हमे यहा विवकान द और दयान द के दृष्टिकोण म कोई अ तर प्रतीत नही हाना। फक केवल इतना ही है कि स्वामी दयान द न पौराणिक हि दुआ पर होने वाले इस्लामा प्रहार का रोका है और विवकान द ने ईलाई चर्चो पर होने वाले प्रहार का अ यथा दोनो की युक्तियाँ सवाश मे समान ही है और दयान द के विवकान द से पूववर्ती हाने के कारण यह निता त स्वाभाविक जान पडता है कि उ हान यह तक स्वामी दयान द से ही लिया होगा।

ईसाइयत और इस्लाम विषयक विचारा के इस तुलनात्मक अध्ययन को उपसहार की ओर ले जात हुय हम यह देख कि इन मजहबो की उत्पत्ति उनकी सामयिक उपयागिता उनके छिछले और अपर्याप्त दाशनिक विचारो आदि के विषय मे लगभग समान सम्मति रखते हुये भी उनके प्रति बनाये गये दृष्टिकोण मे दानो आचार्यों का विरुद्ध मत है। दयान द की दृष्टि से इस्लाम और ईसाइयत का भारत मे प्रचार अनावश्यक और अनुपयुक्त ही नही हि दू जाति की दुवल सगठनात्मक शक्ति को देखते हुये हानिकारक भी है। अत उ होने मुसलमान और ईसाइयो के प्रति वयक्तिक विरोध के भाव पदा न करते हुये भी इस हानिकारक लहर का रोकने की चेष्टा की। इसके लिये उ होने क्या क्या विधेयात्मक और सुरक्षात्मक काय किय उनका मूल्याकन तो किसी अ य प्रसग म किया जाना चाहिये पर तु यह अत्य त स्पष्ट हैं कि सभी विचारको ने स्वामी दयान द और आयसमाज के एतद् विषयक काय को महत्त्वपूण बतलाते हुये उसका प्रशस्तिगान किया है।

यह अवश्य है कि इस्लामी कट्टरता के कारण कही-कही यह विशुद्ध विचार और शास्त्राथ का विषय पारस्परिक वमनस्य और कटुता उत्पन्न कर साम्प्रदायिक उपद्रवो का कारण बन जाता था पर तु इसके लिए उस शास्त्राथ प्रणाली और विचार विनिमय शली को उतना दोषी नही ठहराया

---

* सत्याथप्रकाश पृ० ७१६

ज। सकता जितना इस्लाम की अपन मत विषयक कट्टरता और असहिष्णुता के भाव को। स्वामी दयानन्द के मित्रा मे इसाई और मुसलमान विद्वाना और नताओ के अनेक नाम उल्लेखनीय हैं। पादरी स्काट की चचा हो चुकी है। सर सयद अहमदखा उनके मित्र और प्रशसक थे यह बात भी किसी से अविदित नही है।

तब प्रश्न रह जाता है कि हिन्दू लाग इन मतो के बारे मे कौन सा दृष्टिकोण अपनाय और उनका व्यवहार कसा हो ? यह तो एक स्पष्ट बात है कि **समानशील-व्यसनेसु सख्यम्** ' मित्रता समान विचारधारा के लोगा मे ही होती है पर तु यह भी आवश्यक नही है कि एक देश मे रहने वाले शताब्दियो से एक दूसरे के ससग मे रहकर जीवन व्यतीत करने वाले केवल धम और विश्वास की भिन्नता के कारण ही शत्रवत् व्यवहार करते रहे। दयान द के कथन का कोई यह अथ निकालने की गलती न करे। परन्तु उनके कथन का अभिप्राय दूसरा है। हम अन्यो की तुलना म अपने मे हीन भावनाओ को न आन दें अपनी जातिगत और समाजगत सुरक्षा और सगठन को पूरा महत्त्व दे और विश्वबधुत्व और मानवमात्र क प्रति प्रेम और भ्रातृभाव को साकाररूप प्रदान करत हुये आदश व्यक्तियो की तरह जीवनयापन कर। उन्होने जो अन्या य धर्मो मतो और सम्प्रदायो की आलोचना की है उसका तात्पय भी यही है कि लोग परस्पर मिलकर बठे और प्रेमपूवक विचार के द्वारा अपने धार्मिक मतभेदो की चर्चा करें। उन्हे अपने मत मे जो दोष दीख पडे उन्हे निष्पक्ष होकर छोडने का साहस दिखलावें और अन्यो के गुणो को ग्रहण करने मे तत्पर रहे। उनकी ये आलोचनायें इसी उद्देश्य को लेकर लिखी गई हैं। अत ईसाई और मुसलमानो के विषय मे हिन्दू लोग व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाये यही उनका लक्ष्य था।

इसके विपरीत विवेकानन्द के इस कथन मे हमे कोई औचित्य नही दिखलाइ पडता जब वे लिखते हैं वे (ईसाई मुसलमान) हमे चाहे जितनी घृणा की दृष्टि से देखें चाहे जितनी पशुता दिखायें चाहे जितनी निष्ठुरता

दिखायें अथवा अत्याचार कर—जैसा कि वे हमारे साथ किया करते हैं और हमारे प्रति चाहे जसी कुत्सित भाषा का प्रयोग कर, पर हम ईसाइयो के लिये गिर्जे और मुसलमानो के लिये मसजिदें बनवाना नही छोडे गे। * मैं नही समझता इस सबका क्या अथ है ? क्या यह भावुकता का प्रलाप तो नही है ? ऐसा दीख पडता है कि वक्ता विगत इतिहास से भी कोई शिक्षा ग्रहण करने के लिये तैयार नही है। इतिहास हमे बतलाता है कि हिदू लोग अपनी मूखतापूण उदारता के कारण पग पग पर दलित पीडित और त्रस्त होते रहे हैं। यदि इस्लाम और ईसाइयत के अत्याचारो का शताब्दियो तक विस्तृत इतिहास भी हमे कुछ नही सिखा सकता तो हमारा ईश्वर ही मालिक है। इस विवेचन को अधिक विस्तृत न कर निणय हम बुद्धिमान पाठका पर ही छोडते हैं कि उहे दयानन्द का व्यावहारिक दृष्टिकोण पसन्द है या विवेकानन्द की भावकता।

विगत पृष्ठो मे हमने बौद्ध इसाई और इस्लाम इन तीन मतो के विषय मे स्वामी दयान द और विवेकानन्द के दृष्टिकोण का अध्ययन किया। इनमे से प्रथम भारतीय वातावरण से युक्त एव वदिकधम की प्रतिक्रियास्वरूप था। अय दो समेटिक मजहब क्रमश मध्य ऐशिया और अरब की तत्कालीन परिस्थितियो और आवश्यकताओ के अनुसार उत्पन्न हुये थे। अब हम विशेषत कुछ उन मतो का विश्लेषण करेंगे जो मूलत भारतीय ही है तथा जिनका परम्परा की दृष्टि से वदिक धम से सम्बध है।

सवप्रथम हम वाममाग को लेते हैं। शाक्त उपासना से सम्बध रखनेवाला यह सम्प्रदाय अपने कमकाण्डो और विधानो की दृष्टि से अत्यन्त रहस्यपूण माना जाता है। पच मकार सेवन जसे प्रवृत्तिपूण साधनो को वध मानने तथा अपनी असाधारणता के कारण जनसाधारण मे घृणा एव जुगुप्सा के भाव उत्पन्न करता रहा है। वाममाग के विपरीत दक्षिणमाग की उपासना सभी सम्प्रदायो मे वध और अभीष्ट समझी गई फलत वाममाग का प्रचार केवल

---

* *भारत मे विवकान द पृ० ११४, ११५*

कुछ व्यक्तियो की गोष्ठियो तक ही सीमित रहा । एक समय था जब कि अधिकाश पूर्वी भारत—बिहार आसाम और बगाल वाममार्गी प्रवृत्तियो का केन्द्र रहा, परन्तु मध्यकालीन वैष्णव धमसाधना ने वाममाग के दुग को भूमिसात् कर लोकमगलकारी भक्तियुक्त विष्णु उपासना मूलक धम का प्रचार किया । आज इस सम्प्रदाय के अनुयायी बग प्रान्त मे यत्र तत्र प्रच्छन्न रूप में मिल भले ही जायें अन्यथा प्रकाशरूप से उनका ऐसी उपासना करना सामाजिक कारणो से भी कठिन हो गया है ।

स्वामी दयानन्द ने वाममाग की कटु आलोचना सत्याथप्रकाश के एकादश समुल्लास के प्रारम्भ मे की है । मद्य, मास, मीन जसी वस्तुओ से देवीपूजन करता यौन सम्बन्धो मे सवथा उन्मुक्त रहकर निलज्जता पूण भाव से व्यभिचार को प्रोत्साहन देना वाममाग की सबसे कमजोर कडी रही है। यद्यपि पुरातन तन्त्रग्रन्थो मे जो वाममाग के पोषक ग्रन्थ हैं इन पचमकारो के अनेक आध्यात्मिक और रूपकात्मक अथ करने की चेष्टाये की गई हैं और वतमान समय मे भी अनेक तन्त्र भक्त शाक्त विद्वान् ऐसी व्याख्या मे विश्वास रखते हैं और करते भी है जिससे तन्त्रो का बीभत्स और जुगुप्सापूण स्वरूप का किंचित् परिमाजन किया जा सके । परन्तु जिसने एकबार भी इन ग्रन्थो का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया है वह दृढतापूवक कह सकता है कि तन्त्रो मे व्यक्त पचमकारो की आध्यात्मिक व्याख्या करना वसा ही है जसा बिहारी सतसई के शृगाररसात्मक दोहो का वराग्यपरक अथ लगाना। अस्तु ।

स्वामी दयानन्द से पूव भी स्वामी शकराचाय जसे महापुरुष अपनी दिग्विजय के प्रसग मे वाममार्गी कापालिको से शास्त्राथ कर उन्हे परास्त कर चुके थे ।* प्रबोध चन्दोदय † जसे नाटको मे भी वाममार्गी प्रवृत्तियो की

---

* शकर दिग्विजय–माधवाचाय कृत

† प्रबोध चन्द्रोदय–कृष्ण मिश्र रचित

कटु आलोचना की गई है और प्रवृत्ति मूलक मद्य मास और मैथुन के सेवन से मोक्ष–प्राप्ति को सम्भव मानने वालो का उपहास किया गया है। स्वामी दयानन्द कृत वाममाग की समीक्षा पर्याप्त विस्तृत है। उसमे उन्होने काली-तन्त्र कुलाणव तत्र महानिर्वाण तन्त्र ज्ञान–सकलनी तन्त्र रुद्रयामल तन्त्र उड्डीश तन्त्र आदि वाममाग के मान्य ग्रन्थो से प्रभूत उदाहरण देकर इस मत की नीति और मर्यादाविरुद्ध शिक्षाओ का पर्दाफाश किया है।

अब हम यह देखें कि इस वामाचार साधना के प्रति विवेकानन्द का क्या रुख था ? पाठको को यह तो विदित ही होगा कि विवेकानन्द के गुरु परमहस रामकृष्ण तन्त्रोपासक शाक्त मतावलम्बी थे। उन्होने विधिवत् तन्त्र निर्दिष्ट पद्धति से वामाचार साधन किया था। यद्यपि वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे और मद्य तथा मास के प्रति अपनी सहजात घृणायुक्त भावना रखने के कारण उन्होंने इस पचमकार सेवन से अपने को पृथक ही रखा था परन्तु उन्होंने पचमकार पद्धति की कभी न तो निंदा ही की और न आलोचना। उनके जीवन मे आता है कि मद्य आदि प्रस्तुत किए जाने पर वे उसे केवल सूघकर या नमस्कार कर ही रह जाते थे परन्तु इसका तिरस्कार करने का साहस उनमे नही था। जहाँ तक मथुन का प्रश्न है परमहस देव इससे सवथा विरक्त थे। वाममाग मे स्वीकृत परकीया सेवन की तो बात ही क्या उन्होने अपनी विवाहिता पत्नी शारदादेवी के प्रति भी कभी यौन भावनाय नही रक्खी। वे उन्हे आजीवन माता के तुल्य समझते रहे। विवेकानन्द ऐसे ही आपातत विरोधी प्रतीत होने वाले भावो के आश्रयभूत परमहस रामकृष्ण के शिष्य थे।

विवेकानन्द ने दो स्थलो पर वाम माग की चर्चा की है परन्तु इन दोनो स्थानो पर ही वे उसका समथन नही कर सके हैं। एक पत्र मे अपने किसी शिष्य या गुरुभाई को लिखते हुये वे कहते हैं तुम लोगो मे से कोई भी वामाचार साधना के योग्य नही है। इसलिए मठ मे इसकी साधना किसी प्रकार भी नही होनी चाहिए इस साधना का मठ मे कभी नाम भी न लिया जाय। जो दुष्ट गुरु महाराज के सघ मे अधम वामाचार का प्रचार

करेगा उसका लोक और परलोक मे नाश होगा।'* इस उद्धरण की प्रथम पक्ति से तो यह ध्वनित होता है कि वामाचार की साधना यद्यपि निर्दोष है परन्तु उसको करने की योग्यता का अभाव उन लोगो मे था परन्तु अन्तिम पक्ति मे वे इसे अधम कहने से भी नही चूके हैं। अत हमे यह निष्कष निकालने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही होनी चाहिए कि विवेकानन्द का मत वाममाग के प्रतिकूल ही था।

अपने एक भाषण मे तो उन्होने वाम माग की और भी तीखी आलोचना की है तथा बगाल मे उसके विशेष प्रचार को चिंता की दृष्टि से देखा है। बगालियो की वामाचार को प्रश्रय देने के कारण तीव्र भत्सना भी की है। यहाँ हम एतद् विषयक एक लम्बा उदाहरण देने का लोभ सवरण नही कर सकते। उन्हाने कहा जब मैं देखता हू कि हमारे समाज मे कितना वामाचार फैला है तब उन्नति का इससे बडा गव रहने पर भी मेरी नजरो मे यह अत्यन्त गिरा हुआ मालूम होता है। इन वामाचार सम्प्रदायो ने मधुमक्खियो की तरह बगाल के समाज को छा लिया है। वे ही जो दिन को गरजते हुये आचार के सम्बन्ध मे प्रचार करते है रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से बाज नही आते और अति भयानक ग्रन्थ समूह उनके कम के समथक हैं। इन्हीं शास्त्रा की आज्ञा मान कर वे उन घोर दुष्कर्मों मे हाथ देते हैं। बगालियो के शास्त्र वामाचार-तन्त्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरो प्रकाशित होते हैं जिन्हे लेकर तुम अपनी सन्तानो के मन को विषाक्त करते हो किन्तु उन्हे श्रुतियो की शिक्षा नही देते। ऐ कलकत्तावासियो क्या तुम्हे लज्जा नही आती कि अनुवाद सहित वामाचार तन्त्रो का यह वीभत्स सग्रह तुम्हारे बालको और बालिकाओ के हाथ रक्खा जाय उनका चित्त विषय विह्वल हो और वे जन्म से ही यही धारणा लेकर पलें कि हिन्दुओ के शास्त्र ये वामाचार ग्रन्थ हैं? यदि तुम लज्जित हो तो अपने बच्चो से उन्हे अलग करो, और उन्हे यथाथ शास्त्र—वेद, गीता,

---

* पत्रावली भाग २, पृ० १३८

उपनिषद् पढने दो। * विवेकानन्द के ये स्पष्ट विचार और किसी टिप्पणी की अपेक्षा नही रखते। वाम मार्ग की दूषित शिक्षाय क्या अब भी बगाल मे उसी तीव्रता से प्रचलित है?—इसका उत्तर कौन दें?

मत सम्प्रदायो की आलोचना विषयक स्वामी दयानन्द के विचार तो हमे सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध मे एक स्थान पर ही निबद्ध मिलते हैं परन्तु विवेकानन्द के वाङमय से उनके एतद् विषयक विचारो को चुनना एक कठिन समस्या है। फिर भी जो वचारिक समानता हमे यत्र तत्र दृष्टिगोचर हुई उसे व्यक्त करने की हमने चेष्टा की है। वष्णव मत के विषय मे भी स्वामी दयानन्द ने प्रभूत आलोचनात्मक सामग्री उपस्थित की है। विशेषत विष्णु स्वामी द्वारा प्रचारित रुद्र सम्प्रदाय जो कालान्तर मे वल्लभ सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ तथा रामानुज द्वारा प्रचारित श्री सम्प्रदाय की विस्तृत आलोचना सत्यार्थप्रकाश मे मिलती है।

सत्यार्थप्रकाश के पाठको को यह स्मरण होगा कि इस चक्राकित वष्णव मत का मूल प्रवर्तक शठकोप नामक कोई दक्षिणी व्यक्ति था जिसे स्वामी दयानन्द ने प्रमाणो के आधार पर कजर जाति का लिखा है। उनके शब्द इस प्रकार हैं—'इनका मूल पुरुष शठकोप हुआ कि जो चक्राकितो ही के ग्रन्थो और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है उनमे लिखा है—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी'

इत्यादि वचन चक्राकितो के ग्रन्थो मे लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना बेचकर विचरता था अर्थात् कजर जाति मे उत्पन्न हुआ था।"†

सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशित होने के पश्चात् वैष्णवो ने इस पर बडा

---

* *भारत मे विवकानन्द* पृ० ३२६

† *सत्यार्थप्रकाश* पृ० ४०६

कोलाहल मचाया। सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध जो खण्डनात्मक साहित्य* प्रकाशित हुआ उसमे स्वामी दयानन्द के इस वक्तव्य का तीव्र प्रतिवाद किया गया कि शठकोप नीच कुलोत्पन्न था। परन्तु विवेकानन्द ने भी एक स्थान पर इसी मत का समर्थन किया है। वे लिखते हैं— यह जो इतना बड़ा वैष्णवधर्म है वह भी इसी तामिल नीचवंशोद्भव शठकोप से उत्पन्न हुआ है जो **विक्रीय शूप स चचार योगी'** है। † सम्भवत ऐसा लिखने की प्रेरणा विवेकानन्द को भी सत्यार्थप्रकाश से ही मिली हो।

भारतीय धार्मिक मत सम्प्रदायो का अध्ययन करते समय हम उन्नीसवी शताब्दी के उन सुधार आन्दोलनो की भी उपेक्षा नही कर सकते जो धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना लेकर उत्पन्न हुये थे। सर्वप्रथम बंगभूमि मे राममोहनराय ने ब्राह्म समाज की स्थापना १८२८ ई० मे की। भारतीय धर्म और समाज के पुनरुत्थान का यह प्रथम प्रयत्न था। इसके पश्चात् १८७५ मे स्वामी दयानन्द के द्वारा आर्यसमाज की स्थापना हुई। इस प्रकार ब्राह्मसमाज आर्यसमाज का पूर्ववर्ती आन्दोलन है। जिस समय बम्बई मे स्वामीजी अपने शिष्यो और अनुयायियो को संगठित करते हुये किसी ऐसी संस्था को प्रारम्भ करने की सोच रहे थे जो उनके द्वारा निर्देशित मार्ग और कार्य प्रणाली के द्वारा उनके न रहने पर भी उनके कार्य को आगे बढाती रहे, उस समय लोगो ने यह परामर्श दिया था कि ब्राह्मसमाज के साथ मिल कर भी यह कार्य किया जा सकता है। स्वामी दयानन्द इससे सहमत भी हो जाते परन्तु ब्राह्म नेताओ से उनका कुछ सैद्धान्तिक मतभेद था। यह मतभेद भी किसी साधारण प्रश्न पर न होकर वेद के प्रमाणत्व के विषय मे था। ऋषि दयानन्द जहाँ प्राचीन वैदिक शास्त्रीय परम्परा का अनुसरण करते हुये वेद को

---

* *ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत—दयानन्द तिमिरभास्कर आदि ग्रन्थ*

† परिव्राजक पृ० ४२

अपौरुषेय फलत स्वत प्रमाण मानते थे वहाँ ब्राह्म नेता वेदो को इतना उच्च स्थान देने के लिये तयार नही थे । यद्यपि ब्राह्मसमाज के सस्थापक राजा राममोहनराय के वेद विषयक विचार स्वामी दयान द के विचारो से पर्याप्त साम्य रखते थे* परन्तु कालान्तर मे ब्राह्मनेता देवे द्रनाथ ठाकुर और केशवच द्रसेन ने वेद की मान्यता के सिद्धा त को लगभग समाप्त कर दिया था । केशव तो स्वामी दयान द के समकालीन ही थे । ऐमी स्थिति मे स्वामी दयानन्द के लिये यह सम्भव नही हो सका कि वे वेदो की मा यता को अस्वीकार करने वाले लोगो के साथ काय करने मे अपने को समथ पाते फलत आयसमाज की पृथक स्थापना आवश्यक समझी गई । आयसमाज और ब्राह्मसमाज मे सद्धान्तिक विभिन्नता का केवल एक यही कारण नही था । स्वामी दयान द को ब्राह्मसमाज मे जो सबसे बडी बुराई नजर आती थी वह था उसका पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति की ओर झुकाव, राष्ट्रीयता और स्वदेश भक्ति की यूनता प्राचीन मर्यादाओ का उपहास और ईसाइयत के प्रति अनुराग । उ होने सत्याथप्रकाश के ११ वें समुल्लास मे ब्राह्मसमाज की विस्तृत समालोचना की है । वे ब्राह्मसमाज की इस बात के लिये प्रशसा करते हैं कि उसने कुछ लोगो को ईसाई बनने से बचाया है और मूर्त्तिपूजा के पाखण्ड को भी दूर किया है पर तु ब्राह्मसमाजियो की स्वदेश भक्ति की यूनता और ईसाई आचरणो के ग्रहण तथा खानपान विवाहादि के नियमो मे परम्परानुमोदित रीतियो के त्याग से वे अत्यन्त खिन्न थे ।

इसी प्रकार ब्राह्मसमाज की जिन अन्यान्य बातो के प्रति उ होने अपनी असहमति प्रकट की है उ हे हम इस प्रकार निर्दिष्ट कर सकते हैं—

(१) अपने देश की नि दा करना तथा विदेशी लोगो की प्रशसा करना ।

---

* *देखो लेखक की पुस्तक—महर्षि दयानन्द और राजा राममोहनराय का शास्त्र प्रमाणवाद शीषक अध्याय ।*

(२) वेदादि शास्त्रो तथा ऋषिया की मान्यता को अस्वीकार कर ईसा मूसा नानक मुहम्मद चतन्य आदि का प्रमाण करना और उनके सिद्धान्तो को आदर देना।

(३) खान पान मे तथा आचार व्यवहार मे अग्रेजो तथा मुसलमानो का अनुकरण करना।

(४) यूरोपीय सभ्यता का अधानुकरण करना।

(५) ईसाई विश्वास के अनुसार उपादान कारण के बिना जगत् की उत्पत्ति मानना।

(६) ईसाई, मुसलमानो के तुल्य पश्चात्ताप और प्राथना से पापो की निवृत्ति मानना।

(७) पुनजन्म को स्वीकार न करना।

(८) अग्निहोत्र यज्ञादि वदिक कमकाण्ड को मिथ्या समझाना।

(९) यज्ञोपवीत और शिखा आदि आर्योचित बाह्याचारो को तिलाञ्जलि देना।

(१०) जीव और ईश्वर विषयक वदिक शास्त्रीय मायताओ को अस्वीकार करना।*

यह है स्वामी दयानन्द की ब्राह्मसमाज के प्रति धारणा। उपयुक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि स्वामी दयानन्द का ब्राह्म सिद्धान्तो से मौलिक मतभेद था और इसी कारण वे ब्राह्मसमाज के साथ काय करने मे अपने को

---

* *विस्तार के लिये देखो सत्याथप्रकाश ११ वा समुल्लास ब्राह्मसमाज और प्राथना समाज के गुण दोष तथा लेखक की पुस्तक—महर्षि दयानन्द और राजाराममोहनराय का १५ वा अध्याय ब्राह्मसमाज और आयसमाज।*

असमथ पाकर आयसमाज की स्थापना के लिये विवश हुए थे परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पुनर्जागरण के उद्घोषक इन दोनो सुधारवादी आ ेलनो आयसमाज और ब्राह्मसमाज मे समाज सुधार विषयक अनेक बातो मे पूण साम्य था। अत यह कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही होनी चाहिए कि ब्राह्मसमाज और आयसमाज दोनो ही सुधार आन्दोलन रूपी महावृक्ष को दो विशाल शाखायें हैं जिनमे अनेक समानतायें हैं। पारस्परिक मतभेदो का विवेचन तो हम ऊपर कर ही चुके हैं।

अब हम विवेकान द के एतद् विषयक विचारो को जानने की चेष्टा करें। रामकृष्ण परमहस का शिष्यत्व ग्रहण करने से पूव विवेकानन्द स्वय साधारण ब्राह्मसमाज के सभासद् थ। यह साधारण ब्राह्मसमाज महर्षि देवे द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व मे काय करता था जबकि केशवच द्रसेन ने उनसे पृथक होकर अपना भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज नामक पृथक सगठन स्थापित किया था। रामकृष्ण के सम्पक मे आने और उनके मत विश्वासो को ग्रहण करने के पश्चात् धीरे धीरे उनका ब्राह्मसमाज से सम्ब ध शिथिल हो गया। कुछ समय पश्चात् वे ब्राह्मसमाज के कट्टर समालोचक बन गये। उनकी ब्राह्मसमाज विषयक आलोचना केवल एक बिंदु के इद गिद ही घूमती रहती थी और वह था सुधार। हम आगामी अध्याय मे स्वामी विवेकानन्द की सुधार आन्दोलनो के प्रति खीझ का मनोवज्ञानिक अध्ययन करगे और यह सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे कि इस महान् सुधार आन्दोलन के प्रति उनका यह सकुचित दृष्टिकोण नितान्त अनुदारतापूण अनौचित्यपूण एव विवेकहीन था।

ब्राह्मनेता केशवच द्रसेन अत्यन्त भावुक और सिद्धान्तो तथा मा यताओ की दृष्टि से अत्यन्त लचकीले थे। उन तक आते आते ब्राह्मसमाज के रूप और आत्मा मे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। अब वह राममोहनराय वाली ब्राह्मसमाज नही रह गई थी जो वेदो और उपनिषदो से प्रेरणा लेती एव युक्ति और तर्कों द्वारा पौराणिको और ईसाइयो के मु ह ब द करती थी। केशवच द्र अपनी भावुकतावश रामकृष्ण परमहस के सम्पक मे भी आये, और यह कहने

मे कुछ भी अनौचित्य नही है कि परमहस ने उनको पर्याप्त प्रभावित भी किया। फलत केशव ने अपने भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज और नवविधान मे ऐसी अनेक नवीन मान्यताओ और विश्वासो को प्रविष्ट कराया जो ब्राह्मधम की मौलिक मान्यताओ के विपरीत थी। निम्न उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी भगवान् के मातृभाव सम्बन्धी भाव ब्राह्मसमाज ने परमहस देव की जीवनी से प्राप्त किये हैं। विशेष कर हमारे आचार्य केशवचन्द्रसेन ने उनसे ईश्वर को माँ कहकर पुकारना तथा उससे शिशु की सरलता व अभिमान के साथ दृढतापूवक मागना सीखा था। इससे पूव ब्राह्मधम ज्ञानप्रधान व शुष्क तक युक्तियो से पूण था। रामकृष्ण देव के जीवनादश ने ब्राह्मधम से शुष्कता को दूर कर उसे अधिकतर प्रिय तथा भक्तिमय बनाया था। *

जहा तक आयसमाज का सम्बन्ध है विवेकानन्द स्वामी दयानन्द की राष्ट्रीयता की प्रशसा करते थे। वे उसके सेवाकाय के भी प्रशसक थे यद्यपि दाशनिक तथा अन्य बातो मे उनका आयसमाज से घोर मतभेद था। उनके एतद् विषयक विचारो का उल्लेख करते हुए Renaissance of Hinduism के लेखक ने लिखा है— जहा तक आयसमाज का सम्बन्ध है वे (विवेकानन्द) उसके सस्थापक (दयानन्द) की राष्ट्रीयता की प्रशसा करते थे परन्तु साथ ही वे उनके वेदान्त को बहिष्कृत करने की हानि को भी अनुभव करते थे जो कि हिन्दू धम की आत्मा के तुल्य है। उन्होने अपने एक पत्र मे इसका उल्लेख भी किया था, अब यदि यह सम्भव है कि सहिता के आधार पर एक समन्वयपूण धम का निर्माण किया जाय तो हजार बार यह अधिक सम्भव है कि एक समन्वयपूण और सामञ्जस्य युक्त मत उपनिषदो के आधार पर बन सकता है, फिर इसमे पहले से प्राप्त राष्टीय सम्मति के विपरीत न जाना पडेगा। यहाँ

** धमतत्त्व १ आश्विन १८०९—शक विवेकानन्द चरित मे उद्धत*

भूतकाल के सब आचाय तुम्हारा साथ देगे।'* इस कथन मे तो कोई सत्यता नही है कि स्वामी दयानन्द ने वेदान्त का बहिष्कार किया था। उन्होने वेदान्त का प्रचलित अथ अवश्य ही नही लिया परन्तु बादरायण के सूत्रा को उन्होंने प्रामाणिक माना है तथा उनके विपुल उद्धरण भी दिये हैं। शाङ्करवेदान्त को वे त्रुटिपूण समझते थे। विवेकानन्दजी के इस कथन की हम पूव ही समालोचना कर चुके हैं, जिसमे यह कहा गया है कि सहिता भाग पर आधारित धम की अपेक्षा उपनिषदो पर आधारित धम अधिक सामञ्जस्यमूलक या लोकप्रिय हो सकता है, अत पुन इस विषय की यहाँ चर्चा करना कोई अथ नही रखता।

जहा तक आयसमाज के विषय मे स्वामी दयानन्द के मत का प्रश्न है, वह तो अनुकूल ही होगा क्योकि तत्कालीन अन्याय सभी सुधारवादी आन्दोलनो की त्रुटियो और अभावो को देखकर ही उन्होने आयसमाज जैसे सगठन की नीव डाली थी जिसमे भारतवासियो के लिए स्वधम स्वराष्ट और स्वसस्कृति के प्रति पूण निष्ठावान् बनने की सम्भावना होने के साथ-साथ

---

* *As for the Aryasamaj he admired the patriotic fervour of its founder but also saw the fatal mistake he made in excluding Vedant which is the very soul of Hinduism from the scope of the reformed Hinduism which he preached For the Swami observes in one of his letters Now if it is possible to build a consistent religion on the Samhitas it is a thousand times more sure that a very consistent and a harmonious faith can be based upon the Upanishads and moreover here one has not to go against the already received national opinion Here all the Acharyas of the past would side with you and you have a vast scope for new progress Renaissance of Hinduism By D S Sarma P 295*

ससार के उपकार को ही इस समाज का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया था। सत्याथप्रकाश के ११ वे समुल्लास मे मतमता तरो के समीक्षा प्रकरण के उपसहार मे ऋषि दयानन्द आयसमाज के विपय मे अपना स्वमत लिखते है 'इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आयसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नही तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना अब भी पालन होता है आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जसा आयसमाज आर्यावत देश की उन्नति का कारण है वसा दूसरा नही हो सकता।

अब अन्तिम विवेचनीय विषय है थियोसोफी का आन्दोलन, जिसके प्रवत्तक अमेरिकन कनल आल्काट और रूसी मडम ब्लेवेस्टस्की न केवल स्वामीजी के समकालीन ही थे अपितु जिन्होने प्रारम्भ मे अपने आपको स्वामी दयानन्द का शिष्य उद्घोषित किया था तथा जो थियोसोफिकल सोसायटी को आयसमाज की शाखा कहने और लिखने मे गौरवान्वित अनुभव करते थे। इन कनल और मडम ने अमेरिका मे उक्त सोसाइटी की स्थापना की। तत्पश्चात् जब उन्हे स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व और काया का परिचय मिला तो वे बम्बई के हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा स्वामीजी से पत्र व्यवहार करने लगे। उन्होने यह भी लिखा कि वे इस सोसायटी के द्वारा अमेरिका और योरप आदि पाश्चात्य देशो मे आयसमाज के ध्येय की पूर्ति मे ही लगे है। वे वेद विषयक उन सभी सिद्धान्तो को स्वीकार करते हैं जिन्हे आयसमाज मान्यता प्रदान करता है तथा ईसाइयत मे उनका तनिक भी विश्वास नही है। मडम और कनल के इस पत्र को पाकर स्वामी दयानन्द का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने समझा कि विश्व मे वेद धम को पुन प्रतिष्ठित करने के लिए इस सोसायटी के रूप मे उन्हे एक साधन प्राप्त हो गया है अत अब वे अपने ध्येय को प्राप्त करने मे शीघ्र ही सफल होगे और एक बार पुन पाश्चात्य देशो मे वेद की विजय वैजयन्ती फहरा सकेगी।

निश्चित कायक्रम के अनुसार थियोसोफी के ये नेता भारत मे आये। उनके व्याख्यान होने लगे। आयसमाज के सदस्यो ने उनका स्थान-स्थान पर स्वागत किया और सहयोग दिया। वे मेरठ मे स्वामी दयान द से नितान्त श्रद्धा और भक्तिसमन्वित हृदय लेकर मिले। अनेक आयसमाजो मे भी उनके व्याख्यान हुए और उ होने आयसमाज तथा उसके प्रवतक को अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। पर तु इन लोगो के कपटाचरण की कलई भी शीघ्र ही खुल गई। स्वामी दयान द को अब यह सूचना मिलने लगी कि कनल और मडम आयसमाज और उसके सस्थापक को अपनी लोकप्रियता फैलाने मे केवल साधनमात्र ही समझते हैं और वे यह चाहते हैं कि थियोसोफिकल सोसाइटी के विस्तार के लिए आयसमाज का आधारभूमि के रूप मे प्रयुक्त किया जाय। साथ ही यह भी पता चला कि थियोसोफी के सस्थापको का आयसमाज तथा वदिकधम के सिद्धा तो मे कतई विश्वास नही है। वे ईसाइयत के विरुद्ध अवश्य है पर तु आयसमाज प्रतिपादित वेदोक्त धम को भी पूणतया सत्य नही मानते। किसी किसी व्याख्यान या वार्तालाप के प्रसग मे मडम लैवेटस्की ने अपने आपको बौद्ध बताया और किसी अ य अवसर पर ईश्वर के प्रति अपनी अनास्था यक्त की।

ऐसी परिस्थिति मे स्वामी दयान द के लिये यह सम्भव नही था कि वे आयसमाज और थियोसोफी को लेकर जनता मे अधिक समय तक फैलने वाले भ्रम को दूर करने की चेष्टा नही करते। उ होने कनल और मडम से मिलकर यह चेष्टा की कि वे पारस्परिक वार्तालाप द्वारा अपने सद्धा तिक मतभेदा की चर्चा करें और उ हे यथासम्भव दूर करने का प्रयत्न करें। पर तु उ होने ऐसे प्रसगो को यथाशक्य टाला। जब जब स्वामीजी से उनकी इस विषय मे चर्चा होती वे मुख्य प्रसग को छोडकर विषय बदलने की चेष्टा करते। अन्त मे स्वामीजी ने उ हे शास्त्राथ के लिये भी आहूत किया परन्तु जो लोग नीति कुशल बनकर एक बार अपने को स्वामीजी का शिष्य कह कर प्रसिद्ध हो चुके थे वे उनके समक्ष शास्त्राथ समर के लिये किस प्रकार सन्नद्ध होते? अस्तु।

अब स्वामीजी के लिये इस अनिश्चित परिस्थिति को समाप्त कर देना आवश्यक हो गया। उन्होने कोई न कोई निर्णयात्मक कदम उठाना ही उचित समझा। अत उन्होने अपने बम्बई के भाषण मे आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध समाप्त होने की घोषणा कर दी। कर्नल और मैडम पर इस घोषणा से प्रत्यक्ष रूप से तो कोई प्रभाव नही पडा और उन्होने अपनी वाणी या लेख के द्वारा कभी आर्यसमाज या उसके प्रवर्तक के प्रति कोई अविनय भी प्रकट नही की परन्तु जिस उद्देश्य को लक्ष्य मे रखकर उन्होने यह सब आडम्बर रचा था उसकी पूर्ति मे उन्हे किंचित् सफलता ही मिली। भारत मे उन्हे अपना जाल फैलाने का एक बहाना मिल गया। आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के कारण उनका देश के अनेक लोगो से परिचय भी हो गया था। अब इसी आधारभूमि पर वे अपने मत का स्वतन्त्र रूप से प्रचार भी कर सकते थे। यह है सक्षेप मे आर्यसमाज और थियोसोफी के सम्बन्धो की एक झाकी। आश्चर्य तो इस बात का है कि थियोसोफी के साहित्य मे इस प्रसग की तनिक भी चर्चा नही की गई है मानो वे यह मानना भी नही चाहते कि उनकी सोसाइटी के जातकर्म के साथ-साथ ही उसका आर्यसमाज से सम्बन्ध हो गया था जो स्वय सोसाइटी के सस्थापको की कुटिल नीति के दुष्परिणामो के फलस्वरूप ही विच्छिन्न हुआ। यहा हम थियोसोफी की सैद्धान्तिक विचारधारा का मूल्याकन नही करेगे, क्योकि स्वामी दयानन्द ने इस सोसाइटी के मतवाद का न तो कही अपने ग्रन्थो मे उल्लेख ही किया है और न आलोचन ही।

विवेकानन्द ने थियोसोफी के विषय मे अपने मत को पर्याप्त विस्तार से व्यक्त किया है। उनके जीवनकाल मे थियोसोफी की विचारधारा ने पर्याप्त विस्तार प्राप्त कर लिया था। अब मैडम और कर्नल के दिवगत हो जाने पर इस सोसाइटी का सूत्र सचालन और नेतृत्व प्रसिद्ध देशभक्त महिला श्रीमती एनीबेसेन्ट के हाथो मे आया था। साथ ही साथ इस सोसाइटी की विचारधारा और उसके सिद्धान्त भी देश विदेश मे प्रसृत हो रहे थे। विवेकानन्द की

विदेश यात्राओ मे थियोसोफिस्टो ने उनके विरुद्ध प्रचार किया। अमेरिका मे उनके विरुद्ध कुत्सित प्रचार किया गया और निम्नकोटि के साधनो और आक्षपो के द्वारा उनके महत्त्वपूण वेदान्त मिशन को असफल करने की चेष्टा की गई। स्वामी विवेकान द ने इसका उल्लेख और सकेत अनेक स्थानो पर किया है।

विवेकानन्द के द्वारा भारतीय धम और हि दू सस्कृति को विश्व धम और विश्वसस्कृति के रूप मे प्रचारित होना थियोसोफिस्टो को सह्य नही था। वे जिन गुप्त सिद्धा तो का प्रचार करना चाहते थे उनका विवेकान द की स्पष्ट विचारधारा से प्रत्यक्ष विरोध था। ऐसी दशा म उ होने विवेकान द को ही अपना लक्ष्य बनाया। परन्तु विवेकान द भी कच्ची गोलियाँ नही खेले थे। उन्होने थियोसोफिस्टो के कुचक्र का भण्डाफाड किया उनके मिथ्या सिद्धा तो की कलई खोल दी और इस खतरे से देशवासिया को सचेत कर दिया। हम यहाँ देखें कि विवेकान द ने थियोसोफी के मतवाद का कितना प्रबल और तीव्र खण्डन किया है।

कनल आल्काट की अपेक्षा मडम लेवेटस्की अधिक चतुर और चालाक थी। थियोसोफी की गुप्त विद्याओ* को प्रतिष्ठित और प्रतिष्ठापित करने मे उसका ही महत्त्वपूण हाथ था। मैडम ने लिखा है कि हिमालय और तिब्बत मे रहने वाले ऐसे महात्माओ से उनका प्रत्यक्ष सम्पक और सम्ब ध है जो इन गुप्त विद्याओ के ज्ञाता हैं। परन्तु विवेकान द ने मैडम की इस मिथ्या धारणा का घोर प्रतिवाद करते हुए स्पष्ट रूप से घोषित किया भारतीय ऋषियो की कोई गुप्तविद्या नही है हिमालय से क याकुमारी तक भ्रमण करके भी उ हें किसी ऐसे महात्मा से साक्षात्कार नही हुआ जो आकाश मे पक्षियो की तरह उडते रहते हो।'† वार्तालाप के अ य प्रसग मे उन्होने यह स्पष्ट कहा कि

---

* *The Secret Doctrine*

† *विवेकानन्द चरित पृ० २०२*

उनका मत किसी अलौकिक तत्त्व को उस रूप मे स्वीकार नही करता जसा कि थियोसोफी वाले मानते हैं। उनके शन्द इस प्रकार है— अलौकिक उपाय से प्राप्त किसी प्रकार के अलौकिक विषय की दीक्षा देने का हम दावा नही करते। × साधारण लोगो के लिये सवथा अदृश्य रहने वाले अलौकिक महात्मा जो किसी एक व्यक्ति को माध्यम बनाकर अपने उपदेश का प्रचार करते है उनके प्रति विश्वास करने की या उनके उपदेशो को हम कही पर भी प्रमाण रूप से उपस्थित नही कर रहे है। *

अपने एक भाषण मे विवेकानन्द ने थियोसोफी की इस मान्यता का प्रतिवाद किया कि धम के मूलभूत सत्या को गोपनीय रक्खा जा सकता है और उसके प्रचार का एकमात्र अधिकार केवल उन अदृश्य शक्तिया को ही है जिन्हे यह सोसायटी मानती है। उन्होने कहा इस भारतभूमि पर यह कभी प्रचारित नही हुआ कि धमराज्य के सत्य गोपनीय विषय हैं अथवा यह कि वे हिमालय की बर्फीली चोटियों पर बसने वाली गुप्त समितियो के ही विशेष अधिकार है।'†

थियोसोफी की इन गुप्त सभाओ और उनमे होने वाले कारनामो से भी विवेकानन्द परिचित थे। एक प्रसग मे तो उन्होने यहा तक लिख दिया है कि यदि कही शतान हो सकता है तो मैं उसकी तलाश किसी गुप्तसभा के कमरे के अन्दर ही करूगा।'‡ अपने अनुभव के बलपर विवेकानन्द यह घोषणा करते हैं मैंने काफी दुनिया देख ली है और मैं जानता हू कि इन गुप्तसभाओं से कसे-कैसे अनिष्ट हुआ करते हैं और कितनी आसानी से ये सभाये प्रेमी

× *स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० ४*

* *स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० ४*

† *भारत मे विवकानन्द पृ० २४२*

‡ *प्रमयोग पृ० ६३*

प्रेमिकाओ की सभा या भूतसभा का रूप धारण कर लेती हैं।"‡ इसी प्रसग मे विवेकानन्द ने यह भी प्रतिपादित किया है कि यदि थियोसोफी वाले वस्तुत दिव्यज्ञान का ही दावा करते हैं तो ऐसा यथाथ दिव्यज्ञान कभी भी बुद्धि या तक का विरोधी नही होना चाहिये। * 'साथ ही ऐसा दिव्यज्ञान हर एक की भलाई के लिये होना चाहिये।' † फिर क्या कारण है कि थियोसोफिस्टो का यह दिव्यज्ञान केवल कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित है ?

थियोसोफिस्टो का यह भी दावा रहा है कि वे मृत आत्मा को प्लेंचेट के द्वारा बुलाकर उससे बातें कर सकते हैं। इस प्रकार परलोकगत आत्माओ से प्रत्यक्ष सम्पक रखने उनसे वार्तालाप करने और उनसे आदिष्ट होने की भ्रममूलक धारणाये इस सस्था के अनुयायियो मे विद्यमान हैं। आयसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् और लेखक महात्मा नारायण स्वामी ने अपनी मृत्यु और परलोक × नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक मे थियोसोफी की एतद् विषयक धारणाओ का बलपूवक खण्डन किया है। स्वामी विवेकानन्द भी उनके इस पाखण्ड से सुपरिचित थे। भारत मे अन्ध विश्वासियो की कमी नही है और जब थियोसोफी के भक्त—पढे लिखे लोगो मे भी इस प्रकार के मूढ विश्वास पाये जा सकते हैं तो हमे उन करोडो अशिक्षित भारतवासियो को कोसने का क्या अधिकार है जो अपने अज्ञान और अशिक्षा के कारण मिथ्या विश्वासो के जाल मे फसे हैं। अस्तु स्वामी विवेकान द अपने एक पत्र मे थियोसोफिस्टो के मीडियम द्वारा मृतात्मा को बुलाने का पर्दाफाश करते हुये लिखते हैं—"इस देश मे पिशाचविद्या के पण्डित बहुत हैं। मीडियम वही है जो भूत बुलाता है। मीडियम एक पर्दे की आड मे जमा हो जाता है और पर्दे के भीतर से भूत

---

‡ *प्रेमयोग प० ९५*

* *प्रमयोग प० ९७*

† *प्रेमयोग प० ९७*

× *मत्यु और परलोक—सावदेशिक प्रकाशन, दिल्ली।*

निकलते रहते हैं बडे छोटे हरे रग के। मेने भी कई देखे परन्तु वह ठगविद्या ही जान पडती है। ×

मेरी समर नीति शीषक भाषण के अन्तगत जो स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास मे दिया था उन्होने थियोसोफी विषयक अपनी नीति को स्पष्ट किया। सोसायटी की तत्कालीन नेत्री श्रीमती बेसेन्ट के विषय मे भी उन्होने उल्लेख किया और कहा इस सोसाइटी के गुप्त विभाग (Esoteric) का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है उसे कुथमी और मोरिया अथवा उनके प्रत्यक्ष प्रतिनिधि मि० जज और श्रीमती बेसेन्ट से ही शिक्षा ग्रहण करनी पडती है। अत उक्त विभाग के सदस्य होने का यह अथ है कि मनुष्य अपनी स्वाधीन चिंता बिल्कुल छोडकर पूण रूप से इन लोगो के हाथ मे आत्मसमपण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बाते नही कर सकता था और जो मनुष्य ऐसा करे उसे मैं हिन्दू कह भी नही सकता। *

उपयु क्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि थियोसोफिकल सोसायटी के गुप्त सिद्धान्तो और उसकी गोपनीय कायवाहियो से विवेकानन्द नितान्त परिचित ही नही थे वे उसकी हानिकर प्रवृत्तियो को देश के लिये घातक भी समझते थे। रेनासा आफ हिन्दुइज्म के लेखक ने स्वामी विवेकानन्द का थियोसोफी विषयक मत उद्धत किया है। स्वामीजी ने कहा था 'Its occultism and esotericism would only make Indians who are already weak and superstitious weaker and more superstitious अर्थात् थियोसोफी का यह जादुई रहस्यवाद भारतीयो को, जो पहले से ही दुबल और अन्धविश्वासी हैं और भी अधिक दुबल और अन्धविश्वासी बनायेगा।

× पत्रावली भाग १ पृ० १३१

* भारत मे विवकानन्द पृ० १४६

इस प्रकार हम देखते हैं कि थियोसोफी के विषय मे विवेकानन्द और दयानन्द की धारणाये लगभग समान ही थी। दोनो को ही इस सस्था के कुछ कटु अनुभव हुए थे। विवेकान द को जहा थियोसोफिस्टो के विरोध का सामना करना पडा वहाँ दयान द को भी इन लोगो ने अपने जाल मे फसाने की चेष्टा की। मडम और कनल ने उ हे अपना गुरु और उपदेष्टा मान कर भी उनके स थ विश्वासघात किया। वे आयसमाज के सदस्यो को पृथक रूप से अपनी सोसायटी का सदस्य बनने के लिए बाध्य करते और स्वामी दयानन्द की लोकप्रियता को अपन साधन बना कर स्वय लोकप्रिय बनने की चेष्टा करते। यह अच्छा ही हुआ कि स्वामीजी ठीक समय पर सावधान होकर उनके चगुल से निकल गये अ यथा पता नही इस सस्था के मिथ्याविश्वासो ने आयसमाज को क्या रूप दिया होता ?

□□

सुधार आन्दोलन के प्रति दृष्टिकोण

ब्रिटिश राज्य के भारत मे दृढमूल हो जाने के अनन्तर पाश्चात्य रीति नीति विचारधारा और सस्कृति से भारतवासियो का परिचय होना स्वाभाविक ही थी। शताब्दियो की राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियो मे जिस हीन भावना के बीजो का वपन किया था अब उसके उच्छिन्न होने के दिन आये। भारत के सास्कृतिक एव धार्मिक नवजागरण के सूत्रधार राजा राममोहनराय ने जिस महान् विचार क्रान्ति का प्रारम्भ किया वह आगे चलकर धम समाज, सस्कृति और राजनीति के क्षेत्रो मे किस प्रकार अन्त सलिला भागीरथी की तरह प्रवाहित होकर राष्ट्र को अपनी पावनता से आद्र करती रही यह इतिहास के अध्येताओ से अप्रकट नही है। इसी सास्कृतिक पुनर्जागरण रूपी महावृक्ष की एक शाखा सामाजिक सुधारो के रूप मे पुष्पित और पल्लवित हुई।

बगभूमि मे ब्राह्मसमाज ने राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशव चन्द्रसेन के नेतृत्व मे सामाजिक सुधारो के क्षेत्र मे प्रशसनीय प्रयत्न किया। सती प्रथा जैसी अमानुषिक और पाशविक प्रथा को बन्द कराने का श्रेय सुधारकशिरोमणि राजा राममोहनराय को ही है। इसी प्रकार धम के नाम पर प्रचलित पाखण्डो बाह्याचारो और कदाचारो के विरुद्ध निर्भीक घोषणा करने मे भी ब्राह्मसमाज का प्रवतक पीछे नही रहा। केशव ने भी प्रचलित

जातपात छुआछूत तथा वर्ण वैषम्य को मिटाने के लिये यथाशक्य प्रयत्न किया। सुधार कार्य में उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी उनके पूर्ववर्ती राममोहनराय को परन्तु इसका कारण था उनकी ईसाइयत के प्रति अन्ध आसक्ति।

महाराष्ट्र मे ब्राह्मसमाज का यह सुधारवाद प्रार्थनासमाज के द्वारा जनता के समक्ष आया। यहाँ उसके सूत्र सचालक थे उदारमना न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे। रानडे के कार्य क्षेत्र मे उतरने के पूर्व ही स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना कर सामाजिक सुधार के महत्कार्य को अभूतपूर्व सबल प्रदान किया था। यद्यपि आर्यसमाज की स्थापना बम्बई नगर मे हुई परन्तु उसका विशेष विस्तार उत्तर भारत के पजाब सयुक्त प्रान्त आदि प्रान्तो मे हुआ। ईसा की उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दो दशक और बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशक—चालीस वर्षों की इस अवधि को हम सुधारकाल का स्वर्णयुग कह सकते है। इस बीच आर्यसमाज द्वारा प्रवर्तित सुधारवादी विचारधारा ने उत्तर भारत के जनमानस को किस प्रकार प्रभावित और परिवर्तित किया इसका ठीक ठीक अध्ययन और अनुमान तो कोई समाज शास्त्री ही कर सकता है। बालविवाह और अनमेल विवाह का विरोध विधवाओ के पुनर्विवाह की आवश्यकता वर्णगत और जातिगत वैषम्य को दूर करना अछूतोद्धार और सामाजिक समता का प्रसार नारीशिक्षा और नारी जागरण आदि ऐसे अनेक क्षेत्र थे जिनमे आर्यसमाज को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि सुधार के क्षेत्र मे जिस लक्ष्य को सम्मुख रखकर आर्यसमाज ने कार्य प्रारम्भ किया था उसमे उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई है फिर भी निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि साधारण लोगो के दृष्टिकोण को परिवर्तित करने मे इस सुधार आन्दोलन का भी एक महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

आज भी सामाजिक वैषम्य समाप्त नही हो पाया है। जातपात के दलदल से निकल कर हिन्दूसमाज अपने आपको सुसगठित इकाई के रूप मे प्रस्तुत नही

कर सका है फिर भी आयसमाज तथा अन्यान्य सुधारवादी सस्थाओ ने इस क्षेत्र मे जो कुछ किया उसका ऐतिहासिक महत्त्व सुस्थिर है। आज परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं। आज से पचास वष पूव अछूतोद्धार और नारी शिक्षा के लिये आयसमाज को जहा शास्त्राथ उपदेश और बहस मुबाहिसे की आवश्यकता पडी थी आज वही काय जनशिक्षा के प्रचार और शासन सत्ता के दबाव से स्वयमेव हो रहा है। फिर भी हम सुधार काय की अवगणना और उसके महत्त्व का अवमूल्यन किस प्रकार कर सकते है ?

सुधार काय का प्रशस्तिपाठ करना इस विवेचन का उद्देश्य नही है। हमे यह दिखलाना है कि रामकृष्ण और विवेकानन्द के द्वारा इस सुधार काय का जो मूल्याकन किया गया है वह कितना त्रुटिपूण है। सुधारवादी लोग कविकुलगुरु कालिदास के शब्दो मे **पुराणमित्येव न साधु सव'** तो कहते ही थे परन्तु जो कुछ नवीन है वह निश्चित रूप से अनवद्य ही है—ऐसा भी उनका आग्रह नही था। वह बुद्धि और विचार पूवक हस की तरह नीरक्षीर विवेक करने के पक्षपाती थे। उनकी यह धारणा थी कि भारतीय धम और सस्कृति का जो मौलिक उत्स है वह निश्चित रूप से **सत्य शिव सुन्दरम्'** के आदर्शों से परिपूरित था। उसके द्वारा मानवजीवन के सम्पूण विकास की व्यवस्था उसकी ऐहिक और पारलौकिक उन्नति का आयोजन, उसे मानव से ऊपर उठा कर देवत्व के धरातल पर प्रतिष्ठित करने के स्वप्न को साकार करना यह सब सम्भव प्रतीत होता था। कालान्तर मे हमारे धम और विश्वासो मे हमारे सामाजिक जीवन मे तथा हमारे पारस्परिक व्यवहार मे विकृतियो का समावेश हुआ। विभिन्न सस्कृतियो के सम्मिश्रण और विदेशी प्रभावो ने उसकी शुद्धता को नष्ट किया। फलत हमारा जीवन अत्यन्त कृत्रिम रूढ़िग्रस्त, गतानुगतिकता से पूण एव क्षयोन्मुख हो गया। यदि समाज के इस मरणोन्मुख शरीर मे सुधार रूपी सजीवनी का समावेश न किया जाता तो यह निश्चित था कि वह काल-कवलित हो जाता। अत सुधारको के प्रयत्नो की सराहना और उनके इस अभिनन्दनीय काय का उचित मूल्याकन होना आवश्यक है।

सामाजिक सुधारो के प्रति विवेकान द के दृष्टिकोण की आलोचना करने से पूव यह देख लेना भी आवश्यक है कि किन मनोवज्ञानिक परिस्थितियो के वशीभूत होकर उ हे इस दृष्टिकोण को बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह देखते समय हमे विवेकान द से आगे बढकर उनके गुरु रामकृष्ण के जीवन-दर्शन के अध्ययन मे प्रवृत्त होना पडेगा और तब हमे ज्ञात होगा कि काली म दिर का यह भावुक पुजारी जिसका शास्त्राध्ययन से कभी वास्ता नही रहा जिसने सासारिकता से मुख मोडकर अपने आपको सर्वात्मना अपनी आध्यात्मिक साधना मे तल्लीन कर लिया जो धार्मिक और सामाजिक विकृतियो की निमम आलोचना करने की अपेक्षा उनके प्रति मृदु व्यवहार करने का ही उपदेश देता रहा उसका शिष्यत्व स्वीकार कर विवेकान द कसे सुधारवादी आ दोलन के प्रति उदार हो पाते। रामकृष्ण ने धम के सभी रूपो को सत्य बताया। व्यावहारिकता से शू य उनके इस दृष्टिकोण मे सभी कुछ शुक्ल शुभ्र और शिव था कुछ भी कृष्ण अशिव या अभद्र नही। इसी कारण वे मध्यकालीन युग मे उत्पन्न उन सामाजिक कदाचारो की आलोचना नही कर सके जिनके कारण हमारा जीवन मुमुषू और जराजीण हो चुका था। सुधार आ दोलनो के प्रति यही अस्वस्थ दृष्टिकोण विवेकानन्द को भी विरासत के रूप मे प्राप्त हुआ और यद्यपि अपने गुरु की तरह वे अपने आपको आत्मकें द्रित कर एक स्थान पर बठ नही गये उ हे एक धम प्रचारक के रूप मे देश विदेश मे हिन्दू धम का महान् सदेशवाहक बनकर भ्रमण करना पडा जनमानस मे व्याप्त जडता प्रमाद और कुसस्कारो के विरुद्ध आवाज उठानी पडी, परन्तु यह सब कुछ करते हुए भी वे अपने आपको सुधारकवग के प्रति उदार नही बना पाये क्योकि उनके बौद्धिक जीवन का सृजन जिन उपादानो से हुआ था वे मूलत परम्परानुमोदित धम कम रीति नीति और आचार व्यवहार का ही समथन करते थे। यह अवश्य है कि कही कही धार्मिक अ धविश्वासो और जड रूढियो के प्रति उनका मानसिक आक्रोश शतधा विभक्त होकर कटु आक्षेपो के रूप मे प्रकट हुआ है, वहा वे भी उन अ धपरम्पराओ और सामा-

जिक तथा धार्मिक मिथ्या विश्वासो के प्रति उतने ही निमम और असहिष्णु हो उठते हैं जितने कि अन्य सुधारकगण ।

इस उपक्रम के साथ हम विवेकानन्द के सुधार सम्बधी विचारो की परख करेंगे और उनके दृष्टिकोण की मौलिक त्रुटि का पता लगाने की चेष्टा करेंगे । हमे तो विवेकानन्द के सुधार विषयक विचारा के अध्ययन से यही ज्ञात होता है कि उन्होने इस महत्त्वपूण विषय पर कभी गम्भीरता एव सहानुभूति के साथ विचार ही नही किया था । यदि वे ऐसा करते तो यह कभी सम्भव नही था कि वे उन निष्कर्षो पर पहुँचते । सव प्रथम तो हम यही कहेगे कि उन्होने सुधारको के प्रयत्नो को ठीक ठीक प्रकार से समझने का यत्न ही नही किया । एतद् विषयक उनकी सभी स्थापनाये और उपपत्तिया हेत्वाभासो से पूण हैं । एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा । अपने एक पत्र मे वे लिखते है

भारत के सभी समाज सुधारको ने पुरोहितो के अत्याचारो और अवनति का उत्तरदायित्व धम के मत्थे मढने की एक भयकर भूल की और एक दुर्भेद्य गढ को गिराने का प्रयत्न किया । नतीजा क्या हुआ ? असफलता । बुद्ध देव से लेकर राममोहनराय तक सबने जाति भेद को धम का एक अग माना और जातिभेद के साथ ही धम पर आघात किया और असफल रहे । *

इस उद्धरण मे विवेकानन्दजी की निम्न स्थापनाय स्पष्ट होती हैं—

(१) पुराहितो ने अत्याचार किये यह निर्विवाद है ।

(२) समाज सुधारको ने इसके लिये धम को उत्तरदायी ठहराया उस पर प्रहार किये और असफल रहे ।

(३) सुधारको ने जाति भेद को धम का अग माना ।

उद्धरण की सम्पूण तकप्रणाली ही कितनी अस्तव्यस्त है, यह इस विश्लेषण से पाठको पर स्पष्ट हो गया होगा । हमारा निवेदन इतना ही है

---

* पत्रावली भाग १ पृ० ८६

कि किसी भी सुधारक ने समाज मे व्याप्त बुराइयो के लिए धम को उत्तरदायी नही ठहराया । बुद्धदेव से लेकर राममोहनराय तक के सुधारको ने सामाजिक विकृतियो की चाहे कितनी ही कटु आलोचना क्यो न की हो परन्तु यह कभी नही कहा कि वास्तविक धम ही इस सबके लिए उत्तरदायी है और न उन्होने धम के मूलभूत सिद्धान्तो का ही कभी प्रत्याख्यान किया । पुरोहितो के अत्याचारो के लिए उन्होने पुरोहितो को ही कोसा । स्वामी दयानन्द ने तो इस वग को पोप शब्द से अभिहित किया क्योकि इन्ही के समानधर्मी रोमन कथोलिक पुरोहितो ने यूरोप मे धम के नाम पर जनता का शोषण किया था । अधिक विस्तार मे न जाकर हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि विवेकानन्द का उक्त वक्तव्य नितान्त असमीचीन है ।

सुधारक वग पर मनमाने परन्तु निराधार आक्षेप करने मे विवेकानन्द पीछे नही रहे । एक अन्य पत्र मे उन्होने सुधारको को हिन्दू धम का नाशक बताते हुए लिखा हमारे आधुनिक सस्कारको को पहले भारत के धम का नाश किये बिना सस्कार का कोई दूसरा उपाय ही नही सूझता । मुझे यही कहना है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिए हिन्दू धम के नाश की कोई आवश्यकता नही है और यह बात नही कि समाज की वतमान दशा इसलिए हुई कि हिन्दू धम प्राचीन रीति नीतियो और आचार अनुष्ठानो का समथन किए रहता है ।'* यह कथन कितना भ्रान्त है कि आधुनिक सुधारको ने भारत के धम का नाश करने का यत्न किया । किसी भी सुधारक ने यहाँ तक कि ईसाई आदर्शों की ओर उन्मुख केशवचन्द्र सेन ने भी यह कभी नही अनुभव किया कि समाज की उन्नति क लिए हिन्दूधम का नाश होना अवश्यम्भावी है । इसके विपरीत सुधारकगण तो धम को अधिक ओजस्वी स्फूर्तियुक्त और सजीव बनाने की ही चेष्टा करते रहे । प्राचीन रीति नीतियाँ नही अपितु मध्यकालीन आचार अनुष्ठानो के प्रवेश ने ही समाज को जराजीण और

---

* पत्रावली—भाग १, पृ० १४२, १४३

मरणोन्मुख बनाया और इन्हीं विकृतियों को समाप्त करने का बीडा सुधारकों ने उठाया था। इनकी व्यर्थ वकालत करने की अपेक्षा यदि विवेकानन्द इन्हें नष्ट करने में सुधारकों को सक्रिय सहयोग तो देते तो सम्भव था कि अधिक लाभ पहुँचता।

विवेकानन्द ने सुधारकों के महान् कार्यों का अवमूल्यन तो किया ही वे समय समय पर उनके कार्यों को लेकर व्यर्थ के कटाक्ष करने से भी विरत नहीं हुए। ऐसे आक्षेपपूर्ण कथन अधिकांशत असत्य पर ही आधारित हैं और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को लघुता की दृष्टि से देखते हैं इसकी एक बानगी देखिए—

हमारे सुधारक यह नहीं देखना चाहते कि घाव कहाँ है। परन्तु वे विधवाओं का विवाह करके राष्ट्र की रक्षा करना चाहते हैं। † विवेकानन्द का यह कथन निश्चित रूप से गलत ही है क्योंकि सुधारकों ने सामाजिक दुर्गति के मूल कारण का निदान भी किया है और विधवा विवाह के महत्त्व और समाज में उसकी उपयोगिता को इन सस्ते किस्म के आक्षेपों से नहीं झुटलाया जा सकता।

सच तो यह है कि सामाजिक सुधारों की महत्ता और उपयोगिता को विवेकानन्द ने समझा ही नहीं। यदि वे इस प्रश्न की गुरुता को समझते तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि हमारी सामाजिक दुर्बलताओं का वे समर्थन कदापि नहीं करते। परन्तु उन्होंने तो महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर जो सम्मति दी है वह उलझन भरी ही नहीं नितान्त असन्तोषजनक भी है। सुधारों के मामले में मौन धारण करने का परामर्श देते हुए आपने लिखा 'हमें बाल विवाह निराकरण विधवा विवाह आदि सुधारों के सम्बन्ध में अभी माथापच्ची नहीं करनी चाहिए। * क्यों नहीं करनी चाहिए इसका कोई संतोषजनक उत्तर उनके पास नहीं है।

---

† *पत्रावली–भाग २ पृ० १२*

* *भारतीय नारी पृ० ३४*

अब बालविवाह के समथन मे उनकी एक दलील सुनिये 'मैं यह भी अस्वीकार नही कर सकता कि बालविवाह से जाति अधिक नीतिमान् तथा पवित्र बनती है। † शायद पाठको को यह सुनकर आश्चय हो कि विवेकानन्द जसा प्रगतिशील मस्तिष्क का व्यक्ति भी बालविवाह जसी हानिकर प्रथा का समथन कर सकता है ? परन्तु जब उन्होने सुधारो के लिये पूर्वाग्रह युक्त दृष्टिकोण बना ही लिया तो फिर उनकी लेखनी से कुछ भी लिखा जा सकता था। परन्तु उन्होने यह बताने का कष्ट नही किया कि बालविवाह से जाति किस प्रकार नीतिमान् और पवित्र बनती है। हम तो अब तक यही सुनते रहे हैं कि बालविवाह हमारे युवको मे दुबलता बढाने वाला नीति सदाचार और चरित्र का नाशक तथा व्यभिचार और भ्रूणहत्या का पोषक ही हैं।

इसी प्रसग मे आगे चल कर विवेकानन्द ने एक और भी विचित्र बात लिख दी। अब तक तो मन्वादि धमशास्त्रो के आधार पर हम गृहस्थाश्रम की प्रशसा ही सुनते रहे हैं* और उस गृहस्थाश्रम के आधारभूत विवाह सस्कार के महत्त्व को हृदयगम कराने का प्रयत्न भी सूत्र स्मृति धम-शास्त्रकारो ने कम नही किया है परन्तु विवेकानन्द विवाह के विषय मे एक नवीन अनुसधान करते हैं जब वे कहते है— हमारा धम शिक्षा देता है कि विवाह बुरी चीज है और वह कमजोरो के लिये है। ‡ परन्तु शास्त्रकारो की सम्मति तो इससे

---

† *भारतीय नारी पृ० ५३*

* *यथा वायु समाश्रित्य वतन्ते सवजन्तव ।*
तथा गहस्थमाश्रित्य वतन्ते सव आश्रमा ॥ ३ ७७
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्न न चान्वहम् ।
गहस्थेनव धायन्ते तस्माज्ज्येष्ठा गही मत ॥ ३ ७८
सर्वेषामपि चतेषा वेदस्मतिविधानत ।
गहस्थ उच्यते श्रष्ठ स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥ ६ । ८९

‡ *भारतीय नारी पृ० ८२*

सर्वथा विपरीत ही है। वे तो स्पष्ट कहते है कि अक्षय स्वर्ग के इच्छुक व्यक्ति को प्रयत्नपूर्वक गृहस्थाश्रम धारण करना चाहिए परन्तु यही गृहस्थ दुर्बल प्राणियो के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।‡ हम अब किस बात को प्रमाण मानें मनु के कथन को या विवेकानन्द के कथन को। मनु जिस गृहस्थाश्रम को कमजोरा के अनुपयुक्त बताते हैं उसी आश्रम को विवेकानन्द कमजोरो के लिए ही बताते हैं।

बालविवाह के समर्थन मे अपने एक भाषण मे उन्होने कहा जिन मूल भावो से बाल्यविवाह प्रथा का प्रचलन हुआ है उनके ग्रहण करने ही से यथार्थ सभ्यता का सचार हो सकता है।'* परन्तु वे कौन से मूल भाव हैं जिनसे बाल्यविवाह का प्रचलन हुआ और उससे किस प्रकार यथार्थ सभ्यता का सचार हो सकता है यह वे नही बताते। हमारी सम्मति मे तो यह शब्दाडम्बर के अतिरिक्त कुछ नही है।

विवेकानन्दजी के मस्तिष्क मे जब एक बात बैठ जाती है तो वे उसके औचित्य या अनौचित्य की तनिक भी परवाह किए बिना उसका समर्थन करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बालविवाह के समर्थन मे हम उनकी दो युक्तियाँ सुन चुके। यदि यही युक्तियाँ किसी परवर्ती सनातनधर्मी पण्डित के मुख से हम सुनते तो हमे तनिक भी आश्चर्य नही होता। परन्तु उनके जैसा प्रगतिशील विचारो वाला उदारमना सन्यासी जो सम्पूर्ण साम्प्रदायिक सकीर्णताओ को त्याग कर विदेश मे भारतीय धर्म और संस्कृति का उद्घोष करने के लिये प्रस्तुत हुआ हो वही जब बालविवाह जैसी हानिकर प्रथा का अपनी क्षुद्र युक्तियो से समर्थन करता है तो हमारा आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक ही है।

बालविवाह के समर्थन मे उनकी यह युक्ति भी विचारणीय है। आप

---

‡ स सधाय प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुख चेहेच्छता नित्य योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रिय ॥ ३ ७९

* भारत मे विवेकानन्द पृ० ४३०

लिखते हैं 'यह बात भी मैं अस्वीकार नही कर सकता कि बालविवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व धम से विभूषित किया है। यदि जाति को सतीत्व धम से थोडा बहुत विभूषित करना चाहते हो तो इसी भयानक बाल्य विवाह द्वारा समस्त स्त्री पुरुषो को शारीरिक विषयो मे अधोगामी करना पडेगा।' † सम्पूण शब्दावली अत्यन्त अस्तव्यस्त और निरथक है। वह कौन सा सतीत्व धम है जो बालविवाह से रक्षित रहता है? हमारी सम्मति मे तो जिन अबोध बालक बालिकाओ का विवाह किया जाता है वे सतीत्व धम के शब्दाथ को भी समझने की क्षमता नही रखते फिर यह भी बात समझ मे नही आती कि सतीत्व धम की रक्षा के लिए स्त्री पुरुषो को शारीरिक दृष्टि से अधोगामी क्यो बनाना पडेगा? मनु की दृष्टि मे जो दुबलेन्द्रिय पुरुष गृहस्थाश्रम को धारण करने मे ही नितान्त अयोग्य है वह सतीत्वधम को कसे धारण करेगा? यह सब केवल वाकजाल मात्र है। आश्चय है कि पूर्वाग्रहयुक्त होकर महापुरुषो की श्रेणी मे बिठाए जाने योग्य व्यक्ति भी रूढियो और कदाचारो का किस प्रकार समथन करने लगते हैं।

सुधार आन्दोलन के विषय मे विवेकानन्द की यह सम्मति हमे नितान्त एकागी एव पक्षपातपूर्ण लगती है जब वे कहते हैं कि 'लगभग एक शताब्दी से हमारा देश समाज सस्कारको तथा उनके तरह-तरह के समाज सस्कार सम्बन्धी प्रस्तावो द्वारा आच्छन्न होता रहा है। परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि इस १०० वष के सस्कार आन्दोलन द्वारा समग्र देश का कोई भी स्थाई कल्याण सिद्ध नही हुआ है। गत शताब्दी मे जिन सब सस्कारो के लिए आन्दोलन हुआ है उनमे से अधिकाश दिखावे के ही थे। सस्कार की वे चेष्टायें केवल प्रथम दो वर्णों से सम्बन्धित थी, अन्य वर्णों से नही।'* इस विवेचन के अनन्तर विवेकानन्द ने इस विषय मे निम्न दो

---

† *ज्ञानयोग पृ० ३०*

* *विवेकानन्द चरित पृ० २८३*

सवथा विपरीत ही है। वे तो स्पष्ट कहत है कि अक्षय स्वग के इच्छुक यक्ति को प्रयत्नपूवक गृहस्थाश्रम धारण करना चाहिए, परन्तु यही गृहस्थ दुबल प्राणियो के लिए सवथा अनुपयुक्त है।‡ हम अब किस बात को प्रमाण मानें मनु के कथन को या विवेकानन्द के कथन को। मनु जिस गृहस्थाश्रम को कमजोरो के अनुपयुक्त बतात हैं उसी आश्रम को विवेकानन्द कमजोरो के लिए ही बताते हैं।

बालविवाह के समथन मे अपने एक भाषण मे उन्होने कहा जिन मूल भावो से बाल्यविवाह प्रथा का प्रचलन हुआ है उनके ग्रहण करने ही से यथाथ सभ्यता का सचार हो सकता है।'* परन्तु वे कौन से मूल भाव हैं जिनसे बाल्यविवाह का प्रचलन हुआ और उससे किस प्रकार यथाथ सभ्यता का सचार हो सकता है यह वे नही बताते। हमारी सम्मति मे तो यह शब्दाडम्बर के अतिरिक्त कुछ नही है।

विवेकानन्दजी के मस्तिष्क मे जब एक बात बठ जाती है तो वे उसके औचित्य या अनौचित्य की तनिक भी परवाह किए बिना उसका समथन करने के लिए तयार हो जाते हैं। बालविवाह के समथन मे हम उनकी दो युक्तियाँ सुन चुके। यदि यही युक्तियाँ किसी परवर्ती सनातनधर्मी पण्डित के मुख से हम सुनते तो हम तनिक भी आश्चय नही होता। परन्तु उनके जसा प्रगतिशील विचारो वाला उदारमना सन्यासी जो सम्पूण साम्प्रदायिक सकीणताओ को त्याग कर विदेश मे भारतीय धम और सस्कृति का उद्घोष करने के लिये प्रस्तुत हुआ हो वही जब बालविवाह जसी हानिकर प्रथा का अपनी क्षुद्र युक्तियो से समथन करता है तो हमारा आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक ही है।

बालविवाह के समथन मे उनकी यह युक्ति भी विचारणीय है। आप

---

‡ *स सधाय प्रयत्नेन स्वगमक्षयमिच्छता।*
सुख चेहेच्छता नित्य योऽधार्यो दुबलेन्द्रिय॥ ३ ७९

* *भारत मे विवेकानन्द पृ० ४३०*

लिखते हैं, 'यह बात भी मैं अस्वीकार नही कर सकता कि बालविवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व धम से विभूषित किया है। यदि जाति को सतीत्व धम से थोडा बहुत विभूषित करना चाहते हो तो इसी भयानक बाल्य विवाह द्वारा समस्त स्त्री पुरुषो को शारीरिक विषयो मे अधोगामी करना पडेगा।"† सम्पूण श दावली अत्यन्त अस्तव्यस्त और निरथक है। वह कौन सा सतीत्व धम है जो बालविवाह से रक्षित रहता है? हमारी सम्मति मे तो जिन अबोध बालक बालिकाओ का विवाह किया जाता है वे सतीत्व धम के शब्दाथ को भी समझने की क्षमता नही रखते फिर यह भी बात समझ मे नही आती कि सतीत्व धम की रक्षा के लिए स्त्री पुरुषो को शारीरिक दृष्टि से अधोगामी क्यो बनाना पडेगा? मनु की दृष्टि मे जो दुबलेद्रिय पुरुष गृहस्थाश्रम को धारण करने मे ही नितान्त अयोग्य है वह सतीत्वधम को कसे धारण करेगा? यह सब केवल वाकजाल मात्र है। आश्चय है कि पूर्वाग्रहयुक्त होकर महापुरुषो की श्रेणी मे बिठाए जाने योग्य व्यक्ति भी रूढियो और कदाचारो का किस प्रकार समथन करने लगते हैं।

सुधार आ दोलन के विषय मे विवेकान द की यह सम्मति हमे नितान्त एकागी एव पक्षपातपूण लगती है जब वे कहते हैं कि 'लगभग एक शताब्दी से हमारा देश समाज सस्कारको तथा उनके तरह-तरह के समाज सस्कार सम्ब धी प्रस्तावो द्वारा आच्छन्न होता रहा है। पर तु साथ ही यह भी स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि इस १०० वष के सस्कार आ दोलन द्वारा समग्र देश का कोई भी स्थाई कल्याण सिद्ध नही हुआ है। गत शताब्दी मे जिन सब सस्कारो के लिए आ दोलन हुआ है उनमे से अधिकाश दिखावे के ही थे। सस्कार की वे चेष्टाय केवल प्रथम दो वर्णों से सम्ब धित थी अन्य वर्णों से नही।'* इस विवेचन के अन तर विवेकानन्द ने इस विषय मे निम्न दो

---

† *ज्ञानयोग पृ० ३०*

* *विवेकान द चरित पृ० २८३*

निष्कष निकाले है—(१) इस सस्कार युग का कोई ऐतिहासिक बोध नही है। (२) यह सस्कारयुग इस बात को बिल्कुल नही समझ रहा है कि हिन्दू राष्ट्र कितनी बडी सभ्यता का वशधर है। * उनका तृतीय निष्कष ब्राह्म नेता केशवचन्द्रसेन के विषय मे है जिसकी चर्चा हम इसी अध्याय मे आगे चलकर करेंगे।

सस्कार युग की सफलता या असफलता के लिए हम दूर क्यो जायें ? क्या हमारे लिए इतना जानना ही पर्याप्त नही है कि आज लोगो मे जो कुछ प्रगतिशीलता सामाजिक रूढियो और अन्धविश्वासो के प्रति अश्रद्धा तथा परिमार्जित एव सस्कृत रुचि हम देख रहे हैं वह सस्कार युग की ही देन है। फिर सस्कार युग का कोई कटु आलोचक भी यह कहने की क्षमता कसे कर सकता है कि सस्कार आन्दोलन द्वारा देश का कोई स्थाई कल्याण सिद्ध नही हुआ है। सस्कार आन्दोलन ने देश को जो कुछ दिया है वह प्रत्यक्ष है। बाल्यविवाह जैसी अनथमूलक प्रथा का उन्मूलन विधवा विवाह की आवश्यकता का प्रतिपादन समाज के दलित वग के प्रति सहानुभूति का व्यवहार शताब्दियो से तिरस्कृत और उपेक्षित नारी जाति का उत्थान आदि तो स्पष्ट ही सस्कार युग की प्रत्यक्ष उपलब्धिया है। फिर हम तो यहाँ तक कहने की आज्ञा चाहेगे कि देश मे राष्टीय स्वाभिमान और राजनतिक चेतना के बीजो का वपन भी सुधार युग मे ही हुआ। आज इतिहासकार इस तथ्य को सवसम्मत होकर स्वीकार करने लगे है कि यदि आयसमाज ने देश मे राष्टीय चेतना की शक्ति को उद्बुद्ध न किया होता तो राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) को अपने काय मे सफलता प्राप्त करने मे कठिनाई होती। इन तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए यह कोई कसे कह सकता है कि सुधार आन्दोलन सवथा निष्फल हुआ अथवा उससे देश का हित साधन नही हुआ।

फिर विवेकानन्द का यह कथन भी सत्य से अत्यन्त दूर ही है कि

---

* *विवकानन्द चरित पृ० २८५*

इस युग के अधिकाश सस्कार दिखाने के लिए ही थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षपकर्ता उस युग को सहानुभूतिपूवक नही देख सका है और न उसे उस युग की सफलताओ का ही ज्ञान है। अन्यथा उन्हे यह स्पष्ट दिखाई देता कि सस्कार आन्दोलन का स्थायी प्रभाव देशवासियो पर पडा है और जिन्होने उस विचारधारा को अपनाया है वे सर्वात्मना अपने जीवन मे परिवतन लाने मे सफल हो गये हैं। उत्तर भारत के जनमानस को प्रभावित करने वाला आन्दोलन बहाना मात्र ही नही था और न वह दिखाया या आडम्बर ही था। यह कथन तो और भी विचित्र है कि सस्कार की चेष्टायें केवल प्रथम दो वर्णों से ही सम्बन्धित थी अन्य वर्णों स नही। सम्भवत विवेकानन्दजी को यह पता नही कि स्वामी दयानन्द ने शूद्र वग के अभ्युत्थान के लिए क्या कुछ किया। यहाँ इतना स्थान नही है कि हम यह विस्तारपूवक वता सके कि आयसमाज आदि सुधारक सस्थाओ ने दलित वग की उन्नति के लिये कितना काम किया। लगभग सभी विचारशील लोगो ने आयसमाज के एतद् विषयक काय का प्रशस्तिगान किया है। अत यह कहने का क्या अथ है कि सस्कार की चेष्टायें केवल प्रथम दो वर्णों तक ही सीमित रही?

अब हम विवेकानन्द द्वारा प्रकट किये गये उन निष्कर्षों की परख करे जो उन्होने सस्कारयुग विषयक अपने परिशीलन के अनन्तर व्यक्त किये हैं। वे कहते है कि इस सस्कारयुग का कोई ऐतिहासिक बोध नही है। अगर इसका यह तात्पय है कि सस्कार युग के ज्योतिधर महापुरुषो के पास ऐतिहासिक दृष्टि नही थी अथवा उन्होने जो कुछ किया वह ऐतिहासिक परम्पराओ से सवथा विच्छिन्न होकर किया तो यह समझना त्रुटिपूण होगा। सस्कार युग के प्रतिष्ठाताओ ने इतिहास का पूर्वापर विचार करने के अनन्तर ही अपनी उपपत्तियो और स्थापनाओ को समाज के सम्मुख अपनाने के लिए प्रस्तुत किया। और यह कहना तो नितान्त सत्य का अपलाप करना ही है कि सस्कार युग के लोग यह नही समझ सके कि हिन्दू राष्ट्र कितनी बडी सभ्यता का वशधर है। इसके विपरीत हम तो यहाँ तक कहना चाहेगे कि इसे केवल सुधारको ने ही

समझा कि हिन्दू राष्ट्र की पुरातन सभ्यता कितनी गौरवपूर्ण है और उसकी परम्परायें कितना महनीय और उदात्त हैं। हा यह अवश्य है कि सुधारक वर्ग के लोगो ने केवल पुरानी होने से ही किसी वस्तु को उचित और श्रेयस्कर नही समझ लिया अपितु देश काल और पात्र के अनुसार विचार करने के अनन्तर ही अपना मत और दृष्टिकोण बनाने का आग्रह किया।

विवेकानन्द ने सुधार आन्दोलन की असफलता का डिंडिमघोष करने मे कोई कसर नही रक्खी यह हमने ऊपर के उद्धरणो मे देखा परन्तु उसमे सत्यका अश अत्यन्त अल्प है। अब हम यह देखे कि सुधारको की इस तथाकथित असफलता का वे क्या कारण बतलाते हैं? क्योकि यदि वस्तुत वे सुधारको की असफलता के वास्तविक कारण को जान लेते हैं तो हम उन्ही से यह आशा रख सकते हैं कि सुधारको मे पाई जाने वाली त्रुटियो का परिमाजन वे स्वय कर सकेंगे और उनके द्वारा वह शेष काय पूरा हो सकेगा जिसे करने मे सुधारक लोग असफल रहे। विवेकानन्द के शब्दो मे ही सुनिये सुधारकगण असफल हुए है—इनका क्या कारण है? कारण यह है कि उनमे से बहुत ही कम व्यक्तियो ने अपने धम का भलीभाँति अध्ययन या चिंतन किया है और उनमे से एक ने भी सब धर्मों को जन्म देने वाले को समझने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है उस साधना का अनुष्ठान नही किया है। ईश्वर की कृपा से मैं दावे से कहता हू कि मैंने इस समस्या को हल कर लिया है।'* विवेकानन्द के इस कथन मे तो कोई अधिक सार नही है कि सुधारक लोगो ने अपने धम का अध्ययन और चिंतन नही किया था। इसके विपरीत हम तो यहाँ तक कहने के लिए तत्पर हैं कि सुधारको ने अपने सुधार रूपी भवन की आधारशिला ही धम को बताया था। राममोहनराय ने उपनिषद् प्रतिपादित विशुद्ध आध्यात्मिक धम के आधार पर ब्राह्मसमाज की

---

* विवकानन्द चरित पृ० ३७

नीव खडी की। स्वामी दयानन्द ने अपनी सम्पूण प्रवृत्तियो का मूल उत्स वेद को ठहराया और प्रत्येक वेदमूलक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। इस स्थिति मे यह कसे कहा जा सकता है कि सुधारको को अपने धम का ज्ञान नही था।

परन्तु बात कुछ दूसरी ही है। विवेकानन्द कहना यह चाहते हैं कि सफलता उसी का मिलेगी जो सब धर्मों को जन्म देने वाले को समझता है और वे अत्यन्त विनम्रता पूवक कहते हैं कि सब धर्मो को जन्म देने वाले के रहस्य को उन्होने समझ लिया है अत उनके द्वारा ही देश समाज और जाति का कल्याण हाना सुनिश्चित है। अब हम यह देखें कि यह सब धर्मों को जन्म देने वाला क्या है? इसका उत्तर हमे उनके एक वार्तालाप के प्रसग मे मिलता है जहाँ वे कहते हैं— भारतवष के किसी स्थान मे जब ऐसे किसी सुधारक सम्प्रदाय या धम का उत्थान हुआ जो कि वेदान्त के आदर्शों को मानने को तयार नही था तो उसका तत्काल ही लोप हो गया।'* तो अब यह रहस्य प्रकट हुआ कि जिसे विवेकानन्द ने सब धर्मों को जन्म देने वाला' कहा वह है—वेदान्त और उनके अनुसार जब तक कोई सुधारक वेदान्त के आदश को अपनाकर काय करने के लिए तयार नही तब तक उसे सफलता नही मिल सकती। परन्तु हमारा निवेदन है कि क्या किसी दाशनिक सिद्धान्त विशेष को अपनाने से ही सुधारक को अपनी सफलता का परवाना मिल जाता है। सम्भवत दाशनिक दृष्टिकोण सुधार के काय मे उतना अधिक साधक या बाधक नही बनता जितना कि सुधारक का व्यक्तित्व उसकी ईमानदारी उसका निस्वाथ परिश्रम और सर्वोपरि उसका त्याग। यदि वेदान्त को अपना लेने से ही राष्ट्र और जाति की सभी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं तो क्या हिन्दू लोग शताब्दियो से वेदान्त के महावाक्यो का पाठ नही करते रहे? फिर भी वे क्यो विदेशियो से त्रस्त दलित और पीडित रहे। कहना ही होगा कि विवेकानन्द के दृष्टिकोण म कही काई त्रुटि अवश्य है अन्यथा जिस वेदान्त

---

* स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप प० ६६

के सहारे उन्होने देश का कायाकल्प कर देने की प्रतिज्ञा की थी वह कालान्तर मे उनके पौरस्त्य और पाश्चात्य भक्तो मे केवल एक आडम्बरपूण शब्दजाल मात्र ही नही रह जाता और उसके द्वारा कोटि कोटि जनता के दु ख दारिद्रय विपत्ति और कष्टो का त्राण अवश्य होता।

सुधारो की असफलता का एक कारण उन्होने वेदान्त के सिद्धान्त को अस्वीकार करना बताया है। एक दूसरा कारण भी वे बतलाते हैं। उन्ही के शब्दो मे सुनिए— समाज पर अग्निमय अभिशापो की वर्षा कर प्रत्येक आचार व्यवहार की कडी आलोचना द्वारा किसी प्रकार का सुधार सम्भव नही है। इसके लिए तो असीम प्रेम तथा धय की आवश्यकता है। * इस बात से कोई सहमत नही होगा कि केवल आलोचना और कटु शब्दो का प्रयोग ही सुधार का एक मात्र जनक है। परन्तु इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि कभी-कभी सुधारक को अपनी वाणी मे कठोरता लानी ही पडती है। यद्यपि उसका अन्तर स्नेहसिक्त होता है परन्तु उसकी वाणी बुराइयो अनाचारो और अन्धविश्वासो को नष्ट करने के लिए कभी कभी अग्निवर्षा भी करने लगती है। परन्तु हम सुधारक की उस शब्दावली से ही उसके आन्तरिक अभिप्राय को कसे समझ सकते हैं? नीतिकारो ने **सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात्** कहा तो यह भी कहा **'अप्रियस्य पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुलभ** । ऐसी स्थिति मे विवेकानन्द का सुधारक वग पर यह आरोप कि वह समाज पर अग्निमय अभिशापो की वृष्टि करते हैं एकान्तत सत्य प्रतीत नही होता। यह बात नही कि आलोचना के महत्त्व को विवेकानन्द ने स्वीकार न किया हो उन्होने लिखा है— ससार को समय समय पर समालोचना कठोर समालोचना की भी जरूरत होती है। परन्तु उन्हे खेद इस बात का है कि "पिछले सौ वष से हमारे देश मे सवत्र समालोचना की बाढ सी आ गई है।"†

** विवेकानन्द चरित पृ० १३३*

† हिन्दू धम पृ० ५६

ऐसा कहते समय वे यह भूल गए कि लगभग सभी सुधारको ने रूढियो और कुसस्कारो की आलोचना करते समय अपनी वाणी को परुष बनाया है। शकर दिग्विजय मे वेदान्त से भिन्न मतो के प्रति जिस वाक्यावली का प्रयोग हुआ है उसे आप शिष्ट भाषा तो नही कह सकते। कबीर आदि निगुणी सन्तो की वाणी भी धार्मिक और सामाजिक मिथ्याचारो की आलोचना करते समय कितनी तिक्त हो गई है इसे सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है! फिर सुधारको के प्रति ही इतना आक्रोश क्यो? और सच पूछा जाय तो जिस व्यक्ति के हृदय मे दुदशाग्रस्त धम और समाज क लिए तनिक भी पीडा होगी वह शब्दो की कठोरता या कोमलता की तनिक भी चिन्ता किए बिना यथाथ बात को निस्सकोच रूप मे प्रकट किए बिना नही रहेगा।

हम अधिक दूर क्यो जाँय? स्वय विवेकानन्द ने भी अपने लेखो और भाषणो मे कही कही गतानुगतिकता रूढिवादिता और अन्धपरम्परा पर जो कठोर वाकप्रहार किया है वह सहज ही भुला देने की वस्तु नही है। उन्होने भारतीय धम और समाज की वतमान अधोगति के लिए पुरोहित वग को (जिसे स्वामी दयानन्द पोप कहते हैं) उत्तरदायी ठहराया है। इस सकीण हृदय पुरोहित वग ने जब धम को छुवाछूत बाह्याचारो और आडम्बर पूण कमकाण्डो मे ही सीमित कर दिया तो विवेकानन्द का सात्त्विक रोष उमड पडा। उन्हे इस पुरोहितशाही की तीखी आलोचना करने के लिए बाध्य होना पडा। हम उनकी रचनाओ से कुछ ऐसे उद्धरण प्रस्तुत करेगे जिससे यह भली भाति सिद्ध हो जायगा कि सुधारको की तरह ही विवेकानन्द की वाणी भी अन्याय अत्याचार और पाखण्ड का खण्डन करते समय उतनी ही उग्र हो जाया करती थी। अत उनका यह आक्षप अधिक सारयुक्त प्रतीत नही होता, जब वे सुधारक वग पर कठोर आलोचना करने का आरोप लगाते हैं।

अब विवेकानन्द के कुछ उग्र खण्डन के नमूने देखिए। पुरोहितो के प्रति उनका आक्रोश तो यत्र तत्र अनेक स्थानो पर उमड पडा है। एक पत्र मे वे लिखते हैं—'उन पाखण्डी पुरोहितो को जो सदैव उन्नति के माग मे बाधक

होते हैं, निकाल बाहर करो। क्योकि उनका कभी सुधार नही होगा उनके हृदय कभी विशाल न होगे।' ❀ अन्यत्र उन्होने पौरोहित्य प्रथा के विषय मे लिखा है—'पौरोहित्य की बुराइयो को ऐसा धक्का देना होगा कि वे चकराती हुई एकदम एटलान्टिक महासागर मे जा गिरें। + एक अन्य स्थान पर उन्होने पौरोहित्य को ही भारत की अधोगति का मूल कारण माना है। विवेकानन्द की हम उन प्रसिद्ध पक्तियो को भी उदधृत करने का लोभ सवरण नही कर सकते जिसमे उन्होने कहा है— हम हिन्दू भी नही हैं और वेदान्तिक भी नही असल मे हम हैं छुआछूत पथी। रसाई घर हमारा मन्दिर है पकाने का बतन हमारा उपास्य देवता है तथा मत छुओ ‡ मन्त्र है।× प्रकारान्तर से यही बात उन्होने अन्यत्र भी कही है— हम तो केवल मत छुओ वादी हैं। हमारा धम रसोई घर मे है। पकाने का बतन हमारा इश्वर है और मुझको मत छूना मैं पवित्र हू यही हमारा धम है। * अपने एक याख्यान मे भी उन्हाने यही बात कही हममे से अधिकाश मनुष्य इस समय न तो वदान्तिक हैं न पौराणिक और न तान्त्रिक हम हैं छूत धर्मी' अर्थात् हमे न छुओ इस धम के मानने वाले। हमारा ईश्वर है भात की हाण्डी और मन्त्र है हमे न छुओ। †

❀ पत्रावली भाग १ पृ० ६५

+ पत्रावली भाग १ पृ० १५४

‡ विवकानन्द चरित पृ० ३३२

× प्राच्य और पाश्चात्य पृ० २४

* हमारा भारत पृ० ३२

† *He poured vitals of wrath on the priest superstition hypocritical educated classes whose God is the kitchen and whose religion is Don t touchism*

भारत मे विवकानन्द पृ० ८६

खान पान मे छुआछूत के इस अनावश्यक पाखण्ड ने हिन्दू जाति का कितना अकल्याण किया है यह किसी से छिपा नहीं है। इस चौके चूल्हे के चक्कर मे पडकर ही मराठो ने पानीपत के ततीय युद्ध मे पराजय का मुँह देखा। नौ कनौजिये और दस चूल्हे वाली कहावत हमारी इस मूढता पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। स्वामी दयानन्द ने भी सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण मे इसका तीव्र खण्डन करते हुए लिखा है— इसी मूढता से इन लोगो ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य आनन्द धन राज्य विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं।'‡

वस्तुत विवेकानन्द भी अपने अन्तस्तल मे यह अनुभव करते थे कि समाज की प्रगति मे बाधक कुरीतियो और अन्धविश्वासो का परित्याग किये बिना हमारा निस्तार नही है। तभी तो एक स्थान पर उन्होने कहा 'यदि हम देखें कि परम्परा प्राप्त आचार नियम समाज के विकास व परिपुष्टि के पथ मे विघ्न उत्पन्न कर रहे है यदि वे हमारी विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति मे रोडे के सदृश हैं तो हम जितना शीघ्र उनका त्याग कर दें उतना ही अच्छा है। *

यह खण्डन आवश्यक ही नही अपरिहार्य भी था। यहाँ समझौते से काम नही चल सकता था और विवेकानन्द ने भी अन्यान्य क्रान्तिकारी सुधारको की भाति समझौते का मार्ग भी नही अपनाया। वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा विषमता व भेदभावपूर्ण कदाचार का सम्पूर्ण विरोध करते हुए उन्होने कहा नही समझौता नही लीपा पोती नही सडे गले मुर्दों को फूलो से न ढको। † सुधारक का कार्य एक निर्मम सर्जन (शल्य चिकित्सक) का कार्य होता है। वह जानता है कि जिस मवाद ने शरीर को रोगी और विकृत बना

---

‡ *सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास पृ० ३५२*

* *विवेकानन्द चरित पृ० १६८*

† *विवेकानन्द चरित पृ० ३७६*

दिया है वह जब तक शल्य क्रिया के द्वारा शरीर के बाहर नही निकाल दिया जाता तब तक शरीर का स्वस्थ होना सम्भव नही है। इस चीरफाड को करते समय यदि वह रोगी की क्षणिक चिल्लाहट तथा उसके वदनापूण ऋ दन पर रहम खाकर अपना काय बन्द कर दे तो निश्चय ही वह रोगी का हितचिंतन नही करेगा। इसी प्रकार का आवश्यक परन्तु निमम कृत्य सुधारक को करना पडता है। इसे भी समाज के शरीर को विकृत करने वाले कुरीति और कदाचाररूपी व्रणो को फोडकर अस्वास्थ्य के मवाद को निकालना ही पडता है। सुधारक के इस कृत्य की आवश्यकता और महत्ता विवेकानन्द ने भी स्वीकार की है। उन्होने अपने एक व्याख्यान मे कहा हमारे बहुतेरे कुसस्कार हैं हमारी देह पर बहुत से काले धब्बे तथा हानिकारक घाव है—इनको काट और चीरफाड कर एकदम निकाल देना होगा। व्यक्तिश विवेकानन्द भी कुसस्कारो और अन्धविश्वासो की कदथना करने मे किसी भी सुधारक से पीछे नही रहे है। उन्होने यह भी स्वीकार किया है कि अन्याय अत्याचार और मिथ्या विश्वासो से मधुर व्यवहार नही किया जा सकता। तब हमे कठोर बनना ही पडता है। सत्य के माग पर चलते हुये चाहे कितनी ही विपत्तिया क्यो न आये उन्हे झेलना ही होगा। अपने एक पत्र मे उन्होने लिखा मैं मधुर बनने का भरसक प्रयत्न करता हू परन्तु जब अन्तरस्थ सत्य से विकट समझौता करने का अवसर आता है तब मैं रुक जाता हू। * पुन उन्होने लिखा प्रत्येक कलुषित असत्य के प्रति मैं मधुर और अनुकूल नही बन सकता हू। † और अन्त मे मुझे ससार से मधुर व्यवहार करने का समय नही है और मधुर बनने के प्रत्येक यत्न से मैं कपटी बनता हू। स्वदेश हो या विदेश परन्तु इस मूख ससार की प्रत्येक आवश्यकता पूरी करने की अपेक्षा मैं

** पत्रावली भाग २ पृ० ७०*

† पत्रावली भाग २ पृ० ७१

सहस्र बार मरना अच्छा समझता हू। ‡ **न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा** " का सिद्धात समक्ष रखने वाले स्वामी दयानन्द भी तो इसी पथ के पथिक थे। जब जोधपुर के लिये प्रस्थान करते समय उनके शुभचितको ने कहा कि महाराज जिस देश म आप जा रहे हैं वहा अविद्या और अज्ञान का अधकार छाया है। वहाँ के लोग हित की बात कहने वाले को भी हानि पहुँचाये बिना नही रहते अत आपका वहा जाना श्रेयस्कर नही होगा। उस समय स्वामी दयानन्द न निभय होकर जो उत्तर दिया वह भी तो सत्य के प्रति उनके निमम आग्रह का ही सूचक था। उन्होने कहा यदि वहा के निवासी मेरी अगुलियो को बत्ती बना कर जला भी दें तो भी मैं सत्य के कहने से मुँह नही मोड़ूँगा। विवेकानन्द और दयानन्द के कथन और आचरण मे कहाँ अतर है ?

यहाँ एक अन्य महत्त्वपूण प्रासगिक विषय पर भी विचार कर लेना असमीचीन न होगा। अक्सर सुधार विरोधी लोग पुरातन अधविश्वासा और मिथ्या कुरीतियो की आधुनिक विज्ञान और तक से युक्त व्याख्या करने मे अपना अधिकाश समय और शक्ति नष्ट करते हैं। जब से ब्रह्मसमाज, आय-समाज आदि सुधारवादी आन्दोलनो ने हमारे सामाजिक मिथ्या विश्वासो और हमारी मूढ धारणाओ की कटु आलोचना करनी आरम्भ की तभी से देश मे एक ऐसा वग भी उत्पन्न हो गया है जो अनेक प्रकार की क्लिष्ट कल्पनाओ का सहारा लेकर अपनी ऊहा शक्ति के बल पर इनका वज्ञानिक अथ निकालने की चेष्टा करता रहता है। उनकी दृष्टि मे हमारे देश के प्रत्येक विचार और व्यवहार मे कोई प्रच्छन्न श्रेष्ठता छिपी रहती है चाहे हम उसके रहस्य से अवगत न हो। ऐसे व्यक्ति देवता के चरणामृत को सब प्रकार के रोगो की औषधि मानते हैं। उनकी दृष्टि म खजुराहो के तथा पुरी के मन्दिरो के अश्लील चित्र

---

‡ पत्रावली भाग २ पृ० ७३

भी कारण विशेष से निर्मित होने के कारण हेय नही है । सुधारवाद के सिद्धान्तो से ऐसे व्याख्यावादियो का मौलिक विरोध है यह तो स्पष्ट ही है ।

हमे यहा यह लिखने मे तनिक भी सकोच नही कि हमारे धर्म के अनेकानेक प्राचीन मिथ्याविश्वासो के प्रति किसी कारण विशेष से श्रद्धा व्यक्त करने के उपरान्त भी स्वामी विवेकानन्द को रूढि और कदाचारो की इस तथाकथित वैज्ञानिक व्याख्या से कोई सहानुभूति नही थी । उन्होने एकाधिक स्थानो पर व्याख्याकारो की आलोचना की है । अपने एक पत्र मे स्वामीजी ने इन लोगो की बडी मनोरजक समीक्षा की है । वे लिखते है— १४ बार हाथ पर मिट्टी न लीपने से १४ पुरखे नरक को जाते है या २४ ? इन सब कठिन प्रश्नो की वैज्ञानिक व्याख्याये महाराज आज २००० वर्ष से कर रहे है । ८ वर्ष की लडकी से ३० वर्ष के एक जवान का ब्याह कराकर लडकी के मातापिता फूले न समाते । ६ वर्ष की लडकी के गर्भाधान की जो महाशय वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं उनका धर्म कैसा है ? * जो लोग बालविवाह के प्रचलन को यह कहकर निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा करते है कि वह तो मुसलमानो से अपनी कन्याओ के सतीत्व की रक्षा करने का आयोजन मात्र था अत यह एक सामयिक व्यवस्था होने के कारण क्षम्य है—ऐसे लोगो से विवेकानन्द पूछते है— क्योजी मुसलमानो का ही दोष है न ! सब गृह्य सूत्रो को पढकर तो देखो कि जब तक **हस्तात् योनिं न गूहति** ' तभी तक कन्या है । इससे पूर्व ही उसका ब्याह कर देना चाहिए । सारे गृह्यसूत्रो की यही आज्ञा है । † इस कथन मे जो व्यग्य है उसे पाठक समझते होगे । स्वामीजी यह कहना चाहते हैं कि बालविवाह की आज्ञा जब तुम्हारे गृह्यसूत्रादि कर्मकाण्ड के ग्रन्थो मे ही लिखी है तब व्यर्थ ही मुसलमानो की आड लेकर उसकी सामयिक उपयोगिता या तत्कालीन आवश्यकता का ढिंढोरा क्यो पीटते हो ?

** पत्रावली भाग १ पृ० २०८*

† पत्रावली भाग १ पृ० २०६

इसी प्रकार ऊलजलूल पौराणिक कथाओ से नीति की शिक्षा निकालने वाले तथा जटिल योगक्रियाओ से मनोविज्ञान के तथ्यो का पता लगाने वालो को ही लक्ष्य म रखकर उन्होने एक अन्य पत्र मे लिखा अत्यन्त उलझी हुई पौराणिक कथाओ मे से साकार नीति के नियम निकालने हैं और बुद्धि को बहकाने वाली योगविद्या से अत्यन्त वैज्ञानिक और क्रियात्मक मनोविज्ञान का विकास करना है। * इस प्रकार के प्रयत्नो को स्वामी विवेकानन्द बहुत बुरा समझते थे और उनकी निन्दा करने से भी विरत नही होते थे। अन्यत्र उन्होने लिखा है पुरातन पौराणिक घटनाओ को रूपक के आकार म चिरस्थायी करने की चेष्टा करने से एव उन्हे अत्यधिक महत्त्व दने से कुसस्कार की उत्पत्ति होती है और यह सचमुच दुबलता है। सत्य के साथ कभी भी और किसी प्रकार का समझौता नही होना चाहिए। सत्य का उपदेश दो और किसी प्रकार से भी कुसस्कार के पक्ष मे युक्ति देने की चेष्टा मत करो अथवा शिक्षार्थी की धारण शक्ति को उपयोगी बनाने के लिए सत्य को तोडमरोड कर नीचे लाने की कोशिश मत करो। † इतने स्पष्ट विचार रखते हुए भी यदि कोई विवेकानन्द को गतानुगतिकता का पोषक कहे तो आश्चय ही होगा।

अपने एक भाषण म विवेकानन्द ने उन लोगो का उपहास किया है जो लोग शौचाचार को अत्यन्त महत्त्व देते है तथा उसकी उपयोगिता और महत्ता पर भी जोर देते है। उन्होने कहा गत ६–७ सदियो तक के लगातार पतन पर विचार करो—जब कि पुख्ता मगजवाले सैकडो आदमी सिफ इस विषय को लेकर वर्षो तक करते रह गये कि लोटा भर पानी दाहिने हाथ से पिया जाय या बाये हाथ से हाथ चार बार धोया जाय या पाँच बार और कुल्ला पाच दफे करना ठीक है या छ दफे। ऐसे अनावश्यक प्रश्नो के लिये तक पर तुले हुये जिन्दगी की जिन्दगी पार कर देने वाले और इन विषयो पर अत्यन्त

---

* पत्रावली भाग—२ पृ० १२८

† देववाणी पृ० १६१

गवेषणापूर्ण दर्शन लिख देने वाले पण्डितो से और क्या आशा कर सकते हैं ? ‡ कुरूढियो और कुसस्कारो के दूत तथाकथित वैज्ञानिक व्याख्याकारो की सामान्य आलोचना करके ही विवेकानन्द सन्तुष्ट नही हो गये कही कही तो उन्होने अत्यन्त आक्रोशपूर्ण स्वर म ऐसे लोगो को धिक्कृत किया है जो इस प्रकार के मिथ्या वाग्जाल का सहारा लेकर रूपकमयी आलकारिक व्याख्याओ के द्वारा असत्य अशिव और असुन्दर पर पर्दा डालने का जघन्य प्रयास करते हैं। एक व्याख्यान मे उन्होने कहा मानव जाति को धिक्कार है कि सतेज मस्तिष्क वाले मनुष्य इन कुसस्कारो पर अपना समय गवा रहे हैं दुनिया के सडे से सडे कुसस्कारो की रूपक व्याख्या करने मे समय नष्ट कर रहे है। * अन्त मे उन्होने कहा हमे शास्त्रो की विकृत व्याख्या करने की आवश्यकता नही है। किसी प्रकार की असाधुता का सहारा लकर धर्म की व्याख्या करने की क्या जरूरत है ? व्याकरण के दाँव पेच दिखाने से क्या फायदा ? † अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नही। उपर्युक्त उद्धरण ही इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि विवेकानन्द को यह कदापि अभीष्ट नही था कि वैज्ञानिकता का सहारा लेकर रूढिवाद और मिथ्याचार की वकालत की जाय।

थोडा विषयान्तर हो गया। हम इस बात पर विचार कर रहे थे कि ढोग और पाखण्ड के खण्डन मे विवेकानन्द ने भी वही आक्रोशपूर्ण तीखी और मर्मभेदी भाषा प्रयुक्त की है जो हमारे अन्तरतम तक पैठकर मर्म को स्पर्श कर सके। ऐसा करने मे उन्होंने न तो किसी प्रकार का सकोच ही किया और न लिहाज ही। बिना लागलपेट के सीधी और खरी बात कहने मे भारत का सन्यासी वर्ग कभी पीछे नही रहा। विवेकानन्द ने तो एक स्थान पर कहा है

---

‡ *भारत मे विवेकानन्द पृ० ९४*

* *भारत मे विवेकानन्द पृ० २४२*

† *भारत मे विवेकानन्द पृ० ४१५*

अरे श्रीरामकृष्ण कहा करते थे लोग तो मानो कीडे हैं। इसका मतलब जानते हो न? काम काचन के क्रीत दासगण क्या कहते हैं और क्या नही उस पर ध्यान नही देना। स यासियो को उससे विचलित होना कदापि उचित नही। *

यह सब कुछ तो ठीक पर तु जसा कि अ यत्र भी हमने देखा वदतो-याघात तो एक ऐसा दोष हैं जो विवेकान द के कथनो मे हमे पदे पदे उपलब्ध होता है। यदि ऐसा न होता तो सीधी और सच्ची बात कहने का दावा करने वाले और निस्सकोच भाव स सामाजिक मिथ्याचारो का खण्डन करने के लिए प्रेरणा करने वाले स्पष्टवक्ता स यासी विवेकान द अपने एक शिष्य किडी को एक पत्र मे यह कदापि नही लिखते जातिभेद के पक्ष मे या विरुद्ध कुछ मत कहना और किसी सामाजक कुरीति के विरुद्ध भी कुछ कहने की जरूरत नही † एक अ य पत्र मे उन्होने लिखा बुराइयो और कुसस्कारो के विषय मे न अच्छा कहो न बुरा।' ‡ वार्तालाप के एक अन्य प्रसग मे भी उ होने यही कहा प्राचीन रीतियो के वृथा खण्डन से समाज तथा देश की उन्नति होनी सम्भव नही है। ×

अपने एक व्याख्यान मे भी उन्होने यही बात कही कुसस्कारपूण और बेकार प्रथाओ के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो क्योकि उनके द्वारा भूतकाल मे हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है।'+ यदि वादितोष याय से यह मान भी लिया जाय कि भूतकाल मे इन कुप्रथाओ से

---

* *विवकान द चरित पृ० ११६*

† *पत्रावली भाग १ पृ० १०८*

‡ *पत्रावली भाग २ पृ० २०६*

× *विवकान दजी के सग मे पृ० ३१*

\+ *भारत मे विवेकान द पृ० १३१*

हमारा लाभ हुआ था परन्तु इसमे क्या औचित्य है कि अब भी हम वानरी के मृतशावक के तुल्य ही उन्हे अपने गले से लिपटाये रक्खे जब कि सब जानते हैं कि वर्तमान में ये प्रथायें हमारे लिए हानिकर सिद्ध हो रही है।

वस्तुत बात यह है कि सुधार आन्दोलनो के प्रति विवेकानन्द का दृष्टिकोण कभी भी उदारतापूर्ण नही रहा। सुधार कार्यों का ठीक ठीक महत्त्व जानना शायद उनके बस का रोग नही था तभी तो वे कहते है— इन सौ वर्षों मे समाज सुधार के लिये जो सब आन्दोलन हुये उनसे सारे देश का कोई स्थाई हित नही हुआ। † क्या हम विनम्रतापूर्वक पूछ सकते है कि विवेकानन्द ने उक्त सम्मति किस आधार पर बनाई। बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब संयुक्त प्रान्त मे जो बृहत् संस्कार आन्दोलन एक शताब्दी तक चलता रहा क्या सचमुच ही उससे देश का स्थाई लाभ नहीं हुआ ? शायद ही कोई बुद्धिमान् व्यक्ति इस बात से सहमत हो। सुधार आन्दोलन के प्रति स्वामी विवेकानन्द का एक आक्षेप यह भी था कि यह सम्पूर्ण आन्दोलन पाश्चात्य विचारधारा से अनुप्रमाणित है। उपर्युक्त प्रसंग मे ही आगे चलकर उन्होने अपने इस आक्षेप को स्पष्ट किया हमारे अधिकांश समाज सुधार कार्य केवल पाश्चात्य कार्य प्रणाली का विवेक शून्य अनुकरण मात्र हैं। ‡ केशवचन्द्रसेन और उनके सहकर्मी ब्राह्म सुधारक नेताओ के विषय मे चाहे यह बात सत्य हो परन्तु अन्यान्य सुधारको पर यह आरोप नही लगाया जा सकता कि उनकी सुधार विषयक चेष्टाये पाश्चात्य कार्यप्रणाली से प्रेरित हैं। जहां तक स्वामी दयानन्द के सुधार कार्यों का सम्बन्ध है यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होने पाश्चात्य विचारो का अंशमात्र भी ग्रहण नही किया। यदि वे अंग्रेजी जानते होते और उन्होने पाश्चात्य चिंतन का अध्ययन किया होता तो फिर भी इस बात की सम्भावना की जा सकती थी।

---

† *भारत मे विवेकानन्द पृ० १२५*

‡ *भारत मे विवेकानन्द पृ० १२५*

परन्तु जिस व्यक्ति ने अपनी सम्पूर्ण विचारधारा का उत्स ही भारतीय शास्त्रो को माना है और जिसकी कार्यप्रणाली ने विशुद्ध राष्ट्रीयता का अनुसरण किया उस पर पाश्चात्य अनुकरण का आरोप तो किसी भी प्रकार नही लगाया जा सकता। दयानन्द ने अपने सुधार कार्यों और सस्कार विषयक मन्तव्यो को भारत की परम्परागत विचारधारा पर सुप्रतिष्ठित किया और प्रत्येक सुधारवादी प्रवृत्ति के लिए उन्होने प्राचीन शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि परिवर्तित परिस्थितियो मे उनका यह सुधार कार्य नवीन सा भले ही प्रतीत हो परन्तु वे जो कुछ कर रहे हैं वह विशुद्ध भारतीय है और विगत अतीत म उसके अस्तित्व के प्रमाण खोजे जा सकते हैं।

विवेकानन्द ने तो इस भाषण मे यह स्पष्ट स्वीकार किया कि मैं सुधार या सस्कार नही चाहता।'* मैं समाज के दोषो का सुधार करने की चेष्टा नही करता हू। † अब इसके बाद तो कुछ भी कहने के लिये शेष नही रह जाता। विवेकानन्द की दृष्टि म सौ वष तक चलने वाले सुधार आन्दोलन की उपलब्धि इतनी मात्र रहा— सौ वष से वे आन्दोलन चल रहे हैं, पर सिवाय निंदा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के अतिरिक्त इनसे क्या लाभ हुआ है। ‡ परन्तु उन्होने यह स्पष्ट नही किया कि वह कौनसा निंदा और विद्वेषपूर्ण साहित्य है जिसकी वृद्धि सुधार आन्दोलन के दौरान मे हुई है। यदि इससे उनका तात्पर्य कुरीति निवारण और कुप्रथाओ का विरोध करने वाले उस साहित्य से है जिसकी रचना सुधार काल के अन्तगत हुई तो इसे उन्होने निंदा और विद्वेष की वृद्धि करने वाला क्यो कहा ?

सुधारक और सुधार काय के प्रति विवेकानन्द की यह सम्मति द्रष्टव्य

---

* भारत मे विवेकानन्द पृ० १२६

† भारत मे विवेकानन्द पृ० १२७

‡ भारत मे विवकानन्द पृ० १५३

है—' विनाशक सुधारक लोग ससार का कुछ भी उपकार नही कर सकते । †
इस कथन पर कुछ भी टिप्पणी करना व्यर्थ है क्योकि जो प्रारम्भ मे ही यह मानकर चलता है कि सुधारक गण विनाशक हैं उससे यह आशा किस प्रकार की जाती है कि वह सुधार कार्यों का ठीक ठीक मूल्याकन कर सकेगा ?

विवेकानन्द ने केवल सद्धान्तिक दृष्टि से ही सुधारवादी विचारधारा और आन्दोलन का प्रत्याख्यान नही किया अपितु वे व्यक्तिगत रूप से भी समकालीन सुधारक महापुरुषो की आलोचना करने का अवसर हाथ से नही जाने देते थे । महामति महादेव गोविन्द रानडे उस काल के सुधारक वर्ग मे अग्रगण्य थे । अखिल भारतीय सोशल कान्फ्रेन्स के वार्षिक अधिवेशनो मे वे नियमित रूप से भाग लेते थे और अपने भाषणो द्वारा सुधार के महत् सदेश को जनव्यापी बनाने के लिये सचेष्ट रहते थे । रानडे के एक ऐसे ही भाषण की आलोचना करते हुए उन्होने कहा— एक ओर विवाहित गृहस्थ ऋषि कुछ अर्थविहीन अदभुत केवल यही नही भयानक अनुष्ठानो को लिए बठे हैं—कम से कम इतना तो कहना ही होगा कि उनका नीतिज्ञान भी जरा मला सा है ।"* उक्त आलोचना कुछ अधिक स्पष्ट नही है परन्तु रानडे को विवाहित गृहस्थ ऋषि कहने से कुछ ऐसी ध्वनि निकलती है मानो स्वय सन्यासी होने के कारण विवेकानन्द गृहस्थी सुधारको को तनिक अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे और उनके नीतिज्ञान को तनिक मला (?) कहने का भी अपना अधिकार समझते थे । परन्तु राममोहनराय के सम्बन्ध मे उनकी सम्मति तनिक भिन्न थी । एक वार्तालाप के प्रसग मे उन्होंने कहा, आधुनिक समाज सुधारको मे सिर्फ एक मात्र राजा राममोहनराय सम्पूर्ण गठन करने वाले समाज सुधारक थे । ‡

---

† धर्म रहस्य पृ० ४३

* विवकानन्द चरित पृ० ४१९

‡ स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० ६९

कही इस कथन मे राममोहनराय का बगाली होना तो कारण नही है ? यो सामान्यत तो मध्यकालीन और वतमान सभी सुधारको और सुधार आ दोलनो की इतनी देन तो उन्होंने स्वीकार की ही है— कबीर नानक चत य ब्रह्मसमाज और आयसमाज का यदि ज म न होता तो आज भारत मे हि दुओ की अपेक्षा मुसलमान और ईसाइयो की सख्या बहुत अधिक होती ।' ‡

अ यत्र भी उ होने सुधारको के म तव्य की सच्चाई और ईमानदारी को स्वीकार करते हुए उनके कार्यों का प्रशस्तिपूण उल्लेख किया है । एक स्थान पर वे कहते हैं— सारे देश मे ऐसे कई प्रकाण्ड विद्वान् पदा हुए जो अपने हृदय मे सत्य और याय के प्रति अनुराग होने के कारण महान् और तेजस्वी थे । उनके अन्त करण मे अपने देश के लिए और सबसे बढकर ईश्वर और धम के लिए अगाध प्रम था । और चू कि अत्यधिक स्वदेश प्रोति के कारण महापुरुषो के प्राण कातर हो उठते थे इसलिए वे जिस बात को गलत समझते वे उसकी तीव्र आलोचना कर देते थे । अतीतकालीन इन महापुरुषो की जय हो । उ होंने देश का बहुत ही कल्याण किया है । * इस वक्तव्य मे कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं । प्रथम तो विवेकानन्द का यह प्रशस्तिगान अतीतकालीन सुधारको के लिये है समकालीन सुधारक महापुरुषो के लिए नही । फिर वे यह कह कर कि अत्यधिक स्वदेश प्रीति के कारण इन महापुरुषो के प्राण कातर हो उठते थे इसलिए वे जिस बात को गलत समझते थे उसकी तीव्र आलोचना कर देते थे मानो यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सुधारक वग की आलोचना उनकी व्यक्तिगत अभिरुचि से उदभूत होती थी अत वह व्यक्तिगत सनक Personal Whim से अधिक महत्त्व नही रखती । खर कुछ भी हो अ य कथनो की अपेक्षा विवेकानन्द का उपयु क्त कथन काफी उदारतापूण और औचित्यपूण प्रतीत होता है ।

---

‡ *वतमान भारत पृ० २७*

* *हिन्दूधम पृ० ५६–५७*

उपयुक्त विवेचन को उपसहार की ओर ले जाते हुए हम यदि यह देखने का यत्न करें कि स्वामी विवेकानन्द का सुधारवादी आन्दोलनो के प्रति इतना अनुदारतापूर्ण उदासीनता युक्त एव खीज भरा दृष्टिकोण क्यो बना तो उसके लिये हमे उनके सम्पूर्ण जीवनदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन करना पडेगा। तब हम यह देखेंगे कि यद्यपि विवेकानन्द एक ऐसे युग मे उत्पन्न हुए थे जो बौद्धिक क्रान्ति का युग था जिसमे मध्यकालीन जडता अन्धविश्वास और गतानुगतिकता के विरुद्ध तीव्र आवाज उठाई जा रही थी धर्म की नूतन और वैज्ञानिक व्याख्या की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही थी पाश्चात्य देशो मे फलता हुआ जडवाद भारत के अध्यात्म और परलोकवादी दृष्टिकोण के लिए एक चुनौती बनकर उपस्थित हुआ था भारत के सुधारक और धर्म सशोधक पाश्चात्य विचार धारा के सग्रहणीय तत्त्वो का सग्रह करते हुए भारत के धर्म और तत्त्वचिंतन को युगानुरूप स्वरूप प्रदान करने मे लगे थे ऐसे युग मे जन्म लेकर विवेकानन्द के लिए यह सम्भव नही था कि वे भी अपने मन्त्रदाता गुरु परमहस देव की ही भाति अपनी सम्पूर्ण क्रियात्मक प्रवृत्तियो का सहरण कर गीता वर्णित कूर्म की भाति स्थितप्रज्ञ दशा को प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हो जाते। इसके विपरीत पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा मे दीक्षित होने जीवन के आरम्भ काल मे साधारण ब्राह्मसमाज के सम्पर्क मे आने और सर्वोपरि बात तो यह है कि देश और धर्म की विच्छिन्न और शोचनीय स्थिति को देखते हुए भी उनके लिये यह आवश्यक हो गया था कि वे सुधारवादी प्रवृत्तियो मे चाहे सर्वात्मा लीन न हो परन्तु यत्किंचित् वैचारिक उदारता का परिचय तो दें। यही उन्होने किया। सुधारवाद के प्रति चाहे उनके अन्तरतम मे कोई कोमल स्थान न रहा हो उसे युग की आवश्यकता और परिस्थितियो की अनिवार्यता समझ कर भी उसका अपनी दृष्टि से ही उन्होने मूल्याकन किया।

यह सब कुछ होने पर भी विवेकानन्द का धर्म और पारलौकिक विश्वासो के प्रति वही पुराना दृष्टिकोण था जो परमहस देव से उन्हे दाय के रूप मे

मिला था। इस दृष्टि से उन्हे न तो धम सम्बन्धी व्यापक अन्धविश्वासो पौराणिक भावो और जडतायुक्त क्रियाकलापा क प्रत्याख्यान की आवश्यकता ही अनुभव हुई और न उन्होन स्वय ही यह आलोचना का माग ग्रहण किया। इसके विपरीत उन्होने यदा कदा प्रचलित परम्पराओ और शताब्दियो से चले आते जजर भावा और विश्वासो का ही समथन किया और उनका विरोध करने वाले सुधारक सम्प्रदाय से वे अपना तालमल नही वठा सके। भक्तियोग' नामक अपने एक ग्रन्थ मे उन्हाने बडे विस्तारपूवक धम सम्प्रदायो मे पौराणिक भावो और क्रिया अनुष्ठाना की आवश्यकता का प्रतिपादन और सुधारक वग की विचारधारा की इन पौराणिक भावो और विश्वासो के प्रतिकूल हाने के कारण आलोचना की है। उस ग्रन्थ का निम्न उद्धरण इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

वे लिखते हैं— वडे वडे धर्मात्मा उन्ही धम सम्प्रदायो मे हुए है जिनमे पौराणिक भावो और क्रिया अनुष्ठाना की प्रचुरता है। जो सब शुष्क मतान्ध प्रणालियाँ इस बात का प्रयत्न करती हैं कि जो कुछ कवित्वमय सुन्दर और महान् है जो कुछ भगवत्प्राप्ति के माग मे गिरते पडते अग्रसर होने वाले सुकुमार मन के लिए अवलम्बन स्वरूप है उस सब को नष्ट कर डालें, जो धमप्रासाद के आधारस्वरूप स्तम्भो को ही ढहा देने का प्रयत्न करती है। जो सत्य के सम्बन्ध मे अज्ञान और भ्रमपूण धारणा लेकर इस बात के लिए यत्नशील है जो कुछ जीवन के लिए सजीवनी स्वरूप है जो कुछ मानवात्मा रूपी क्षत्र मे लहलहाती हुई धमलता के लिए पालक एव पोषक है वह सब नष्ट हो जाय। उन धमप्रणालियां को यह शीघ्र अनुभव हो जाता है कि उनमे जो कुछ रह गया है वह है केवल एक खोखलापन अनन्त शब्द राशि और कोरे तक वितर्कों का एक स्तूपमात्र जिसम शायद एक प्रकार की सामाजिक सफाई या तथाकथित प्रचार की थोडी सी गध भर बच रही है। जिनका धम इस प्रकार का है उनमे से अधिकतर लोग जानते या न जानते हुए जडवादी हैं उनके ऐहिक और पारलौकिक जीवन का ध्येय केवल भोग है वही उकीन

दृष्टि मे मानव जीवन का सवस्व है। अज्ञान और मताधता के इस विचित्र मिश्रण मे रगे हुये ये लोग जितने शीघ्र अपने असली रग मे आ जाय और जितनी जल्दी नास्तिको और जडवादियो के दल मे शामिल हो जाये (क्योकि असल मे वे हैं उसी के योग्य) ससार का उतना ही मगल है। *

पर्याप्त लम्बा उद्धरण देने के लिए हम पाठको से क्षमा चाहेगे परन्तु यह आवश्यक था कि सुधार आन्दोलन के प्रति स्वामी विवेकानन्द के दृष्टिकोण की मनोवज्ञानिक परख की जाय और उनके अन्तरतम मे निहित भावनाओ को व्यक्त करने वाले विचारो की परख की जाय। उपयु क्त कथन का विश्लेषण कर हम निम्न निष्कर्षो पर पहुँचते है—

(१) स्वामी विवेकानन्द यह मानकर चले हैं कि पौराणिक भावो और क्रिया अनुष्ठानो से युक्त धम सम्प्रदायो की अपेक्षा सुधारवादी आन्दोलन कहीं अधिक तुच्छ और तिरस्करणीय हैं इसलिए कि—

(अ) बडे-बडे धर्मात्मा उपयु क्त धमसम्प्रदायो मे ही हुए है।

(आ) सुधार आन्दोलनो ने कवित्वपूण सुन्दर और महान् एव सुकुमार भावो को नष्ट करने का यत्न किया और उसके स्थान पर शुष्क नीरस और मताधता से परिपूर्ण विचारधारा का प्रचार किया।

(इ) सुधार आन्दोलनो की विचारधारा केवल तक वितक तथा शुष्क शब्दाडम्बर से भिन्न कुछ नही है।

(ई) सुधार आन्दोलनो का ध्येय पारलौकिक उन्नति न होकर इहलौकिक उन्नति है अत वे मोक्ष या भगवत्प्राप्ति पर जोर नही देते।

(उ) ये आन्दोलन निश्चितरूप से नास्तिकता और जडवाद से प्रभावित हैं। अत सब प्रकार से त्याज्य है।

---

* भक्तियोग पृ० २६

उपयु क्त निष्कर्षों पर हमारा वक्त य यह है—विवेकान द यह मानकर चलते हैं कि पौराणिक भावो से युक्त धम सम्प्रदायो मे जितने महात्मा पुरुष हुए हैं उतने सुधार आन्दोलनो (जि हे वे शुष्क मता ध धम प्रणालियाँ कहते हैं) मे नही। इस कथन से उनका अभिप्राय सम्भवत यह प्रतीत होता है कि भारत की मध्यकालीन सन्त परम्परा मे जो सगुण भक्ति धारा प्रवाहित हुई उसके मूल मे सूर तुलसी मीरा जसे भक्तो और महात्माओ का पुरुषाथ और प्रयास था। इन स त महात्माओ की तुलना म विवेकान द राममोहनराय केशवच द्रसेन दयान द जसे सुधारको को नगण्य तथा ईश्वर भक्तिविहीन समझते हैं। पर तु हमारे विचार से ऐसा मानना अ यायपूण है। धर्मात्मा महापुरुषो को उत्पन्न करने का ठेका केवल भक्ति सम्प्रदायो ने ही ले रखा है यह मानना अनौचित्यपूण है। देश और समाज के अभ्युत्थान की कामना से जिन सुधारक महापुरुषो ने अपने परम पुरुषाथ को कम क्षेत्र मे यक्त किया व भी उतने ही अधिक धर्मात्मा महात्मा ईश्वर विश्वासी और भक्त थे जितना कोई अ य सम्प्रदायनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है।

सुधार आन्दोलन ने धम के कवित्वपूण सु दर महान् और सुकुमार भावो को नष्ट किया है यह मानना भी तकसगत नही कहा जा सकता। कारण कि सुधार आन्दोलन ने तो धम और समाज के क्षेत्र मे व्याप्त कदाचार अभद्र और वीभत्स भावो तथा निरथक रूढियुक्त क्रियाकाण्डो और मूढ विश्वासो को ही उ मूलित किया है। वह धम के उदात्त तत्वो को सुरक्षित रखता है अत यह कहना कि उसने शुष्क नीरस और मता धतापूण विचार धारा का प्रचार किया सत्य से कोसा दूर है। सुधारवाद धम के वास्तविक स्वरूप पर चढ जाने वाले मल के पर्दे को दूर कर उसे निमल पवित्र और शुद्ध बनाता है। यह अवश्य है कि वह धम के नाम पर प्रचलित किसी की भी भावुकता गलदश्रु भावप्रवणता और मिथ्या विश्वासो का विरोध अवश्य करता है अत कभी कभी यह भ्रम होने लगता है कि सुधारवादियो द्वारा प्रतिपादित धमप्रणाली निता त नीरस शुष्क, तथा भावहीन है। स्वामी विवेकानन्द भी सुधार आ दोलन पर यह आरोप लगा कर इसी भ्रम के शिकार हुये हैं।

सुधार आन्दोलनो की विचारधारा को तकवितक तथा शुष्क शब्दाडम्बर मात्र बताना भी एकागी दृष्टिकोण है। यह सत्य है कि अपने समय मे प्रचलित बुराइयो दुर्नीतियो तथा विकृतियो पर क्रूर प्रहार करने की दृष्टि से सुधारका को तक प्रणाली का सहारा लेना पडता है। कभी-कभी वह मूढाग्रहो और मिथ्याविश्वासो पर समाज के मगलविधान की दृष्टि से अत्यन्त क्रूर भाषा मे अभिशापा की वृष्टि भी करते हैं परन्तु उनके हृदय के भीतर कटुता का लेशमात्र भी नही होता। इसी तथ्य को दृष्टि मे रखते हुये सुधार आन्दोलन की विचारधारा की समीक्षा की जानी चाहिये। सुधारक महापुरुषा की भक्ति प्रवणता जनकल्याण और लोकमगल के प्रति उनकी अजस्र निष्ठा तथा ईश्वर के शाश्वत विधान के प्रति उनकी एकान्त श्रद्धा के देखने के लिए जिस सहृदयता या सवेदनशीलता की आवश्यकता है वह सम्भवत अभी तक सुधार आन्दोलनो के आलोचको मे पर्याप्त कम है।

यह कथन भी सत्य से परे ही है कि सुधारको का ध्येय इहलौकिक उन्नति प्राप्त करना और कराना रहा है तथा मोक्ष या भगवत्प्राप्ति पर उन्होने जोर नही दिया। यह अवश्य सत्य है कि सुधारक वग के महापुरुषो ने जन समाज मे व्याप्त लौकिक समस्याओ के समाधान भी उतनी ही निष्ठा से ढूढे जितनी उत्सुकता से वे समाज को परलोक और नि श्रेयस के माग पर बढने के लिए प्रेरित करते रहे। परन्तु सुधारको का चरम ध्येय भी इस लोक के प्रति चरम वराग्य का दृष्टिकोण अपनाकर अपनी आत्मा को भगवत्प्राप्ति की ओर प्रेरित करना ही रहा है। राममोहन दयानन्द देवेन्द्रनाथ और केशवसेन की ईश्वर निष्ठा और परलोक के प्रति उनकी उच्च आध्यात्मिक शिक्षाओ के प्रति किसी प्रकार का सदेह उत्पन्न नही हो सकता।

अत जब यह सिद्ध है कि सुधार आन्दोलन भी ईश्वरभक्ति परलोक प्राप्ति तथा अध्यात्मनिष्ठा की दृष्टि से किसी भी भक्ति आन्दोलन से कम नही है तब उन्हे नास्तिक जडवादी, फलत त्याज्य कहना कदापि युक्तिसगत नही हो सकता। केवल लौकिक समस्याओ का समाधान ढूढने और इहलोक के

कर्त्तव्यो के प्रति जनसमाज को जागरूक बनाने मात्र से ही कोई नास्तिक या जडवादी नही हो जाता। यो तो विवेकानन्द जिन तुलसी और कबीर आदि सन्तो और भक्ता मे आध्यात्मिक तत्त्वा की चरम परिणति देखते हैं तथा जिन्हे धर्म तथा तत्त्वज्ञान के सर्वोच्च स्थान पर आरूढ मानते हैं वे भी समाजगत मूल्या के उत्थान के प्रति पूर्ण सचेष्ट तथा क्रियाशील थे। यह कौन अस्वीकार करेगा कि कबीर की आक्रोश भरी वाणी इन असत्य कदाचारा मिथ्याविश्वासो तथा साम्प्रदायिक मिथ्याचारो को भस्मसात् करने मे अत्यन्त उग्र थी जिन्होने जनजीवन का विकृत बना रखा था। इसी प्रकार तुलसी भी लोकमगल की पावन लालसा से अनुप्राणित होकर अपनी वाणी द्वारा जिस लोककल्याण का विधान कर गये वह उन्हे भक्त के साथ समाज सुधारक के महान् पद पर स्थापित कर देता है। यदि उक्त भक्तो की अध्यात्म निष्ठा के प्रति शका नही की जा सकती तो सुधारक वर्ग के महापुरुषो को नास्तिक और जडवादी कह कर लाछित करना कहाँ का न्याय है ?

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही होनी चाहिये कि स्वामी दयानन्द की सुधार भावना का उनकी अध्यात्म निष्ठा से कोई विरोध नही था। वे जितने बडे लोकसस्कारक तथा समाज सशोधक थे उतने ही बडे भक्त और ईश्वरनिष्ठ भी थे, साथ ही स्वामी विवेकानन्द का सुधार आन्दोलन के प्रति जो असहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रहा वह भी समालोचना का विषय बन सकता है।

□□

अध्याय ७

वर्णव्यवस्था तथा अन्य सामाजिक एव सास्कृतिक समस्याये

पुराकालीन भारतीय ऋषियो ने समाज के सावत्रिक विकास के लिये श्रम विभाजनपूवक प्रत्येक यक्ति के योगदान की कल्पना के आधार पर वणव्यवस्था का प्रचलन किया था। प्रबुद्ध एव मानसिक शक्तियो के स्रोत ब्राह्मण वग से यह अपेक्षा की गई थी कि वे समाज का आध्यात्मिक तथा बौद्धिक नेतृत्व करेंगे। क्षत्रियो को समाज तथा राष्ट की सुरक्षा तथा प्रशासन का महत्त्वपूण काय सौंपा गया था। व्यापार एव व्यवसाय की उन्नति तथा देश को धन धा य पूण समृद्धि की दिशा मे अग्रसर करने वाले लोग वश्य कहलाये। मात्र शारीरिक श्रम पर ही निभर रहने वाले तथा अपेक्षाकृत मानसिक शक्ति से हीन व्यक्ति शूद्र कहलाते थ। वस्तुत वण यवस्था उस मनोवज्ञानिक सत्य पर आधारित थी जिसके अनुसार हम यह स्वीकार करते हैं कि विभिन्न अभिरुचियो प्रवृत्तियो तथा क्षमताओ वाले मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के काय करने मे सक्षम होते हैं।

प्राचीन वदिक वाङमय मे निहित वणव्यवस्था सम्ब धी मूल सूत्रो का ऊहापोह करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस व्यवस्था का मूलाधार उसका गुणकम परक होना था न कि ज म पर आधारित होना। पुरातन ऐतिह्य

मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि अपने ही कर्मों के कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय शूद्रत्व को प्राप्त हो जाते थे और शूद्रो ने भी अपने अध्यवसाय एव अन्य गुणो के कारण ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था। समयान्तर मे वणव्यवस्था का गुणकम का आधार तो समाप्त हुआ ही वह अपने मूल स्वरूप को नष्ट कर सहस्रो जातियो एव उप जातियो मे विभक्त होकर नष्ट हो गई।

भारत के नवजागरण की प्रक्रिया मे अपना समथ योगदान देने वाले वामी दयानन्द ही प्रथम महापुरुष थे जिन्होने शास्त्रीय आधार पर एक बार पुन वण यवस्था का गुण कम कर आधारित होना घोषित किया। अपने सत्याथप्रकाश * ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका† तथा सस्कारविधि‡ आदि ग्रन्थो में उन्होने वण यवस्था का प्रासगिक विवेचन करते हुये यह सिद्ध किया कि इस सामाजिक विधान का आधार गुण, कम और स्वभाव ही है न कि जन्म। मनुस्मृति के शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वश्यात्तथव च ॥× आदि श्लोको को उद्धत कर उन्होंने वणपरिवतन को भी स्वीकार किया। मनुस्मृति तथा भगवद्गीता के वर्णों के कत्तव्य विधायक श्लोको को प्रस्तुत कर उन्होने लिखा— जिस जिस पुरुष मे जिस जिस वण के गुण कम हो उस-उस वण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। + वेदो के भाष्य की भूमिका मे भी स्वामी दयानन्द ने सक्षेपत इस विषय को लिया है तथा स्पष्ट कर दिया है कि 'ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और

* चतुथ समल्लास
† वर्णाश्रम विषय
‡ गहाश्रम प्रकरणम्
× अध्याय १० । ६५
+ सत्याथप्रकाश चतुथ समुल्लास

शूद्र ये चार भेद गुण कर्मों से किये गये हैं। इनका नाम वण इसलिये है कि जसे जिसके गुण कम हो वसा ही उसको अधिकार देना चाहिये। सस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण के अन्तगत चातुवण्य समाज के कत्त यो का शास्त्रीय विधान किया गया है।

न केवल दयान द अपितु नवजागरण काल के सभी महापुरुषो ने वण-व्यवस्था की याख्या गुण कर्मों के आधार पर ही की है। स्वामी विवेकानन्द भी इसका आधार ज म को स्वीकार नही करते। उ होने स्पष्ट लिखा है— जाति का आधार गुण है इस बात का स्पष्ट प्रमाण महाभारत के भीष्म पव मे तथा अजगर और उमा महेश्वर के आख्यानो मे पाया जाता है। * कर्मानुसार वणपरिवतन भी वे मानते हैं। महाभारत और अ यत्र वर्णित अनेक ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत कर स्वामी विवेकान द ने कहा— वेश्यापुत्र वसिष्ठ और नारद दासीपुत्र सत्यकाम जाबाल धीवर यास अज्ञात पिता द्रोण कृप और कण आदि सबने अपनी विद्या या वीरता के प्रभाव से ब्राह्मणत्व या क्षत्रियत्व पाया था। † तथा प्राचीनकाल मे वेश्या पुत्र वशिष्ठ धीवर तनय व्यास दासी सुत नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। ‡ स्वामी दयान द तो इससे भी पूव लिख चुके थे 'छा दोग्यउपनिषद् मे जाबाल ऋषि अज्ञात कुल महाभारत मे विश्वामित्र क्षत्रिय वण और मातग ऋषि चाण्डाल कुल ब्राह्मण हो गये थे।" ×

स्पृश्यास्पृश्य का भाव आय धम की मौलिक विचारणा के सवथा प्रतिकूल है यह स्वामी दयान द ने इस युग मे सवप्रथम प्रकट किया। सत्याथप्रकाश के दशम समुल्लास मे आचार अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य का विषय विवेचित करते

---

* *जाति, सस्कृति और समाजवाद पृ० १४*

† *वतमान भारत पृ० ३६*

‡ *भारत मे विवेकान द पृ० ४६४*

× *सत्याथप्रकाश—चतुथ समुल्लास*

हुये उन्होने आयसमाज के सभी वर्णो के रहन सहन एव खान पान म एकता का महत्त्व स्पष्ट किया। विवेकान द भी छुआछूत के कट्टर विरोधी थे। वार्तालाप के एक प्रसग म उ होने स्पष्ट कहा— छुआछूत हि दू धम नही है इसकी बात हमारे किसी भी शास्त्र मे नही है। +

इस प्रकार वण यवस्था के मौलिक स्वरूप को ज म गत न मानने पर भी स्वामी विवेकान द के समक्ष एक कठिनाई उस समय उत्पन्न हुई जब उ होने शकराचाय के वेदा त भाष्य का अध्ययन किया। यहा उ हे आचाय शकर का अत्यन्त अनुदार रूप दृष्टिगोचर हुआ जो न केवल वण विधान को ज म गत ही मानते हैं अपितु शूद्रो के प्रति अत्य त अनुदारता कठोरता तथा असहिष्णुता का परिचय देते हैं। काशी निवासी श्री प्रमदादास मित्र को लिखे अपने एक पत्र मे विवेकान द ने शकराचाय के वेदा त भाष्य म उल्लिखित इन अनुदार-भावापन्न विचारो के सम्ब ध म स्पष्टीकरण चाहा है। उ होने पूछा— 'क्या छा दोग्य उपनिषद् के अतिरिक्त वेदा मे और कही सत्यकाम जाबाल और जानश्रुति की कथा आई है? * वस्तुत सत्यकाम जाबाल† और जानश्रुति‡ क उपनिषद् वर्णित उपाख्यानो से ही यह सिद्ध हो जाता है कि सूत्रकार ऋषि ब्रह्म विद्या मे शूद्रा का भी अधिकार मानता है क्योकि जबाला का पुत्र सत्यकाम अज्ञान पिता की स तान था उसकी माता ने उसे तब ज म दिया जब वह अनेक लोगो की सेवा मे अपना जीवन व्यतीत करती रही। जानश्रुनि को तो स्पष्टत शूद्र ही कहा गया है। × विडम्बना यह है कि इस प्रकार औपनिषदिक कथाओ म मनुष्यमात्र का ब्रह्म ज्ञान मे अधिकार मानने

+ *स्वामी विवकान द से वार्तालाप प० ८८*

* *पत्रावली भाग १ प० ११*

† छा दोग्योपनिषद् चतुथ प्रपाठक खण्ड १ २

‡ छा दोग्योपनिषद् चतुथ प्रपाठक चतुथ खण्ड

× *तमु ह पर प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवव सह गोभिरस्त्विति।"*

पर भी शकर तथा अन्य मध्यकालीन भाष्यकारो ने वेदान्त दर्शन के शुगस्यतदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात् सूच्यते हि + तथा श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषधात् स्मृतेश्च ❀ आदि सूत्रो का कपोल कल्पित अर्थ करते हुये उन्हे शूद्रो को ब्रह्म ज्ञान न देने के पक्ष मे लगाया है।

विवेकानन्द की कठिनाई यही से आरम्भ होती है। एक ओर तो अद्वैत वेदान्त के प्रौढ प्रचारक होने के नाते शकर आदरास्पद है परन्तु शूद्रो के विषय म जो उनकी अनुदार धारणायें हैं उनके साथ वे अपना सामञ्जस्य कसे करे यह विवेकानन्द के समक्ष उत्पन्न एक कठिन समस्या है। श्री मित्र से उन्होने इसी सदर्भ म एक अन्य प्रश्न किया— शकराचार्य अपने वेदान्त सूत्रो के भाष्य मे स्मृति के नाम पर महाभारत का प्रमाण देते है। परन्तु महाभारतान्तर्गत बन पर्व के अजगरोपाख्यान उमा महेश्वर सवाद तथा भीष्म पर्व मे जाति का आधार गुण कर्म है यह बतलाने पर भी शकर ने ऐसा नही लिखा? क्या किसी अन्य ग्रन्थ मे लिखा है?' * वस्तुत विवेकानन्द के लिये इस विषय मे शकर का अनुसरण करना कठिन ही नही भयावह भी है। क्योकि शकर ने तो इन सूत्रो का अर्थ करते हुए स्पष्ट लिखा— न शूद्रस्याधिकारो वेदाध्ययनाभावात्। अधीतवेदो हि विदितवेदार्थो वेदार्थेष्वधिक्रियते। न च वेदाध्ययनमस्ति शूद्रस्य उपनयनपूर्वकत्वाद् यत्त्वर्थित्व न तद् असति सामर्थ्ये अधिकार कारण भवति। † अर्थात् शूद्र का अधिकार नही है वेदाध्ययन के अभाव के कारण। जिसने वेदो का अध्ययन किया और वेदार्थ को जान लिया उसका ही वेदार्थ मे अधिकार होता है किन्तु शूद्र का वेदाध्ययन का अधिकार नही क्योकि वेदाध्ययन उपनयन पूर्वक होता है।

+ अध्याय १ पाद ३ सूत्र ३४

❀ अध्याय १ पाद ३ सूत्र ३८

* पत्रावली भाग १ पृ० १५

† ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्यम् पृ० १३६ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

और उपनयन ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य इन तीन वर्णों का ही होता है। आदि। वेदान्तदशन के १। ३। ३८ सूत्र की व्याख्या मे तो शकर ने स्पष्ट ही स्मृति के नाम पर उस गोतमधम सूत्र को उद्धृत किया है जिसने शूद्रो के द्वारा वेद के शब्द सुन लेने पर कान मे सीसा और लाख भर देने का विधान किया है तथा जिसके अनुसार शूद्र श्मशान तुल्य है तथा जिसको ब्रह्मज्ञान देने का स्पष्ट प्रतिषेध किया गया है।* विवेकानन्द तो इस सुखद भ्रम मे हैं कि महाभारत मे शूद्रो तथा अन्य वर्णों का विधान गुण कम पर आधारित कहा गया है अत शकर को भी स्मृति के रूप मे महाभारत का सम्मान करत हुये उसमे प्रतिपादित वण व्यवस्था विषयक उदार विचारो को स्वीकार करना चाहिये। परन्तु उन्हे यह तो आगे चल कर ज्ञात हुआ कि शकर तथा अन्य मध्यकालीन आचार्यो से इतनी वचारिक उदारता की अपेक्षा नही की जा सकती। वे श्री प्रमदादास मित्र से यह भी जानना चाहते हैं कि वेदो के पुरुष सूक्त के अनुसार जाति विभाग वश परम्परागत नही है फिर वेदो मे इस बात का कहा उल्लेख हुआ है कि जाति जन्म से है ? †

यह तो विदित नही होता कि विवेकानन्द के इन प्रश्नो का उत्तर उन्हे क्या मिला परन्तु इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि शकराचाय को प्रमाण मान कर वण व्यवस्था की वसी व्याख्या नही की जा सकती जिसे वे अभीष्ट समझते थे। निश्चय ही स्वामी विवेकानन्द वण व्यवस्था को एक सामाजिक नियम मानते थे जो गुण कम से प्रसूत है। वण व्यवस्था पारस्परिक सामञ्जस्य सद्भाव और सह अस्तित्व पर जोर देती है। यह दूसरी बात है कि जब इस व्यवस्था का तक सगत आधार ही समाप्त हो गया तो

---

* *अथास्य वदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपरिपूरणमिति । यद्युह वा एतत् श्मशान यत् शद्र तस्मात् शूद्र समीपे नाध्येतव्यम् ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्यम् पृ० १३८*

† *पत्रावली भाग १ पृ० १५*

जन्म गत जात्यभिमान के भाव लोगा मे बढने लगे और वण द्वेष ने भी जोर पकडा। भारत के इतिहास मे एक युग ऐसा भी आया था जब क्षत्रियो न अपने चतुर्दिक वचस्व को बढाया। उपनिषदो मे वर्णित अधिकाश ब्रह्मविद्या क्षत्रिय राजर्षिया द्वारा ही उपदिष्ट है। कतिपय विचारको ने तो यह धारणा प्रकट की है कि वेदोपदिष्ट ज्ञान तथा कम के प्रस्तोता ब्राह्मण आचाय थे किन्तु उपनिषदो म जिस रहस्यपूण ब्रह्म ज्ञान का सुगूढ विवेचन हुआ है उसके प्रवतक क्षत्रिय लोग ही थे।* ब्राह्मण ऋषि इन क्षत्रिय आचार्यो के समीप शिष्य रूप मे उपस्थित होकर उनसे ब्रह्मविद्या सीखते थे। उपनिषदो मे वर्णित इन प्रसगो को अतिवादिता की एक सीमा तक ले जाना तथा उनम ब्राह्मणो और क्षत्रियो के वमनस्य की गध ढूढना अथवा एक वण के दूसरे से वरिष्ठ अथवा कनिष्ठ होने की बात कहना स्पष्ट ही अनुचित है। परन्तु स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक पत्र मे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आचार्यो के हार्दिक अभिप्राय को न समझ कर एक वग मे विचारो की अनुदारता तथा दूसरे वग मे विचारो की उदारता का ढोल पीटा है और इस प्रकार ब्राह्मणो को क्षत्रिया की तुलना मे अधिक सकीण तथा अनुदार घोषित किया है। हमारे विचार से स्वामीजी की यह विवेचना अपने आपमे अनेक पूर्वाग्रहो से ग्रस्त होने के कारण अप्रामाणिक ही नही अमान्य भी है। यहा उक्त पत्र से प्रासगिक उद्धरण दिया जाता है। तुमने मास खाने वाले क्षत्रियो की बात उठाई है। क्षत्रिय लोग चाहे मास खायें चाहे न खायें वे ही हिन्दू धम की उन सब वस्तुओ के जन्मदाता है जिनको तुम महत् और सुन्दर समझते हो। उपनिषद किसने लिखे थे ? राम कौन थे ? कृष्ण कौन थे ? बुद्ध कौन थे ? जैनो के तीथकर कौन थे ? जब कभी क्षत्रिया ने धम का उपदेश दिया उन्होने सभी को धम पर अधिकार दिया। और जब कभी ब्राह्मणो ने कुछ लिखा उन्होन औरो को सब प्रकार के अधिकारा से वचित करने की चेष्टा की। मूख गीता

द्रष्टव्य—प० रघुनन्दन शर्मा लिखित वदिक सम्पत्ति।

और ास सूत्र प ो या किसी से सुन ो । गीता मे मुक्ति की राह मे सभी नर नारिया सभी जातिया और सभी वर्गो को अधिकार दिया है, पर तु व्यास गरीब शू ो को वचित करने के लिये वेद की मनमानी याख्या कर रहे है । * इस उद्धरण का इन बातो मे ऐतिहासिक सचाई भले ही हो कि राम कृष्ण बुद्ध अथवा तीथकर आदि क्षत्रिय ही थे पर तु विवेकान द का यह कथन तो अधिक युक्ति सगत नही है कि क्षत्रिय वण के कृष्ण रचित गीता मुक्ति की राह पर आगे बढने का अधिकार सभी वर्गो और वर्णो को प्रदान करती है कि तु ब्राह्मण वण के आचाय व्यास ही शूद्रो को इस अधिकार से वचित करते हैं । वास्तव मे जसा कि हम पूव भी देख चुके है वादरायण व्यास रचित मूल सूत्रो म तो शूद्रा के अधिकारो का हनन करने की चेष्टा नहीं की गई है कि तु शकर रामानुज आदि सकीण हृदय वाले आचार्या ने अवश्य ही उन सूत्रो को व्यारया करत समय इस प्रकार के अनुदार विचार व्यक्त किय है । अत विवेकान द का यह कथन किसी भी प्रकार से उचित एव सगत नही कहा जा सकता कि ब्राह्मण आचार्यों ने सदा ही अनुदारता सकीणता तथा असहिष्णुता का प्रदशन किया है तथा क्षत्रिय आचार्यों ने तुलनात्मक दृष्टि से अधिक सहृदयता तथा उदारता प्रदर्शित की है । वस्तुत आय जाति के समग्र धार्मिक और दाशनिक साहित्य को ब्राह्मण आचार्यों द्वारा रचित तथा क्षत्रिय आचार्यों द्वारा रचित इस प्रकार पृथकश बताने के लिये कोई आधार नही है ।

वण यवस्था पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के अनन्तर हम एक अ य महत्त्वपूण सामाजिक प्रश्न की विवेचना करते हैं जिसमे इतर धर्मावलम्बिया के वदिक धम मे प्रवेश अथवा कि ही कारणो से धमच्युत पतित तथा समाज भ्रष्ट लोगा के पुन स्वधम ग्रहण करने की समस्या निहित है । यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि विगत काल मे ऐसे लोगो का वदिक धम और समाज मे पुन प्रवेश होना शक्य था जो कि ही कारणो से स्वधम के प्रति

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १०६

अपनी निष्ठा खो बठते थे। पुराणो मे ही ऐसे प्रसग उल्लिखित है जिनसे यह विदित होता है कि सहस्रो की सरया म आर्येतर जातियो के लोगो ने वदिक धम की सामूहिक रूप मे दीक्षा ग्रहण की। मध्ययुगीन इतिहास मे भी ऐसे दृष्टान्त उपल ध होते हैं जिनसे जाना जाता है कि जो यक्ति येनकेन प्रकारेण आय सस्कारो से भ्रष्ट होकर अनाय म्लेच्छ अथवा व्रात्य सज्ञा प्राप्त करते थे उनको पुन आय धम म ले लिया जाता था। पतितो की यह शुद्धि सनातन काल से चली आई है।*

मध्यकाल मे जब बृहत् आयसमाज अनेक कारणो से सकीण काराओ म बधकर अपना व्यापक एव विराट रूप खो बैठा तो इतर मतावलम्बियो को स्वधम मे पुन प्रविष्ट करने की प्रथा भी समाप्त हो गई। जातियो की सकीण प्राचीरो मे अवरुद्ध होकर विशाल आयसमाज ने अपने द्वार उन सभी लोगो के लिये ब द कर दिये जो उसमे प्रवेश पाने के इच्छुक थे। स्वामी दयान द ने अपनी क्रा तदर्शी प्रतिभा और दूरदर्शिता के द्वारा यह अनुभव किया कि जब तक आय भिन्न लोगो को वदिक धम की सुविशाल परिधि मे प्रवेश करने का अधिकार नही मिलता तब तक इस धम की सावजनीनता कसे स्वीकार की जा सकती है। केवल सद्धा तिक दृष्टि से ही नही यावहारिक रीति से भी स्वामीजी ने शुद्धि का शख नाद कर आर्येतर जातियो को वदिक धम मे सम्मिलित हो जाने का आह्वान किया। उ होने अपने जीवनकाल मे ही देहरादून निवासी मुहम्मद ऊमर नामक एक मुसलमान को वदिक धम की दीक्षा देकर अलखधारी नाम प्रदान किया। काला तर मे स्वामी श्रद्धान द के नेतृत्व मे नौमुसलिमो तथा अ य दलित एव पतित जातियो को हि दू धम

---

* *इस विषय पर निम्न ग्रन्थ अध्येतव्य है—*
शुद्धि च द्रोदय लेखक श्री चांदकरण शारदा।
पतितों की शुद्धि सनातन है। मेहता रामच द्र शास्त्री

के विशाल दायरे मे पुन लेने का जो अभियान चला उसकी उपयोगिता एव महत्ता निर्विवाद है।

स्वामी विवेकानन्द ने भी युग की आवाज को पहचान कर शुद्धि का समथन ही किया। वार्तालाप के एक प्रसग मे उन्होने स्पष्ट कहा— अहिन्दू को हिन्दू बनाना हिन्दू धम से कोई विरोधी बात नही है और कोई भी व्यक्ति वह शूद्र हो या चाण्डाल ब्राह्मणादि तक के सम्मुख दशन शास्त्र की व्याख्या कर सकता है। * शुद्धि का प्रवतन इसलिये भी आवश्यक है कि शताब्दियो से हिन्दू जाति का जो सख्या बल घट रहा है उस रोका जा सके। इसी भावना को व्यक्त करते हुये स्वामीजी ने कहा निश्चय ही उनका (विधर्मियो तथा पतितो का) पुनग्रहण हो सकता है और यह करना उचित भी है। उनका पुनग्रहण न करने पर हमारी सख्या दिनोदिन घटती जायगी।' †

इस प्रकार हम देखते है कि स्वामी दयानन्द की ही भाति स्वामी विवेकानन्द ने भी युगधम को पहचाना था तथा शताब्दियो से अवरुद्ध सामाजिक कारा को खोल कर उन्हाने हिन्दूधम मे पुन प्रवश करने का अधिकार सभी को प्रदान किया।

आय और आर्यावत—

इस देश के आदि निवासी कौन थे? उनका मूल स्थान कौन सा था? इस देश मे निवास करने वाली जाति का वास्तविक नाम क्या है? ये कुछ ऐसे सास्कृतिक प्रश्न है जिन्हें यदाकदा उठाया जाता है। विदेशी शासको की प्रेरणा से जो इतिहास लिखे गय उनमे यह प्रयत्न किया गया था कि इस देश के निवासियो को बाहर से आकर बसने वाला सिद्ध किया जाय। ऐसा करने मे शासक जाति का उद्देश्य स्पष्ट था। वे यह स्पष्ट कर देना

स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप प० ५३

† उपयुक्त प० १०२

चाहत थे कि जिस प्रकार उ होने पश्चिम से आकर इस देश पर अपना आधिपत्य जमाया है उसी प्रकार शताब्दियो पूव आय जाति ने भी दल बाध कर यहा प्रवेश किया तथा यहा की मूल निवासिनी जातियो का उ मूलन कर इस देश पर अपना स्वत्व स्थापित किया था। विदेशियो के द्वारा साभिप्राय लिखे गये इस इतिहास से हमारे देश का क्या कल्याण हो सकता था ?

पुनर्जागरण के महापुरुषो की एक बहुत बडी देन यह भी है कि उ होने इस दश के निवासियो को आत्म बोध प्रदान किया। हमारा मूल अभिधान क्या है ? इस देश के मूल निवासी हम स्वय ही है। हमारे अतिरिक्त और कोई अ य जाति यहाँ निवास नही करती थी इन तथ्यो को सशक्त रूप से प्रतिपादित करना उनका लक्ष्य रहा। स्वामी दयान द ने इन सास्कृतिक प्रश्नो का समाधान करने मे पहल की। उ होने सत्याथप्रकाश मे इस प्रश्न को इस रूप मे प्रस्तुत किया— कोई कहते हैं कि यह (आय) लोग ईरान से आये इसी से इन लोगो का नाम आय हुआ हे। इनसे पूव यहा जगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। और उत्तर मे लिखा— किसी सस्कृत ग्र थ मे वा इतिहास मे नही लिखा कि आय लोग ईरान से आये और यहा के जगलियो को लड कर जय पाके निकाल इस देश के राजा हुए पुन विदेशियो का लेख माननीय कसे हो सकता है ? *

स्वामी विवेकान द ने भी इसी मत की पुष्टि की है। उ होने अत्य त ओजस्वी शब्दो मे यूरोपीय इतिहासज्ञो के इस मत का खण्डन किया कि आर्यों का इस देश मे आगमन कही बाहर से हुआ और यहाँ के मूल निवासियो को युद्ध मे पराजित कर उ होने भारत को अधिकृत किया। वे लिखते है— यूरोपीय पण्डितो का यह कहना है कि आय कही से घूमते फिरते आकर भारत मे जगली जाति को मार काट कर और जमीन छीन कर स्वय यहाँ बस गये केवल अहमको की बात है। आश्चय तो इस बात का है कि हमारे

---

* अष्टम समल्लास

भारतीय विद्वान् भी उन्ही के स्वर में स्वर मिला कर कहते हैं और यही सब झूठी बातें हमारे बालको को पढाई जाती हैं। यही भारी अन्याय है। †

आश्चय की बात यह है कि यूरोपीय विद्वानो को इस उपपत्ति का कोई प्रमाण भारतीय साहित्य मे उपलब्ध नही होता कि आय जाति बाहर से आई और यहाँ क तथाकथित आदिवासियो को पराजित कर उन्होने अपना आधिपत्य जमाया। यदि टोली बाध कर आय लोग एकाधिक बार मे ईरान या मध्य ऐशिया से भारत मे आये होते तो इस आगमन का उल्लेख इस देश के प्राचीन वाङमय मे अवश्य होता। विवेकानन्द ने तो यही प्रश्न उन विदेशी विद्वानो से पूछा है— किस वेद के सूक्त मे अथवा अन्यान्य और कहीं तुमने देखा है कि आय दूसरे देशो से भारतवष मे आये ? इस बात का प्रमाण तुम्हे कहाँ मिला है कि उन लोगो ने जगली जातियो को मार काट कर यहाँ निवास किया ? बेकार इस अहमकपन की क्या जरूरत है ? ‡

आर्यों के बाहर से आगमन के मत को प्रचारित करने के साथ साथ पाश्चात्य विद्वानो ने एक और सिद्धान्त स्थापित किया वह था आय और द्रविड सभ्यता के परस्पर विरुद्ध होने का। उनके अनुसार आर्यों को उत्तर भारत मे फलन तथा अपना अधिकार जमाने का अवसर मिला जब कि दक्षिण भारत मे वहा की मूल द्राविड सस्कृति यथावत् आय प्रभाव से निर्लिप्त रह कर फलती फूलती रही। इस मत को प्रचारित कर विदेशियो ने इस देश के ही उत्तर और दक्षिण भागो मे विरोध तथा वषम्य के भावो को पल्लवित करना चाहा। उन्हें इस दुरभिसधि को पूरा करने मे पर्याप्त सफलता भी मिली। आज हम देखते हैं कि दक्षिण मे और विशेषतया तमिलनाडु प्रान्त में उत्तर भारत के निवासियो उनकी भाषा सस्कृति तथा धार्मिक आस्थाओ के

---

† प्राच्य और पाश्चात्य पृ० १०१

‡ प्राच्य और पाश्चात्य प० १०२

प्रति प्रचण्ड विरोध और दौमनस्य का भाव पाया जाता है। दक्षिण मे प्रचलित भाषा सस्कृति कला एव स्थापत्य तक को उत्तर भारत की भाषा सस्कृति तथा कलाओ से भिन्न सिद्ध किये जाने का ही यह परिणाम है कि रामायण वर्णित राम की लका विजय को उत्तर भारत का दक्षिण का पादाक्रान्त करने का प्रयत्न समझा जाता है तथा सस्कृत भाषा एव उसक साहित्य को पदे पदे तिरस्कृत तथा पददलित किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं। मदिरो के पुजारियो तक को सरकारी आदेश दिये गये है कि वे अपने देवताओ की पूजा अर्चा सस्कृत स्तोत्रो और गीतिकाओ के माध्यम से न कर तमिल भाषा के माध्यम से करे। परकीयो द्वारा बोई गई विरोध की यह विष वल्लरी निश्चय ही एकता प्रेम तथा सद्भाव के फल नही दे सकती।

विवेकानन्द ने इस कपोल कल्पना का खण्डन किया कि उत्तर और दक्षिण मे कोई मौलिक सास्कृतिक विरोध है। आय द्रविड प्रश्न का समाधान करते हुये उन्होने स्पष्ट कहा— एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्राविडी नाम की एक जाति के मनुष्य थे जो उत्तर भारत की आय जाति से बिल्कुल जुदे थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से गये हुये आय हैं वहाँ की अन्यान्य जातिया दक्षिणी ब्राह्मणो से सम्पूण पृथक जाति की हैं। भाषा तत्त्ववित् महाशय मुझे क्षमा कीजियेगा यह मत बिल्कुल बेजड है।'* सारे भारत मे आय जाति के अतिरिक्त और कोई अन्य जाति निवास नही करती यह मानते हुये उन्होने इसी प्रसग मे कहा— सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवाय और कोई नही। †

इसी भाषण मे उन्होंने आर्यों के आदिम निवास स्थान का प्रश्न पुनः उठाया और पाश्चात्यो की भ्रान्त धारणाओ का खण्डन करते हुये उग्र स्वर मे

* भारत मे विवकानन्द प० २६०

† वही प० २६०

कहा—"कुछ लोगो के मत से आय मध्य ऐशिया से आये कुछ दिन हुये यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि आय स्वीटजरलैण्ड की झीलो के किनारे बसते थे। मुझे जरा भी दुख न होता अगर वे सबके सब, इन सब सिद्धान्तो के साथ वही डूब मरते। आज कल कोई-कोई कहते हैं वे उत्तर मेरु मे रहते थे। ईश्वर आर्यो और उनके निवास स्थलो पर कृपा रक्खे! इन सिद्धान्तो की सत्यता के बारे म यही कहना है कि हमारे शास्त्रो मे एक भी शब्द नही है जो प्रमाण दे सके कि आय भारत के कही बाहर से किसी देश से आये।' ‡

जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने इस देश को आर्यावत के प्राचीन नाम से अभिहित किया उसी प्रकार देश निवासियो को आय जसे गौरवास्पद नाम से पुकारा। उनके मतानुसार आय शब्द मे जो चारुता अथ गौरव तथा महत्ता के भाव निहित हैं वे हिन्दू शब्द म नही है। वस्तुत फारसी भाषा के इस शब्द हिन्दू के प्रति उनके मन मे विरक्ति का भाव था जिसे वे यदाकदा अभिव्यक्त किये बिना नही रहत थ। पूना मे दिय गय एक व्याख्यान मे स्वामी दयानन्द ने इस देश को आर्यावत तथा यहा के निवासियो को आय नाम से सम्बोधित करने पर जोर दिया। उन्होने कहा— हमारे देश का नाम आय स्थान अथवा आयखण्ड होना चाहिए सो उसे छोड न जाने हिन्दुस्थान यह नाम कहाँ से निकला? भाई श्रोतागण हिन्दु शब्द का अथ तो काला काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्तान कहने से काले काफिर चोर लोगो की जगह अथवा देश ऐसा अथ होता हैं। तो भाई इस प्रकार का बुरा नाम क्यो ग्रहण करते हो? और आय अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आवत्त कहने से ऐसो का देश अर्थात् आर्यावत का अथ श्रेष्ठो का देश ऐसा होता है सो भाई ऐसे श्रेष्ठ नाम को तुम क्यो स्वीकार नही करते?

---

‡ वही पृ० २६१

क्या तुम अपना मूल का नाम भी भूल गये ? अस्तु। सज्जन गण अब हिन्दु इस नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त इन नामो का अभिमान धरो। गुणभ्रष्ट हम लोग हुये परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमे न होना चाहिये। * स्वामीजी की उपर्युक्त मार्मिक शब्दावली का अर्थ हृदयगम कर पाठक यह सहज ही अनुमान कर लगे कि उन्होने आर्य और आर्यावर्त के प्रयोग पर क्यो बल दिया था ?

स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने एक व्याख्यान मे यह स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दू शब्द की कोई विशेष अर्थवत्ता न होने के कारण वर्तमान सदर्भ मे उसकी सार्थकता नही है। उनके शब्द हैं— जिस हिन्दू नाम से परिचित होना अब हमारी चाल हो गई है इस समय उसकी कुछ भी सार्थकता नही है † परन्तु वे इस शब्द के बहिष्कार के पक्षपाती नही थे। उनकी यह भी धारणा थी कि शताब्दियो से प्रचलित हिन्दू शब्द को केवल इसीलिये त्याग देना अनुचित है कि उसके अर्थ किसी फारसी भाषा के कोश मे काला काफिर चोर आदि लिखे हैं। इस सम्बन्ध मे उन्होने लिखा— मैं हिन्दू शब्द का किसी बुरे अर्थ मे प्रयोग नही कर रहा हू और मैं उन लोगा से कदापि सहमत नहीं जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हैं। यह तो हमारे ऊपर ही पूर्णतया निर्भर है कि हिन्दू नाम अखिल महिमामय तथा आध्यात्मिक विषयो का द्योतक रहे या कि उस शब्द का चिरकाल तक घृणासूचक प्रयोग हो तथा उस शब्द से पद दलित निकम्मी और धर्मभ्रष्ट जाति का बोध हो। यदि आज हिन्दू शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। ‡ निश्चय है कि दयानन्द की भाँति विवेकानन्द हिन्दू शब्द के प्रयोग करने के विरोधी नही हैं। स्वामी दयानन्द के मत का औचित्य तो इसी बात से प्रकट है कि वस्तुत

---

* पूना प्रवचन पृ० ९५–९६ (श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत)

† भारत मे विवेकानन्द पृ० २४ (श्री लका के नगर जाफना मे दिया गया व्याख्यान)

‡ वद प्रणीत हिन्दू धर्म पृ० ५८

सम्पूण प्राचीन भारतीय वाङमय मे आय शब्द का ही प्रयोग मिलता है तथा इसी नाम का व्युत्पत्ति ज य अथ ही भारतीय जाति के उत्कष प्रभाव तथा महत्ता का समग्रत द्योतन कर सकता है। मध्यकाल मे अ य जातियो द्वारा दिये गये नाम को हम किसी न किसी रूप मे अपने साथ जोडे रक्खें इसमे कोई युक्ति नही है। यदि विदेशियो की दासता का परित्याग कर सकते है तो उनके द्वारा प्रदत्त नाम को क्यो नही त्याग सकते ?

☐

अध्याय ८

गुरु के प्रति दृष्टिकोण

भारतीय सस्कृति मे गुरु को अत्युच्च स्थान दिया गया है। योग दशन ने तो ईश्वर का भी पूवज ऋषियो का भी गुरु माना है क्योकि वह काल के बन्धन से रहित है।* आध्यात्मिक साधना के माग का दशन कराने वाले गुरु का प्रशस्ति गान करने मे मध्यकालीन मत पथ और ग्रन्थ सबसे आगे रहे हैं। गुरु को ब्रह्मा विष्णु और शिव के तुल्य बताते हुये कहा गया—

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरुरेव पर ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नम ॥

गुरु को जब साक्षात् ब्रह्म ही कह दिया गया तो पुन कुछ कहना अवशिष्ट नही रहा। अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छन्न एव सत्यासत्य दशन मे असमर्थ नेत्रो को ज्ञानरूपी अञ्जन की शलाका से खोलने वाले गुरु को प्रणाम करना† भारतीय सस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है। गुरु माहात्म्य ने उस समय सीमा का अतिक्रमण कर दिया जब गुरु के उपदेशो आचरणो और

---

* *स पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छदात् ॥ योगदशन १ । १ । २६*

† *अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।*
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरुवे नम ॥

विचारो के प्रति विवेकपूर्ण दृष्टि न रख कर यह माना जाने लगा कि गुरु के अच्छे बुरे उत्तम निकृष्ट सभी प्रकार के काय वदनीय हैं तथा उनके सत् असत् कर्मो के प्रति आलोचना या समीक्षा की दृष्टि न रख कर उसे सर्वोपरि श्रद्धास्पद ही मानना चाहिये। वस्तुत गुरु के प्रति यह अ ध-भक्ति पूर्ण धारणा मध्यकालान पौराणिक विचार दृष्टि का ही परिणाम है। पुरातन वदिक अथवा उपनिषद् कालीन विचारधारा मे गुरुजनो के प्रति पूण आदर सम्मान तथा श्रद्धा का भाव विद्यमान होने पर भी यह स्पष्ट कर दिया गया था कि उनके सुचारितो का ही अनुकरण किया जाय तथा उनके प्रशस्त कर्मों का ही सेवन किया जाय।*

स्वामी दयानन्द ने मध्ययुगीन गुरु भक्ति की तीव्र आलोचना की है। उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि यदि गुरु स्वय अवगुणो की खान स्वार्थी, लोभी कामी छली तथा पाखण्डी होगा तो वह अपने शिष्य वग का किस प्रकार सदाचारी विवेकशील तथा सुपथगामी बना सकता हैं। गुरुआ की अनुचित प्रशस्तिया की आलोचना करते हुये उन्हाने लिखा— ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और पर ब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नही हो सकता। यह गुरु माहात्म्य गुरुगीता भी एक बडी पोपलीला है। गुरु तो माता पिता आचाय और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी शिष्य और गुरु का काम है।† पुन अशिक्षित् साम्प्रदायिक सकीणताओ के पुञ्ज स्वाथ प्रवण तथाकथित गुरुओ की कडी समीक्षा करते हुये वे लिखते हैं— झूठ मू ठ कण्ठी, तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नही किन्तु गडरिये हैं। जसी पोप-

---

* *यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।*
यान्यस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यनि नो इतराणि॥
तत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा वल्ली अनुवाक ११

† *सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास*

लीला पूजारि पुराणियो ने चलाई है वसी इन गडरिये गुरुओ ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगो का है। जो परमार्थी लोग है वे आप दु ख पावे तो भी जगत् का उपकार करना नही छोडते। और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्ही लोभी कुकर्मी गुरुओ ने बनाई है। *

इस प्रकार हम दखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति को विवेक पर आधारित करने का श्लाघनीय प्रयास करते हुये मध्यकाल के वष्णव भक्तिवाद निगु ण सन्तवाद तथा नाथ सिद्ध सूफी आदि मत-सम्प्रदायो मे प्रचलित उस मिथ्या गुरुभक्ति का खण्डन किया जो गुरु के सम्पूर्ण दोषो दुगु णो तथा दुष्टाचारो की अवगणना कर उसे परमात्मा के तुल्य बताते थे। यहाँ यह लिख देना अप्रासगिक न होगा कि अ ध गुरु भक्ति के इस अनावश्यक उद्रेक ने हमारे धर्म दशन तथा साधना के क्षेत्र मे जिस अनाचार, मूढता तथा पाखण्डो का सृजन कर दिया था तथा इसी प्रकार मठो मन्दिरो और धमस्थानो के अधीक्षक स्थानो पर रह कर इन तथाकथित धमगुरुओ ने जिस निरकुशता तथा स्वेच्छाचारिता का वातावरण उत्पन्न कर दिया था उससे धम तथा समाज का सुनिश्चित पतन ही हुआ।

तथापि स्वामी दयानन्द विद्या धम उपासना और आध्यात्मिक साधना के गहन अरण्यो मे शिष्य का यथाथ मागदशन करने वाले गुरुओ के प्रशसक थे। उन्होने अपने योग तथा विद्या गुरुओ के सम्बन्ध मे भी भक्तिपूर्ण उदगार प्रकट किये तथा उनके अशेष उपकारो के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की। वैराग्य धारण कर लेने के पश्चात् जब स्वामी दयानन्द योगसाधना के क्षेत्र मे अवतीण हुये तो उन्हें ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो योगियो से योगाभ्यास करने का अवसर मिला। इन योग गुरुओ ने स्वामी दयानन्द को

---

* सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास

राजयोग मे पूण निष्णात कर दिया । वे आजीवन इन गुरुओ के कृतज्ञ रहे ।*
इसी प्रकार शास्त्र विषयक निमल दृष्टि प्रदान कर धर्माधम सत्यासत्य तथा कत्तव्याकत्तव्य के प्रति जागरूकता तथा तकपूण दृष्टिकोण प्रदान करने के लिये स्वामी दयानन्द अपने विद्या और शास्त्र गुरु अपने समय के अद्वितीय वयाकरण तथा आष प्रज्ञा के धनी स्वामी विरजान द के भी कृतज्ञ रहे जिनके गुरुकुल मे २॥ वष पयन्त अ तवासी के रूप मे रहकर जब उन्होने धमसशोधन समाज सस्कार तथा देशोत्थान के बृहत्तर क्षेत्र मे प्रवेश किया तो उ हे पग पग पर यह अनुभव हुआ कि स्वामी विरजानन्द की सत् असत् अ वेषिणी दृष्टि ही उनका पथप्रदशन कर रही है । ऐसे क्रान्तदर्शी तथा युगान्तरकारी मेधा से सम्पन्न दण्डी स्वामी विरजान द को उनके इस अद्वितीय शिष्य दयानन्द ने परमहस परिव्राजकाचाय परम विदुषा जसे प्रशसापूण विशेषणो से सम्बोधित किया है ।†

धम सशोधक और समाज सुधारक अपने गुरुओ के प्रति कितने ऋणी होते हैं इस पर कोई टिप्पणी करना आवश्यक नही है । उनके समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व के निर्माण मे भी पथदशक गुरुजनो का पर्याप्त हाथ होता है । यह कौन नही जानता कि यदि पश्चिमी शिक्षा से उत्पन्न सन्देहवाद नास्तिकता तथा अनास्था के थपेडे खाते पारिवारिक परिस्थितियो तथा आर्थिक कठिनाइयो से जूझते हुये नरे द्रनाथदत्त जसे युवक को श्री रामकृष्ण जसा गुरु आचाय तथा पथनिर्देशक नही मिलता तो उसकी जीवन नौका निश्चय ही तूफानो भवरो और झझावात का शिकार हो जाती । श्रीरामकृष्ण ने नरे द्र को जीवन के प्रति आश्वस्त भाव धारण करने का परामश दिया परम सत्ता के प्रति उसके हृदय मे विश्वास का भाव पदा किया तथा जीवन की सघषपूण परिस्थितियो का डट कर सामना करने का निर्देश दिया । जीवन के शेष भाग

---

* प० लेखराम कृत स्वामीजी का जीवन चरित प० ३१

† सत्याथप्रकाश की पुष्पिका

मे जब वही नरन्द्र स्वामी विवेकानन्द के रूप मे धम समाज देश तथा मानवता की अशेष सेवा मे जुट पडा तो उसने एक क्षरण के लिये भी अपने आचाय के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने मे कापण्यता प्रदर्शित नही की।

प्रस्तुत अध्याय मे हमे स्वामी विवेकानन्द के स्वगुरु के प्रति दृष्टिकोण तथा उनकी आस्था भावना का ही आलोचनात्मक विवेचन करना है। गुरुभक्ति यदाकदा अनिवादिता का शिकार होकर अ ध भक्ति मे भी परिवर्तित हो जाती है इसका उदाहरण यदि हम देखना चाहे तो हम दूर नही जाना होगा। श्री रामकृष्ण का परलोकवास स्वामी विवेकानन्द के सामने ही हो गया था। एक क्षरण के लिये उनके मन मे विचार आया कि क्या गुरुदेव के पुण्यशरीर को मिश्र देश के राजाओ की ममियो की भाति सुरक्षित नही रक्खा जा सकता ? परन्तु इस विचार की असम्भान्यता को देखकर उन्होने अपने मित्र श्री प्रमदादास मित्र को लिखा— कुछ कारणो से भगवान् रामकृष्ण के शरीर को अग्निसमपरण करना पडा। नि सन्देह यह काय बहुत गर्हित था। * सम्भवत शरीर की नश्वरता का यथाथ और तीव्र भान रखने वाले स यासी भी मानव सुलभ भावुकता के शिकार हो जाते हैं तथा अपने प्रियजनो के पाञ्चभौतिक शरीरो के प्रति भी उनका ऐसा अनुराग उमड पडता है।

ऐसा लगता है कि जहाँ सिद्धान्तो की अपेक्षा यक्ति को अधिक महत्त्व दिया जाता है वहा गुरुडम के पनपने की अधिक सम्भावना रहती है। भूतकाल से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। गौतम बुद्ध की क्रा तिकारी शिक्षाओ का अनुकरण चाहे न्यून ही हुआ पर तु उनके दिवगत होते ही उनके अस्थिशेष तथा भस्म के बटवारे को लेकर तत्कालीन राजाओ मे कितने विवाद हुये इसकी कथा भी कम रोचक नही है। स्वामी विवेकानन्द की जीवनी से विदित होता है कि रामकृष्ण के शरीर वेशेषो को लेकर भी उनके गृही और

---

* पत्रावली भाग १ पृ० ४८

विरक्त भक्तो मे एक बार झगडा उठ खडा हुआ था।*

तथ्य की बात यह है कि स्वामी विवेकानन्द के लिये गुरुवर रामकृष्ण साक्षात् परमात्मा ही थे वे परमसत्ता से नितान्त अभिन्न थे। इसी भावना विगलित दृष्टि से उन्होने अपने आचार्यदेव को देखा था। गुरु का प्रशस्तिपाठ करने मे यदि औचित्य की सीमा का अतिक्रमण भी हो जाय तो इसकी उन्हे विशेष चिंता नही थी। तभी तो उन्होने रामकृष्ण को भगवदावतारो की श्रेणी मे ही प्रतिष्ठित कर दिया। एक सस्कृत पद्य मे श्री रामकृष्ण को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये उन्होने उन्हे ब्रह्मा विष्णु तथा शिव आदि पौराणिक देवताओ से भी ऊपर साक्षात् नारायण ही कहा है—

प्राप्त यद्व त्वनादि निधन वेदोदधिमथित्वा
दत्त यस्य प्रकरणे हरिहर ब्रह्मादिदेवबलम्।
पूण यत्तु प्राणसारभमि नारायणानाम्
रामकृष्ण स्तनु धत्ते तत्पूण पात्रमिद भो॥

अर्थात् अनादि अनन्त वेदरूप समुद्र का मथन करके जो कुछ मिला है ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवताओ न जिसमे अपनी शक्ति का नियोग किया है जिसे पार्थिव नारायण कहना चाहिये अर्थात् भगवदावतारो के प्राणो का सार पदाथ है श्री रामकृष्ण अमृत के पूण पात्र स्वरूप उस देह को लेकर आये थे।†

जब गुरु और भगवान् को एकाकार कर दिया जाता है तभी कठिनाई उत्पन्न होती है। यदि किसी मनुष्य मे ही सवज्ञता सवशक्तिमता तथा सर्वोच्च पूणता की कल्पना कर ली जाय तो किसी पृथक ईश्वरीय आदश को मानने के लिये कोई अधिक गुजाइश नही बचती। मनुष्य निश्चय ही अल्पज्ञ

---

* विवेकानन्द चरित पृ० १०६

† पत्रावली भाग १ पृ० १३८

अल्पशक्ति युक्त तथा सीमित आदर्शों को चरितार्थ करने वाला होता है। तथापि श्रद्धा के अतिरेक से जब हम उसको परमात्मा का स्थानापन्न मान लेते हैं तो हमारा आस्तिक भाव कुण्ठित हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने गुरु मे ही ईश्वरत्व का चरम विकास देखा उन्हे आदर्श का पूर्ण प्रतिफलन श्री रामकृष्ण के चरित्र मे दीख पडा तभी उन्होने अपने एक पत्र मे लिखा—'यद्यपि ईश्वर सर्वत्र है तो भी उसको हम केवल मनुष्य चरित्र के द्वारा जान सकते है। श्री रामकृष्ण के जैसा पूर्ण चरित्र कभी किसी महापुरुष का नही हुआ। *

अन्य शब्दो मे यदि हम कहना चाहे तो कहेगे कि स्वामीजी के लिये उनके गुरु साक्षात् परमेश्वर थे। यहाँ तक कि यदि परमात्मा से कोई ऊची अलौकिक कल्पना हो सकती है तो वे उसका भी प्रयोग अपने गुरु के लिये कर सकते हैं। गुरु ईश्वरावतार हैं। उनकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। गुरुपूजा और ईश्वर पूजा अभिन्न है। विवेकानन्द लिखते हैं— साधारण गुरुओ से श्रेष्ठ एक और श्रेणी के गुरु होते हैं और वे है— इस ससार मे ईश्वर के अवतार। वे केवल स्पर्श से यहाँ तक कि इच्छा मात्र से ही आध्यात्मिकता प्रदान कर सकते है। उनकी इच्छा से पतित से पतित व्यक्ति भी क्षण भर मे साधु हो जाता है। वे गुरुओ के भी गुरु हैं। नर देहधारी भगवान् हैं। उनके माध्यम बिना हम किसी अन्य उपाय से भगवान् को नही देख सकते। हम उनकी उपासना किये बिना रह ही नही सकते। और वास्तव मे वे ही एक मात्र ऐसे है जिनकी उपासना करने के लिये हम बाध्य है। †

ध्यान देने की बात यह है कि विवेकानन्द की गुरु के प्रति यह दृष्टि मध्यकालीन उस साम्प्रदायिक गुरुभावना से अधिक भिन्न नही है जिसमें गुरु

* *पत्रावली भाग १ पृ० १००*

† *भक्तियोग पृ० ४२*

को कही-कही परमात्मा से भी बढ कर स्थान दिया गया है। उपनिषद्कार ऋषि तो कहते हैं कि परमात्मा उसी को अपने स्वरूप का ज्ञान कराता है * जिसे वह अपना भक्त चुन लता है जब कि विवेकानन्द की यह धारणा है कि गुरु पतितो का उद्धार करने वाला तो है ही वह इच्छा मात्र से ही लागो म आध्यात्मिकता क भाव उत्पन्न कर सकता है। हमारे विचार से उपनिषद्कार का मत ही अधिक प्रामाणिक और मान्य है।

निश्चय ही स्वामी विवेकानन्द के इन विचारो से मनुष्य पूजा को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु उनकी दृष्टि मे यह मनुष्य पूजा सवथा उचित ही है। अपने एक पत्र मे उन्होने स्पष्ट लिखा— वेदो मे पहला धर्म गुरु पूजा मानी गई है ईश्वर भी मनुष्य रूप मे ही जाना जा सकता है। यदि ईसा मसीह कृष्ण और बुद्ध की पूजा करने मे कोई हानि नही है तो इस मनुष्य (श्री रामकृष्ण) को पूजने म क्या हानि हो सकती है। † अवतारो और मसीहाओ की पूजा का समथन करते समय इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि कही वह अतिवादिता का रूप धारण न कर ले तथा उस परिस्थिति मे आदश और चरित्र की पूजा का स्थान मात्र स्थूल व्यक्ति पूजा ही न ग्रहण कर ले।

परन्तु विवेकानन्द के एतदविषयक विचारो का अध्ययन करने से तो हम इसी निष्कष पर पहुँचते हैं कि वे स्वगुरु की स्थूल पूजा को ही विशेष महत्त्व देते हैं। पौराणिक देवपूजा के विधान मे जिस प्रकार अन्य लोकवासी देवताओ के आवाहन षोडशोपचार पूजन तथा विसजन आदि का उल्लेख मिलता है वसी ही आवाहन तथा नमस्कार आदि की क्रियाओ का उल्लेख स्वामीजी ने रामकृष्ण के प्रसग मे भी किया है। वार्तालाप के एक सदभ मे

---

* *नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवषवणुते तेन लभ्यस्तस्यष आत्मा विवणुते तनू स्वाम् कठ० १। २। २२*

† *पत्रावली भाग २ प० ४*

उ होने श्री रामकृष्ण के आवाहन की बात कही तथा स्वगुरु को धर्म का सस्थापक सव धम स्वरूप तथा अवतारो मे वरिष्ठ बताया।* वे रामकृष्ण की पादुकाओ पर पुष्प अर्पित करने एथा गुरु प्रतिमा को क्षीर भोग चढ़ाने आदि का भी समथन करते थे† तथा अपने गुरु भाइयो से इस बात का आग्रह करते थे कि वे अपने प्रवचनो और उपदेशो मे श्री रामकृष्ण कहते थे' आदि का अधिकाधिक प्रयोग कर गुरु वचनो को आप्त वाक्यो के तुल्य उद्धत करें।

अपने गुरुदेव के प्रशस्तिगान मे कभी कभी तो स्वामी विवेकानन्द औचित्य की सभी सीमाओ का अतिक्रमण कर जाते थे। ऐसा करते समय वे ससार के अन्यान्य धार्मिक महापुरुषो से श्री रामकृष्ण की तुलना ही नहीं करत अपितु राम कृष्ण बुद्ध आदि को उनसे हीन भी सिद्ध करने का यत्न करते। महापुरुषो की तुलना करना कोई अपराध नही है किन्तु वह पूर्वाग्रह रहित तथा तथ्य पुष्ट होनी चाहिये। हमे खेद है कि विवेकानन्द ने रामकृष्ण की प्रशसा मे औचित्य का किञ्चित मात्र भी ध्यान नही रक्खा जैसा कि निम्न उद्धरण से ज्ञात होता है— जिनकी पवित्रता प्रम और ऐश्वय का राम, कृष्ण बुद्ध यीशू चतन्य आदि मे कणमात्र प्रकाश है बुद्ध कृष्ण आदि का तीन चौथाई हिस्सा कपोल कल्पना के सिवा और क्या है? बुद्ध कृष्ण यीशू पदा हुये थे या नही इसका कोई प्रमाण नही है। और साक्षात् देवता को देख कर भी तुम्हे कभी कभी मतिभ्रम होता है।'‡ पवित्रता प्रेम और ऐश्वय मे कौन किससे कितना बडा है इसको थोडी देर के लिय छोड भी दें तो इस कथन मे कौनसी तुक है कि बुद्ध कृष्ण आदि की ऐतिहासिकता को ही नकारा जाय तथा उनक अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न

---

* *स्थापकाय च धमस्य सव धम स्वरूपिरा।*
अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय त नम ॥
विवकान दजी के सग मे पृ० ३६

† *विवेकानन्दजी के सग मे पृ० १३६ १४३*

‡ *पत्रावलो भाग १ पृ० १८७*

लगा दिया जाय । क्या श्री रामकृष्ण के जीवन और चरित्र के साथ अनेक अलौकिक बातो और किवदन्तियो को नही जोडा गया है पुन यह कहना कहाँ तक उचित है कि ' उन पर जिसका विश्वास नही है और उनमे जिसकी भक्ति नही है उसका कही कुछ न होगा । * यह कथन तो सामी मजहबो के पगम्बरो मे विश्वास करने से ही मनुष्य का निस्तार होने की कट्टरपथी धारणा के तुल्य है ।

विवेकानन्द की यह चेष्टा रही कि वे अपने गुरु को ईश्वर का पूण अवतार आधुनिक युग का पगम्बर और अन्य धर्माचार्यों से श्रेष्ठ घोषित कर दे । उनके एतदविषयक कथन कितने भावकतापूण तक विरुद्ध तथा अन्ध श्रद्धायुक्त हैं इसकी उन्होने कभी चिंता नही की । तभी तो अपने एक पत्र मे उन्हाने लिखा— श्री रामकृष्णदेव ईश्वर के अवतार थे, इसमे मुझे कुछ भी सन्देह नही है । श्री रामकृष्णदव का अध्ययन किये बिना वेद वेदान्त का महत्त्व समझाना असम्भव है । भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ ही था यह हम बिलकुल निश्चित रूप से नही कह सकते और बुद्ध तथा चतन्य जसे अवतार पुराने हैं पर श्री रामकृष्णदेव सबकी अपेक्षा आधुनिक और सबसे पूण हैं ।' † स्वगुरु की महत्ता स्थापित करते हुये यदि विवेकानन्द श्रीकृष्ण आदि की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे शका उपस्थित नही करते तब भी कोई हानि नही थी ।

किसी महापुरुष की श्रेष्ठता उसके व्यक्तित्व की महत्ता चरित्र की उच्चता गुण वभव तथा परोपकार वृत्ति से आकी जाती है । हमारी विवेचना का यह अभिप्राय नही है कि स्वामी रामकृष्ण परमहस उपयुक्त गुणो से हीन थे अपितु हमारा जोर इस बात पर है कि मात्र अतिशयोक्तिपूण प्रशस्तिपाठ से ही गुरुओ तथा धर्माचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन नही किया

---

* *पत्रावली भाग* १ प० १८८

† *पत्रावली भाग* २ प० ५४

जाता। स्वामी विवेकानन्द ने अधिकांश मे यही किया है। एक स्थान पर वे शास्त्रो को मतवाद मात्र कहते है और श्री रामकृष्ण को उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति बताते हैं।* अन्यत्र उन्होंने कहा कि रामकृष्ण अवतार की जन्मतिथि से सत्ययुग का आरम्भ हुआ।† कही वेद और वेदान्त जैसी पुस्तकों को संग रख कर उनकी आरती उतारने का आदेश अपने भक्तजनो को दिया।‡ अन्य तथाकथित अवतारो और धर्म ग्रन्थो की तुलना मे तो वे श्री रामकृष्ण को सदा ही वरिष्ठ तथा श्रेष्ठ मानते थे। उनकी मान्यता थी कि वेद-वेदान्त तथा अन्य अवतारो ने जो भूतकाल मे किया श्री रामकृष्ण ने उसकी साधना एक ही जीवन मे कर डाली। × उनका यह भी दावा था कि वेद-वेदान्त अवतार और इस प्रकार की अन्य बाते कोई समझ नही सकता जब तक वह उनका (श्री रामकृष्ण का) जीवन न समझ ले। +

एक ओर वे अपने आचार्य को समस्त अवतारो से श्रेष्ठ और ज्येष्ठ बताते हैं तथा उनकी सेवा पूजा को ही मोक्ष का एकमात्र उपाय मानते है वहाँ दूसरी ओर उनके मन मे यह शंका भी विद्यमान थी कि बुद्धिवाद के युग मे रामकृष्ण के जीवन और चरित को अतिरञ्जना से बचाना होगा। इसीलिये वे यत्र तत्र अपने भक्तो और साथियो को इस बात से सावधान करते चलते है कि रामकृष्ण के जीवन का आलेखन विशुद्ध मानवीयता के आधार पर किया जाय उसमे किसी प्रकार के चमत्कारपूर्ण उल्लेख न हो आदि। पता नही इस प्रकार की दुविधाग्रस्त मनोवृत्ति स्वामी विवेकानन्द को क्यो सता रही थी? यदि वे यह महसूस करते हैं कि रामकृष्ण अतिमानव तथा ईश्वरावतार

---

* पत्रावली भाग २ पृ० २६

† पत्रावली भाग २ पृ० १०६

‡ पत्रावली भाग २ पृ० ११५

× पत्रावली भाग २ पृ० ११६

\+ पत्रावली भाग २ पृ० १२०

हैं तो उसका धल्लडे से प्रचार करने म उन्हे सकोच नही होना चाहिये। किन्तु उन्होने कई प्रसगो मे इस बात पर भी जार दिया है कि रामकृष्ण के जीवन वृत्त को अतिमानवीयता से बचाना होगा। उदाहरणाथ एक पत्र मे उन्होने लिखा— श्री रामकृष्ण की एक छोटीसी जीवनी लिखो सचेत रहना कि उसमे कोई सिद्धाई घुसने न पाये। * एक अन्य प्रसग म लिखा—"रामकृष्ण अवतार थ इत्यादि बातो का प्रचार करने की जरूरत नहीं।' † प्रकारान्तर से यही बात लिखी— रामकृष्ण अवतार हैं इत्यादि मत सवसाधारण मे प्रचारित नही करना। ‡ विवेकानन्द शायद अपने अन्तस्तल मे यह तो मानते थे कि रामकृष्ण का जीवन और व्यक्तित्व नाना चमत्कारा से परिपूण है परन्तु उन्ह इस बात मे आशका थी कि आधुनिक बुद्धिवाद प्रधान युग मे ये चमत्कारपूण बात मान्य हो सकेंगी साथ ही यह भी भय था कि सामान्य जन समाज मे यदि इन अतिमानवीय चमत्कारो का प्रचलन होता है तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि की ही सम्भावना है। इसी बात को लक्ष्य मे रखकर उन्होने लिखा— 'जब श्री रामकृष्ण के जीवन मे शिक्षा के लिये अपार ज्ञान भण्डार भरा है तो चमत्कार जसी अनावश्यक बातो पर जोर देने से क्या लाभ ? × तथा श्री रामकृष्ण को अवतार मानने के लिये लोगो पर जोर न दो। +

तथापि श्री रामकृष्ण के प्रति स्वामी विवेकानन्द का आग्रह कुछ कम नही है। उनका एक एक शब्द विवेकानन्द के लिये वेद वेदान्त से अधिक

---

* *पत्रावली भाग १ पृ० ११७*

† *पत्रावली भाग १ पृ० १८९*

‡ *पत्रावली भाग १ पृ० १९७*

× *पत्रावली भाग २ पृ० २८*

+ *पत्रावली भाग २ पृ० ८६*

मूल्यवान है।‡ रामकृष्ण को ईश्वरावतार मानने मे एक तक वे यह भी उपस्थित करते हैं कि विश्वविद्यालय के असाधारण योग्यता रखने वाले विद्वानो ने उन्हे ईश्वर का अवतार मानाहै। × मानो विश्वविद्यालय की योग्यता ही ईश्वरावतार की घोषणा के लिये पर्याप्त कसौटी हो। ऐसी बात नही कि रामकृष्ण की अद्वितीय महत्ता को स्थापित करने के लिये स्वामी विवेकानन्द ने केवल भावुकता का ही सहारा लिया हो। उनकी यह धारणा थी कि रामकृष्ण पूर्वाचार्यों और अवतारो की तुलना मे अधिक उदार मौलिक तथा उन्नतिशील हैं वे अन्य प्राचीन आचार्यो को एकदेशीय मानते हैं तथा श्री रामकृष्ण को योग भक्ति ज्ञान और कम का समन्वयकर्ता सिद्ध करते हैं।* यहा तक तो ठीक परन्तु जब स्वामीजी का यही कथन इस निष्कष पर पहुँच जाता है तब कठिनाई पदा होती है कि पिछले महापुरुष अब कुछ प्राचीन हो चले हैं। अब नवीन भारत है जिसमे नवीन ईश्वर नवीन धम और नवीन वेद हैं। अपने मत मे थोडी कट्टरता की भी आवश्यक है।'† स्वामीजी ने अपने इस मन्तव्य की व्याख्या नही की कि नवीन भारत के नवीन ईश्वर नवीन धम और नवीन वेद से उनका क्या अभिप्राय है परतु अन्य सुधारको को उनकी सकीणता और कट्टरता के लिये फटकारने वाला विवेकानन्द जब स्वय ही कट्टरता की आवश्यकता अनुभव करने लगे तो कहने के लिये कुछ शेष नही रहता।

श्री रामकृष्ण के उपदेशो और विचारो मे स्वामी विवेकानन्द को राष्ट्रीय आदर्शों की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई थी। उनका स्पष्ट मत था कि श्री रामकृष्ण मे हमने एक आदश को प्राप्त किया है। यदि राष्ट्र उठना चाहे तो

---

‡ पत्रावली भाग २ प० ५५

× पत्रावली भाग २ प० ५५

* पत्रावली भाग २ पृ० १४०

† पत्रावनी भाग २ पृ० १४१

मैं ऊचे स्वर से घोषित करता हू इसी नाम पर मबको मतवाला बनना पडेगा। ‡ इस बात का विचार तो हम आगामी अध्याय मे करेंगे कि सवधम समभाव आदि के जिन तथाकथित आदर्शों का श्री रामकृष्ण ने निरूपण किया वे यथाथ मे कितन व्यवहाय हैं कि‍तु यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि श्री रामकृष्ण की सम्पूण साधना और विचार प्रणाली व्यक्ति निष्ठ यष्टि के‍द्रित थी समाज सेवा देशभक्ति जाति सुधार आदि उनकी दृष्टि मे दम्भ मात्र थे। उ‍हाने यदा कदा प्रसग आने उन सुधारको तथा समाज सेवा के लिये कृत प्रतिज्ञ महापुरुषो की खिल्ली ही उडाई जो आत्मोद्धार की बलि देकर समष्टि हित के लिये उत्सर्गीकृत थे। अत स्वामी विवेकान‍द का यह कथन निता‍त असमञ्जसपूण है कि रामकृष्ण के आदर्शों मे राष्टीय आदश को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई थी।

जिस समग्र हि‍दू धम का बचाव करने के लिये श्री रामकृष्ण प्रतिज्ञाबद्ध थे वह अपने आप म कोई सुसगठित अवयवो वाली वस्तु नही थी। वस्तुत सुधारक वग की मूल अवधारणा यही थी कि शताब्दियो से परिवर्तित होने वाले नाना प्रकार की सत् असत् प्रवृत्तियो एव विभिन्न उपासना प्रणालियो आदि को अपने भीतर समाविष्ट करने वाले तथाकथित हि‍दू धम के सडे गले अगो को काटे बिना उसकी अस्तित्व रक्षा सम्भव नही है जब कि श्री रामकृष्ण की धारणा इससे सवथा विपरीत थी। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे उन्होने कभी हि‍दू शास्त्र को तथा धम को काट छाट कर इधर उधर जोड तोडकर अपने मन के अनुसार गढने की चेष्टा नही की बल्कि वे दृढतापूवक कहते थे मैं शास्त्र मर्यादा को विनष्ट करने के लिये नही—पूण करने के लिये आया हू। * परन्तु विकृत अस्वस्थ एव जडताग्रस्त धम को पुन उद्‌बुद्ध करने के लिये क्या उसका सर्वांगीण सशोधन अपेक्षित नही है और ऐसा करने के लिये

---

‡ *विवकान‍द चरित प० २९६*

* *विवेकान‍द चरित पृ० ४३९*

क्या कदाचारो अनाचारो दुष्ट एव अनथकारी रीति नीतियो का बहिष्कार किये बिना काम चल सकता है ? यदि शास्त्रा मे कालातर मे प्रविष्ट हो जाने वाली अनथकारी बातो को हटाना ही शास्त्र मर्यादा को विनष्ट करना है तब तो वतमान सुधारक ही क्यो शकर रामानुज आदि मध्यकालीन आचाय एव कबीर नानक आदि सन्त समुदाय के लोग भी उतने ही दोषी हैं क्योकि उन्होने भी अपने समकालीन धम मे प्रचलित रूढियो और बुराइयो का डट कर विरोध किया था ।

बात यह है कि श्री रामकृष्ण सवथा व्यक्तिगत साधना मे लीन आत्मोन्मुख आत्मकेन्द्रित एक भावुक महापुरुष थे । स्वामी विवेकानन्द के ही शब्दो मे श्री रामकृष्ण जगत् मे कुछ भी बुराई नही देख पाते थे और वे उस बुराई को दूर करने के लिये चेष्टा करने का कोई प्रयोजन नही देखते थे ।* स्पष्ट है कि इस यक्तिनिष्ठ आध्यात्मिक साधना के पथ से सुधारक वग का माग भिन्न होता है । चाहे एक भावुक प्रकृति के व्यक्ति के लिये ससार मे कोई बुराई न हो परन्तु इससे नाना प्रकार की आधि व्याधिया से सकुल विश्वप्रपञ्च की नानाविध समस्याओ का समाधान नही होता । यथाथ दृष्टि सम्पन्न सुधारक तो समाज हित और लोक मगल को ही अपना लक्ष्य बना कर बुराई के उन्मूलन का तीव्र प्रयास करता है ।

यहाँ इतना स्थान नही है कि श्री रामकृष्ण के सिद्धान्तो और विचारो की विस्तृत समीक्षा की जाय । उनके जस रहस्य-भावापन्न भावुक प्रकृति के पुरुष के सम्बन्ध मे इतना ही कहना अल है कि उनका वचारिक दृष्टिकोण पुयर्जागरणकाल के उदारमना सुधारक वृन्द से सवथा भिन्न था जो धम समाज एव राष्ट्र मे व्याप्त बहुविध अनाचारो और मिथ्याविश्वासो का उन्मूलन करने के लिये बद्ध परिकर थे । इसके विपरीत रामकृष्ण परम्परागत आस्थाओ मूल्यो और धम विषयक अवधारणाओ को न केवल यथावत् स्वीकार कर लेने के ही

---

* देववाणी पृ० ६६

पक्ष मे थे अपितु उनके प्रचार के भी पक्षपाती थे। अपने शिष्यो म उन्होने स्वय यह भाव जागृत किया था कि वे ईश्वरावतार हैं—अपन जीवन के अंतिम क्षणो म उन्होने विवेकानन्द से कहा था जो राम थ जो कृष्ण थे वे ही अब इस शरीर मे रामकृष्ण हैं तेरे वेदान्त के मत स नही। *

शिष्य वग म श्री रामकृष्ण के प्रति जो अद्भुत एव अलौकिक विश्वास भाव जागृत किया गया उसके चाहे जो कारण रहे हा परन्तु समकालीन प्रबुद्ध समाज के अनेक लोग उनकी रहस्यसमाधियो को एक अन्य दृष्टिकाण से भी देखते थे। ब्राह्मनेता प० शिवनाथ शास्त्री ने कहा था वे सब समाधिभाव जो कुछ देखते हो स्नायु दुबलता के ही चिह्न हैं। अत्यधिक शारीरिक कठोरता का अभ्यास करन क परिणाम मे परमहस का मस्तिष्क बिगड गया है। †

हो सकता है कि परमहस के प्रशसकगण ब्राह्म विचारक की धारणा से असहमति प्रकट करे परन्तु हमारा सुनिश्चित विश्वास है कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तुत की गई गुरु प्रशस्ति अतिरञ्जनापूण होने के साथ-साथ नाना अन्तर्विरोधो से भी परिपूण है।

□□

---

* *विवेकानन्दजी के सग मे प० ८३*

† *विवेकानन्द चरित प० ७६*

अध्याय ९

सर्व धर्म समन्वय तथा सम्प्रदाय भावना

भारतीय पुनर्जागरण के आन्दोलनो मे निहित विचारधाराओ का जब हम सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन करते है तो हमे उनमे कुछ विभिन्नताय स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। एक ओर राममोहनराय केशवचन्द्र सेन रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानन्द आदि ऐसे विचारक हैं जो पदे पदे सर्व धर्म समन्वय की बात करते है सब धार्मिक विचारधाराओ के प्रति सहिष्णुता रखने का उपदेश देते हैं तथा इसे हिन्दू चिन्तन की एक मौलिक विशेषता के रूप मे निरूपित करते हैं। स्वामी दयानन्द की एतद् विषयक विचारणा भिन्न प्रकार की है। वे भी मानव मात्र की एकता का उद्घोष करते हैं सम्प्रदायवादी मताग्रहो से उन्हे तीव्र घृणा है किन्तु साथ ही उनकी यह भी मान्यता है कि धर्म एव सम्प्रदाय दो भिन्न वस्तुयें हैं। सस्कृत के जिस धृ धातु से धर्म शब्द निष्पन्न हुआ है उसका अर्थ ही है धारण करना। फलत उन मौलिक तत्त्वो को धर्म की सज्ञा दी जा सकती है जिनके कारण कोई वस्तु अपना अस्तित्व बनाये रखती है। मनुष्य की मूलभूत विशिष्टतायें ही उसका धर्म है और यह धर्म समस्त मानव समुदाय के लिये समान ही है।

सम्प्रदाय धर्म से भिन्न है। किसी व्यक्ति विशेष का उसके वारिसो के के प्रति जो दाय है उसे 'सम्प्रदाय' नाम से अभिहित किया जा सकता है। किसी महापुरुष द्वारा प्रवर्तित आचार विचार तथा जीवन यापन का विशिष्ट

ढ़ग साम्प्रदायिक आचार निष्ठा कहलाता है । दशन सम्बन्धी विभिन्न विचारणायें ईश्वरीय विश्वास के विभिन्न रूप तथा पूजा उपासना की भिन्न-भिन्न प्रणालिया निश्चय ही साम्प्रदायिक हैं क्योकि उनका प्रवतन भिन्न भिन्न पुरुषो द्वारा किया गया था और वे उनके अनुयायियो द्वारा निस्सकोच रूप मे स्वीकार कर लिये गये थे। इस प्रकार जरदुश्त, ईसा और मुहम्मद द्वारा प्रचलित और प्रचारित मत विश्वास जहा सम्प्रदाय की सीमा में आयेंगे वहाँ भारत के भी शव वष्णव कबीर पथ दादू पथ आदि विविन्न व्यक्ति निष्ठ विचारणाओ को सम्प्रदाय ही कहा जायगा ।

यह अत्यन्त आश्चय की बात है कि धम के सावभौम चिरन्तन और सार्वकालिक स्वरूप को दृष्टिपथ से ओझल कर सव धम समन्वय की बात करने वाले हमारे महापुरुषो ने उसे मनुष्य द्वारा निर्मित एव प्रचलित सकीणधर्मा सम्प्रदाय से गड्डमड्ड कर दिया और मनुष्यमात्र के लिये अभीष्ट सत्य न्याय दया क्षमा अहिंसा मत्री और बधुत्व आदि मानव धम मे सन्निहित गुणो को साम्प्रदायिक मत विश्वासो और आग्रहो की समतुला पर रख कर धर्म के उदात्त एव महनीय स्वरूप को क्षति पहुँचाई ।

स्वामी दयानन्द के धम और सम्प्रदाय विषयक विचारों मे जसी स्पष्टता तार्किकता तथा युक्ति-प्रवणता है वसी अन्य समकालीन धर्माचार्यों मे दृष्टिगोचर नहीं होती । अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्याथप्रकाश की समाप्ति पर उपसहार रूप मे अपने मन्तव्यो को स्पष्ट करते हुये उन्होंने इसी सवतन्त्र सिद्धान्त अथवा सावजनिक धम की व्याख्या की है । वे लिखते हैं— सवतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सावजनिक धम जिसको सदा से मानत आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधम कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके । यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुये जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपात रहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य

और जिसको नही मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नही होता।"*

इसी ग्रन्थ के एकादश समुल्लास के अन्त मे भी उन्होने धर्म और सम्प्रदाय के पार्थक्य को स्पष्ट करते हुये मनुष्य मात्र के धर्म और अधर्म की एकता वास्तविक धर्म तथा बाह्याचारो और कर्मकाण्डो की पृथकता एव विविधता आदि पर अत्यन्त विशद विचार किया है। स्वामीजी के समक्ष एक कठिनाई यह भी थी कि उनके द्वारा किये गये सम्प्रदायो और अन्धमत विश्वासो के खण्डन का मूल अभिप्राय बहुत कम लोग समझ पाये थे। अधिकाश ने उन्हे परमत निन्दक सम्प्रदाय विद्वेषी असहिष्णु समालोचक और न जाने किन किन अलीक विशेषणो से सम्बोधित किया। सम्भवत साम्प्रदायिक मतो की अनर्गल अविवेकपूर्ण तथा आचार विनाशक प्रवृत्तियो के खण्डन मे निहित अपने मूल भाव को स्पष्ट करने के लिये ही स्वामीजी ने निम्न पूर्वपक्ष स्थापित कर स्वय ही उसका समाधान किया— प्रश्न—आप सबका खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने अपने धर्म मे सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिये। उत्तर—धर्म सबका एक होता है वा अनेक। जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध है। जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के बिना दूसरा धर्म नही हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक-पृथक होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक ही हैं अनेक नही।' †

यह लिखने मे हमे कोई संकोच नही कि धर्म और सम्प्रदाय विषयक स्वामीजी के इन स्पष्ट विचारो को ठीक-ठीक प्रकार से नही समझा गया। एक ओर तो उनकी धर्मालोचना तथा सम्प्रदाय परीक्षा आदि को सकीर्ण दृष्टि से देखा गया तथा उनको असहिष्णु तथा खण्डन प्रिय कहा गया दूसरी ओर

---

* सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

† सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास

धम और सम्प्रदाय के तात्त्विक अन्तर को न समझ कर तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव उत्पन्न करने के लिये सवधम समन्वय की बातें कही गइ। आलोच्य प्रसग मे हम स्वामी विवेकानन्द के एतद् विषयक विचारो की समीक्षा करेंगे।

मानव जीवन तथा उसके विचारो मे वविध्य को अस्वीकार करना तो सत्य से पराङमुख होना ही है तथापि मनुष्य क जीवन तथा उसके चिन्तन म जितना अधिक सामञ्जस्य एकता तथा समन्वय हो उतना ही अभीष्ट माना जायगा। क्या भाषा सस्कृति विचार एव मान्यताओ की एकता को किसी भी रूप मे अश्रयस्कर कहा जा सकता है? पुन स्वामी विवकान द क इस कथन के औचित्य को किस प्रकार स्वीकार किया जाय जिसम वे कहते है—

हम किसी भी मतावलम्बी को अलग नहा करना चाहत। वह एकमात्र निराकार ईश्वर को ही माने या चाहे सव ब्रह्ममय जगत् ही कहे अद्व तवादी हो चाहे बहुदेवताओ का विश्वासी हो अज्ञेयवादी हा चाहे नास्तिक हम किसी को अलग करना नहीं चाहत हैं। चरित्र गठन क बार मे भी हम किसी विशेष नतिक मत को ही ग्रहण कहने के लिये नहीं कहते और न खानपान के सम्ब ध मे ही सभी को एक निर्दिष्ट नियम पर चलाने को कहते हैं। *

स्वामीजी के उपयु क्त कथन के तीन बि दु विचारणीय हैं—

(१) क्या अध्यात्म और धम मे किसी विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन और प्रचार अनुचित है? यदि ऐसा है तो स्वय स्वामी विवेकानन्द ने ही वेदान्त की दु दुभी बजाते हुये देश-देशान्तरो मे सव ब्रह्ममय जगत् का उद्घोष क्यों किया?

(२) चरित्र गठन के सम्ब ध म किसी अनुकरणीय आदश का प्रचार

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १०१

और प्रसार क्यो अनुचित है ? यदि प्राचीन आर्यों की चरित्र विषयक परिकल्पना अत्युच्च कोटि की है तो उसका अन्यो को उपदेश देना क्या हितकर नही होगा ? क्या स्वामी विवेकानन्द ने ही हिन्दू आदर्श और हिन्दू चरित्र का गौरव गान पश्चिमी देशो के सम्मुख नही किया ?

(३) इसी प्रकार खानपान के नियमो मे भी यदि नतिकता स्वास्थ्य और मनोविज्ञान की धारणाओ को सम्मुख रख कर किसी समुचित प्रणाली पर चलने के लिये कहा जाय तो क्या वह अनुचित है ?

जब कोई विचारक धम और सम्प्रदाय के तात्त्विक अन्तर को विस्मृत कर केवल शब्द जाल के ही द्वारा अपनी बात कहने लगे तो वह केवल वागाडम्बर की ही सृष्टि करता है। उसके कथन मे तत्त्व की बाते कम होती हैं। स्वामी विवेकानन्द के भी अनेक कथन इसी कोटि के है। उदाहरणाथ समन्वय और सहिष्णुता की चर्चा करते हुये वे लिखते हैं— सभी धम सत्य है हम केवल सब धर्मों को सहन ही नही करते वरन् उन्हे स्वीकार भी करते है।'* तथा दूसरे धम या मत के लिये हमे केवल सहनशीलता का प्रयोग नही करना चाहिये परन्तु उन्हे स्वीकार कर प्रत्यक्ष जीवन मे परिणत करना चाहिये।'† प्रथम उद्धरण को सही रूप मे यदि प्रस्तुत किया जाय तो उसका भाव यही होगा कि प्रत्येक तथाकथित धम मे कुछ मौलिक समान सिद्धान्त पाये जाते हैं। वे सभी मनुष्यो के लिये समानरूप से आचरणीय हैं। परन्तु यदि इस कथन का यह अभिप्राय हो कि एक मनुष्य हिन्दू मुसलमान, पारसी और सभी विभिन्न मतावलम्बियो की जीवन प्रणाली को एक साथ ही धारण कर सकता है तो यह कथन मात्र गोरखधधा ही कहा जायगा। द्वितीय उद्धरण भी कम भेद भरा नही है। विवेकानन्द के गुरु परमहस रामकृष्ण ने भी अपने जीवन मे सभी साम्प्रदायिक साधन प्रणालियो को

---

* *पत्रावली भाग* २ प० ४

† *पत्रावली भाग* २ पृ० २७

अपनाने की बात ही नही की थी अपितु उन्हे क्रियान्वित भी किया था। परन्तु सब धर्मों को अपने जीवन मे स्वीकार करने या प्रत्यक्ष करने की यह बात कितनी विचित्र और हास्यास्पद साथ ही अकल्पनीय भी बन सकती है यह स्वय रामकृष्ण के ही उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। विवेकानन्द के फ्रच जीवनी लेखक श्री रोमा रोला ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है— रामकृष्ण ने एक दीन मुसलमान को प्राथना रत देखा और उसकी झुकी हुई देह की गुदडी के भीतर भी पहचान लिया कि इस व्यक्ति ने इसलाम द्वारा भी ईश्वर को पा लिया है। रामकृष्ण ने मुसलमान से भी दीक्षा मागी और कई दिनो तक अपने देवता को बिलकुल भूल गये। वह मन्दिर की चहार दीवारी से बाहर ही रहते रहे तथा अल्लाह का नाम रटत रहे। उन्होंने मुसलमानी पोशाक भी पहन ली और यहाँ तक कि गोमास भक्षण के अकल्पनीय पाप के लिये प्रस्तुत हो गये। हतबुद्धि माथुर बाबू ने जो मन्दिर के और रामकृष्ण के सरक्षक थ उन्हे रोकने का यत्न किया। उन्होने गुप्त रूप से भोजन भी मुसलमान की देखरेख में किन्तु ब्राह्मण द्वारा बनवाया जिससे रामकृष्ण धमभ्रष्ट न हो जाव। .. इस प्रकार उन्होंने इस्लाम के ईश्वर को पाया।'*

रामकृष्ण की इस इस्लामी मत की साधना से तो सम्भवत इस्लाम के विचारक गण भी सहमत नही होंगे क्योंकि इस्लाम की धार्मिक चिन्तन प्रणाली ईश्वर की एकता तथा मुहम्मद के पैगम्बर होने को तो अपना आवश्यक तत्त्व मानती है परन्तु केवल इस्लामी पोशाक पहनने तथा गोमास भक्षण के द्वारा ही कोई आध्यात्मिक सिद्धि मिल जाती हो यह इस्लाम को कथमपि अभीष्ट नहीं है। इसके विपरीत कुरान में तो स्पष्ट कहा गया है कि जानवरो का खून और मास खुदा को नही पहुँचता उपासक की भक्ति ही

---

* *हिन्दी अनुवाद पृ० २६ (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद)*

उस उक पहुँचती है। फिर क्या कारण है कि श्री रामकृष्ण सम्प्रदायो के बाह्याडम्बरो और क्रियाकाण्डो को इतना महत्त्व देते हैं और उनका आचरण भी आवश्यक मानते हैं। एक हिन्दू सन्त के लिये गोमास भक्षण सवथा अकल्पनीय ही नही अपितु जुगुप्साजनक भी है। क्या अन्य धम और मत को स्तीकार करना और प्रत्यक्ष जीवन मे धारण करना इसी का नाम है ?

वस्तुत रामकृष्ण की आध्यात्मिक साधना प्रणाली इतनी रहस्यपूण एव अस्पष्टता के तमस से आच्छन्न थी कि उसका कोई स्वरूप निश्चित करना ही सम्भव नही है। वे अपने आपको अद्वैतवादी कहते हुये भी वष्णव इस्लाम और ईसाइयत की उपासना प्रणालियो का अनुसरण करते है तथा उनकी सत्यता प्रमाणित करते हैं। प्रश्न यह नही है कि विभिन्न साम्प्रदायिक उपासना प्रणालियो मे सत्य अथवा असत्य का अश कितना है किन्तु एक व्यावहारिक शका तो यह उपस्थित होती है कि क्या एक ही साधक के लिये आवश्यक है कि वह विभिन्न साधना प्रणालिया का उसी प्रकार अनुसरण करे जसा श्री रामकृष्ण ने किया था ? कोई भी साम्प्रदायिक साधन प्रणाली सवथा निर्दोष नही होती परन्तु रामकृष्ण की दृष्टि भिन्न प्रकार की थी। विवेकानन्द के शब्दो मे ये सन्यासी श्रेष्ठ (रामकृष्ण) कभी किसी धम को समालोचना की दृष्टि से नही देखते थे। अमुक अमुक धर्मों मे अमुक अमुक भाव योग्य नही हैं इस प्रकार के शब्दो को प्रयोग वे नही करते थे। बल्कि उनमे जो कुछ उत्तम है उसी की ओर वे देखते थे। *

स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण भिन्न प्रकार का है। वे यह मानते थे कि धम के मौलिक तत्त्वो को तो सभी मतो और सम्प्रदायो ने यथावत् निर्विवाद भाव से स्वीकार किया है उदाहरणाथ सत्य भाषण विद्या ग्रहण, सत्सग पुरुषाथ, सत्यव्यवहार आदि धम के उदात्त भावो को स्वीकार करने मे किसी भी मत या पन्थ को विप्रतिपत्ति नही है किन्तु इसके अतिरिक्त उनमे कुछ ऐसे

स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप पृ० १२

बाह्य क्रिया काण्ड मूढ विश्वास अन्ध धारणायें आदि भी समाविष्ट हो जाती हैं जिन्हें न तो धम का मौलिक एव अपरिहार्य अश ही कहा जा सकता है और जिनका व्यवहार एव आचरण भी प्रत्येक के लिये कत्तव्य नही हो सकता। ऐसी स्थिति म यदि सुधारक वग के महापुरुष इन काल एव परिस्थिति सापेक्ष बाह्याचारो का खण्डन करें तो इसमे किसी को क्या आपत्ति हो सकती हैं।

यदि कबीर जसे मनस्वी और क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी महापुरुष ने हिन्दू और मुसलमान मतो की मौलिक एकता का निरूपण करते हुये भी बलि और कुर्बानी मूर्तिपूजा और कब्रपरस्ती अवतारवाद और पगम्बरवाद का खण्डन किया तो निश्चय ही उन्होने इन तथाकथित धर्मों के उसी अश की समालोचना की है जो धम का मौलिक अश नही है। स्वामी दयानन्द की स्थिति भी यही है। अत रामकृष्ण और विवेकानन्द यदि मत पन्थो म विद्यमान अयोग्य एव अनुचित भावा की ओर दृष्टिनिक्षप नही करते तो यह उनकी एकागी दृष्टि का ही सूचक है।

धम के नाम पर प्रचलित विभिन्न मत-सम्प्रदायो के विकास का ऐतिहासिक सदभ मे अध्ययन करने के पश्चात् ही यह निश्चय हो पाता है कि इनके प्रवतन से मानवता का कितना ह्रास हुआ है। सम्प्रदायवादियो ने मानव के चिंतन और उसकी वचारिक प्रक्रिया को किस प्रकार काराबद्ध कर दिया है यह जाने बिना ही उनके सम्बन्ध मे कोई निणय देना अनुचित होगा। परन्तु विवेकानन्द तो औचित्यानौचित्य का विचार किये बिना ही सम्प्रदाय प्रवतको और सम्प्रदायाभिनिवेशी लोगों की वकालत करने लगे। उन्होंने एक पत्र मे लिखा— प्राचीनकाल मे या आधुनिक समय म सम्प्रदाय वालो ने भूल नही की। * तथा विविध सम्प्रदाया के निर्माणकर्ता अनुचित माग पर

---

* *पत्रावली भाग १ पृ० २१७*

नही थे।'† उ-हे यह सहन नही होता कि किसी सम्प्रदाय की विचारधारा या क्रियाकलाप का समालोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाय। फलत सम्प्रदाय विशेष की आलोचता करने को अनुचित मानते हुये विवेकानन्द लिखते है जो लोग ऐसे सम्प्रदायो के मतामत या कायकलाप का दोष दृष्टि से वणन करते हैं वे जान या अनजान म मिथ्यावादी हैं। जो सम्प्रदाय विशेष मे दृढ विश्वासी हैं वे प्राय यह देख नही पाते कि दूसरे सम्प्रदाय मे भी सत्य है।‡

समालोचना बुरी नही है पर-तु उसका दृष्टिकोण कसा है यह देखना आवश्यक है। द्वेष बुद्धि से लिखी गई किसी की हानि के प्रयोजन की गई पूर्वाग्रह युक्त समीक्षा निश्चय ही अनुचित है पर तु सत्यासत्य के ज्ञान के लिये जो आलोचना या खण्डन मण्डन किया जाता है उसे अनुचित कसे कहा जा सकता है? स्वामी दयान-द द्वारा लिखी गई आय धर्मेतर मतो की समीक्षाओ का प्रयोजन भी सत्य और असत्य का निणय करना ही था। उ-होने अपने ग्र-थ सत्याथप्रकाश की भूमिका मे परमतालोचन के सम्ब-ध मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुये लिखा है— जसा मैं पुराण जनियो के ग्र-थ बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उनमे से गुणो का ग्रहण और दोषा का त्याग तथा अ-य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हू वसा सबको करना योग्य है। इन मतो के थोडे थोडे दोष प्रकाशित किये हैं जिनको देख कर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निणय कर सके और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने कराने मे समथ होवें।*

आलोचना के अभिप्राय को न समझ कर स्वामी विवेकानन्द ने जसी आक्षेप योग्य बातें लिखी हैं वसी बातो की सम्भावना को स्वामी दयान-द भी

---

† पत्रावली भाग २ पृ० १०६

‡ देववाणी पृ० ८३

* सत्याथप्रकाश भूमिका

समझते थे। इसलिये न केवल ग्रथ की मुख्य भूमिका मे अपितु उसके समालोचनात्मक उत्तराद्ध के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ मे लिखी गई अनुभूमिकाओ मे भी स्वामीजी ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। आर्यावर्तीय मतमतान्तरो क खण्डन मण्डन विषयक एकादश समुल्लास की भूमिका में उन्होने लिखा— पक्षपात छाड कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायेगा। पश्चात् सबको अपनी अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य का छोडना महज होगा।
इस मेरे कम से यदि उपकार न मानें ता विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पय किसी की हानि या विरोध करने मे नहीं किन्तु सत्यासत्य का निणय करने कराने का है। * जन बौद्धादि अवदिक मता के खण्डन मण्डन मे लिखे गये द्वादश समुल्लास की भूमिकाओ मे उन्होने अपने दृष्टि बिन्दु को स्पष्ट किया—'जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेखन किया जाय तब तक सत्यासत्य का निणय नही हो सकता। जब विद्वान् लोगो मे सत्यासत्य का निश्चय नही होता तभी अविद्वानो को महाअन्धकार मे पडकर बहुत दु ख उठाना पडता है इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है। †

ईसाई मत की आलाचना मे लिखित त्रयोदश समुल्लास की भूमिका मे उन्होंने खण्डन मण्डन विषयक स्वपक्ष को इस प्रकार स्थापित किया सब मनुष्यो को उचित है कि सब के मत विषयक पुस्तका को देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें जो कोई पक्षपात रूप यानारूढ़ होके दखते हैं उनको न अपने और न पराये गुण दोष विदित होते हैं। सब धर्मों की तात्त्विक एकता का वस्तुनिष्ठ प्रतिपादन करते हुये स्वामी दयानन्द ने लिखा जो-जो सव मान्य सत्य विषय हैं वे तो सब मे एक से हैं झगडा

---

* *सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास अनुभूमिका*

† *सत्याथप्रकाश: द्वादश समुल्लास अनुभूमिका*

झूठ विषयों में होता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय। *

इस्लाम की समीक्षा में लिखे गये चतुर्दश समुल्लास के प्रारम्भ में भी स्वामीजी ने अपने अभिप्राय को इस प्रकार स्पष्ट किया— यह लेख हठ दुराग्रह ईर्ष्या द्वेष वादविवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के लिये क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है। †

उपर्युक्त सभी उद्धरण इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि साम्प्रदायिक मन्तव्यों की आलोचना या खण्डन कोई ऐसा अनिष्ट कर्म नहीं है जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने उसे समझा था। देखने की मुख्य बात यह है कि ऐसी आलोचना किस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर की गई है। स्वामी विवेकानन्द ने भी यदा कदा ईसाइयत इस्लाम तथा अन्य मतमतान्तरों की उसी शैली में आलोचना की है यह हम एक विगत अध्याय में देख चुके हैं।

विवेकानन्द की लेखन शैली तथा विचाराभिव्यक्ति की प्रणाली में हमें परस्पर वैमत्य के दर्शन तो होते ही हैं उनके विचारों में भी अन्तर्विरोध तथा विषमता पर्याप्त मात्रा में दीख पड़ते हैं। यही कारण है कि वे यदा कदा अत्यन्त भावुक शैली में ऐसी बात कह या लिख जाते हैं जिनके पीछे कोई युक्ति या तर्क नहीं होता। सम्प्रदायों की बहुलता और विभिन्नता उन्हें किसी सन्दर्भ में उचित जान पड़ी तो वे लिख बैठे— मैं किसी भी सम्प्रदाय का विरोधी नहीं हूं। बल्कि नाना सम्प्रदायों के रहने से मैं सन्तुष्ट हूं और मेरी विशेष इच्छा है कि सभी की संख्या दिनोदिन बढ़ती जाय।' ‡ अपने इस कथन की पुष्टि में

---

* सत्यार्थप्रकाश त्रयोदश समुल्लास अनुभूमिका

† सत्यार्थप्रकाश चतुर्दश समुल्लास अनुभूमिका

‡ धर्म रहस्य पृ० ७३

जो युक्ति उन्होने दी है वह तो और भी विचित्र है— सम्प्रदायो की सख्या जितनी अधिक होगी लोगो को धमलाभ करने की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।"† उक्त कथन की विस्तृत मीमामा न कर हम इतना ही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि यदि सम्प्रदाया की सख्या वृद्धि स ही लोगो को धम लाभ होता तो शकराचाय जसे मनस्वी धर्माचाय शव वष्णव, गाणपत्य, सौर शाक्त, कापालिक आहत और बौद्ध आदि सम्प्रदायो का उग्र खण्डन करने मे अपनी विद्वता और योग्यता को व्यय नही करत।

सम्प्रदाय और साम्प्रदायिकता के गुणावगुणा की विवेचना उतनी सहज नही है जितनी विवेकान द ने समझी थी। जिस युग मे विवेकान-द के पूववर्ती और समकालीन नवोदय के सूत्रधार महापुरुष आय धम वदिक सस्कृति और भारतीय जीवन दशन का पुनरुद्धार करने के लिये प्रयत्नशील थे उस समय इस्लाम और ईसाइयत की ओर से हमारे इ-ही स्वकीय भावो को विनष्ट करने के लिय सुनियोजित प्रयास चल रहे थे। हि दू नाम से अभिहित होने वाले इस देश के बहुमत समाज के धम को दुबल तथा उनकी रीति नीनि, आचार निष्ठा दशन विचारधारा आदि सभी को अत्य-त हेय तिरस्करणीय तथा अपदाथ समझा जाता था। ऐसी स्थिति मे राममोहनराय केशवच-द्रसेन, दयानन्द और विवेकान-द आदि ने आय जीवन पद्धति की गुरुता शक्तिमत्ता तथा ओजस्विता का दृढता से प्रतिपादन किया तथा दुबलताग्रस्त भारतीय आर्यसमाज की हीन भावना को दूर कर उसमे आत्मबोध और स्वाभिमान का भाव जागृत किया। अग्रेजी शिक्षा दीक्षा से प्रभावित और पाश्चात्य नीतिरीति की चकाचौंध से विस्मय विमुग्ध मूढ हि दू धडल्ले से स्वधम का परित्याग कर ईसाई बन रहे थे। बगाल मे तो पठित हि-दू वग जिस तीव्र गति से ईसाइयत की ओर आकृष्ट हो रहा था उसकी कथा ही पृथक है। मधुसूदन दत्त जसे प्रतिभाशाली कवि ईसाई बन गये। व्योमेशचन्द्र बनर्जी

---

† धम रहस्य पृ० ८

लालबिहारी दे आदि का ईसाईमत स्वीकार करना हिन्दू समाज पर वज्रपात के तुल्य था।

ऐसी विषम परिस्थिति मे आर्यसमाज के प्रवर्तक और उनके अनुयायियो ने जिस प्रकार परकीयो के टोले मे प्रविष्ट होने वाले अबोध हिन्दुओ की बाढ को रोका वह सर्वथा अभिनन्दनीय तथा स्तुत्य था। सामाजिक इतिहासकारो ने इस तथ्य की महत्ता को समुचित रूप से समझा है परन्तु विवेकानन्द मत परिवर्तन की गुरुता को न समझते हुये अपनी भावुकतापूर्ण शैली मे जो कुछ लिख गये है क्या वह सर्वथा अवाछनीय तथा आपत्तिजनक नही है? अपने एक पत्र मे हिन्दुओ के ईसाईमत अगीकार कर लेने को अत्यन्त सहज भाव से स्वीकार करते हुये वे लिखते है। यदि अमुक मनुष्य ईसाई बनता है तो हम क्यो बुरा माने? जो धर्म उन्हे अपने मत के अनुकूल जान पडता है उसका अनुगामी उन्हे बनने दो। वादविवाद मे तुम क्यो सम्मिलित होगे? लोगो के भिन्न भिन्न मतो को सहन कर लो। *

जानते बूझते अनजान बनना इसी को कहते हैं। क्या ईसाईमत मे प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति उस मत की गुणवत्ता को ध्यान मे रखकर उसके प्रति अपनी आस्था और अनुराग व्यक्त करते है? क्या यह सत्य नही है कि नाना प्रकार के प्रलोभनो दबाव तथा दुरभिसधियो के माध्यम से ईसाई प्रचारकगण अपने अनुयायियो की सख्या बढाते हैं। हजारो मे शायद एक भी ऐसा व्यक्ति न मिले जो बाइबिल प्रतिपादित सिद्धान्तो का सुगूढ अध्ययन कर तथा ईसाईयत के मन्तव्यो को हिन्दू धर्म मे प्रतिपादित विचारो से वरीयता देकर ईसाइयत का वरण करता हो। ऐसी स्थिति मे क्या यह उचित है कि हम धर्मपरिवर्तन मे निहित विधर्मी प्रचारको की षडयन्त्रकारी प्रवृत्तियो की अनदेखी करें और जाने अनजाने उन्हे बढावा दें अथवा उनकी गम्भीरता की

---

* पत्रावली भाग २ पृ० ४३

अवगणना करें। निश्चय ही उपयु क्त कथन से विवेकान द ने हि दूसमाज को क्षीण करने वाले लोगा के हाथ मजबूत किये हैं।

इस विवेचन को विराम देत हुये हम सहज ही इस निष्कष पर पहुँच जाते हैं कि सवधम सम वय और सवधम समभाव जसे आपातरमणीय श दो को उनकी सही अथवत्ता के आधार पर ही समझना होगा। सहिष्णुता और सहनशीलता का अथ यह नही है कि अनथकारी परम्पराओ को ज म देने वाले अलीक और अवज्ञानिक विचारा का धम के नाम पर स्वीकार किया जाय। इसी प्रकार धम के नाम पर सम्प्रदायवाद और साम्प्रदायिकता को सहन करना भी एक अक्षम्य अपराध है।

अध्याय १०

शास्त्र और धर्म

इस ग्र थ के प्रथम अध्याय मे हम स्वामी दयान द और स्वामी विवेकान द के वेद प्रमाण विषयक सिद्धा तो का ऊहापोह कर चुके हैं।* वेद प्रमाण के

---

* *स्वामी विवकान द ने भगवान् राम कृष्ण धम तथा सघ शीषक ग्र थ मे वद विषयक स्वविचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—' शास्त्र श द से अनादि और अन त वद का बोध होता है और धम शास्त्र म वद ही एक मात्र समथ है। अर्थात् धार्मिक व्यवस्था म जब कोई झगडा पडता है तब वद ही के प्रमाण से वह निपटाया जाता है। समस्त देश काल और पात्र मे व्याप्त होने के कारण वद का शासन अर्थात् वद का प्रभाव देश विशष काल विशष अथवा पात्र विशष तक ही सीमित नहीं है। प्राणि मात्र के धम की व्याख्या करन वाला एक मात्र वेद ही है।*

अलौकिक ज्ञान राशि का सर्व प्रथम पूण और अविकृत सग्रह आर्य जाति के बीच में प्रसिद्ध वद नामक चार भागों मे विभक्त अक्षर समूह ही सब प्रकार से सबसे ऊचे स्थान का अधिकारी है और वही वेद सम्पूण ससार के पूजने योग्य और आय अथवा म्लेच्छ सबके धम ग्र थों की प्रमाण भूमि है।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

अनन्तर ही अन्य शास्त्रो के प्रामाण्याप्रामाण्य का विषय उपस्थित होता है। भारतीय ज्ञान मीसासा मे प्रत्यक्ष और अनुमान की ही भाति शब्द को भी प्रमाण के रूप म स्वीकार किया गया है। अलौकिक और लौकिक भेद से शब्द प्रमाण दो प्रकार का है। अलौकिक श-ब्द प्रमाण 'वद है जो अपौरुषेय और ईश्वर प्रदत्त हैं। लौकिक शब्द प्रमाण के अ तगत स्मृति आदि वे ग्र-थ आते हैं जिनकी रचना ऋषिया न वदिक तत्त्वो का अनुसरण करते हुये की है। आचाय मनु के अनुसार धम का लक्षण जानने के लिय वद स्मृति सदाचार और अपनी आत्मा के आदेश की ओर देखना चाहिये।† इनमे भी आत्मा की आज्ञा की तुलना म महापुरुषो का आदश आचरण श्रेष्ठ माना गया है। सदाचार की अपक्षा स्मृतियो के कथन को महत्त्व देना चाहिये और स्मात वाक्या की तुलना मे वेद के आदेशा को सर्वापरि महत्त्व देना अपेक्षित माना गया हैं।‡ प्राय सभी भारतीय धर्माचाय इस बात से सहमत हैं कि वेद क समक्ष स्मृतियो अथवा अ य शास्त्र ग्र-था का कुछ भी महत्त्व नही है। स्मृतियो का महत्त्व भी इसी कारण है कि उ होने वेद के सिद्धा तो की ही पुष्टि और उनका उपबृ हण किया है।

यद्यपि शास्त्र प्रमाण विषयक उपयु क्त धारणायें इस देश म शताब्दियो तक इसी प्रकार प्रचलित रही परन्तु व्यवहार मे उनका लोप ही हो गया।

' आय जाति की उक्त वेद नामक शब्द राशि के सम्ब ध मे यह भी जान लेना होगा कि उसमे जो लौकिक अथवाद या ऐतिह्य (इतिहास सम्ब-धी) नहीं है, वही अश वेद है।' पृ० २-३

† *वद स्मति सदाचार स्वस्य च प्रियमात्मन ।*
एतच्चतुर्विध प्राहु साक्षाद्धमस्य लक्षणम् ॥ २ । १२

‡ *श्रुति स्मति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी ।*
अविरोध सदा कार्यं स्मात वदिक वत्सदा ॥ जाबाल स्मृति

वदिक और आष शास्त्रो का स्थान साधारण मनुष्यकृत ग्रन्थो ने ले लिया। साम्प्रदायिक ग्रथो के विभ्राट ने धम के वास्तविक तत्त्व को ओझल कर दिया। वेद प्रतिपादित तथा ऋषियो के द्वारा अनुमोदित श्रौत स्मात धम के स्थान पर जो नाना प्रकार की सकीण आस्थाय और विश्वास प्रचलित हुये उनका एक प्रमुख कारण आष ग्रन्थो के प्रचलन का रुक जाना ही था। स्व० डा० सम्पूर्णानन्द के शब्दो मे 'विष्णु सहस्र नाम का पारायण किया जाता है किसी वेद की सहिता का नही नृसिह या भरव या हनुमान का इष्ट बहुत लोगो को होता है गायत्री का इष्ट कोई सिद्ध नही करता महिम्न स्तोत्र का पाठ सिर हिला हिलाकर किया और कराया जाता है सामवेद सुनने मे उससे अच्छा लगता है यह किसी को याद नही हे। † यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही है कि वतमान युग मे ऋषि कृत शास्त्र ग्रन्थो के महत्त्व को पुन स्थापित करने का श्लाघनीय प्रयास स्वामी दयानन्द के द्वारा ही हुआ। उनके गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द ने अपनी निमल प्रज्ञा के द्वारा इस सत्य का साक्षात्कार किया था कि ऋषि कृत ग्रन्थ विज्ञान सत्य एव बुद्धि के सवथा अनुकूल होते हैं जब कि क्षुद्र आशय वाले साधारण मनुष्यो द्वारा रचित ग्रन्थ तक युक्ति एव प्रमाण शून्य विज्ञान एव सृष्टि क्रम के विरुद्ध अधविश्वासो का पोषण करने वाले होते है। अपने गुरु से गृहीत इसी आष अनाष ग्रन्थ विवेक को स्वामी दयानन्द ने आजीवन प्रचारित किया। उन्होंने दृढता पूवक यह प्रतिपादित किया कि जो महाशय महर्षि लोगो ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रथो मे प्रकाशित किया है वसा इन क्षुद्राशय मनुष्यो के कल्पित ग्रथो मे नही हो सकता। महर्षि लोगो का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण मे समय थोडा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगो की मशा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बडे परिश्रम से पढ के अल्प लाभ उठा सक। ‡

---

† *ब्राह्मण सावधान ज्ञान मण्डल काशी द्वारा प्रकाशित।*

‡ *सत्याथप्रकाश ततीय समुल्लास*

आर्ष अनार्ष ग्रन्थों का पार्थक्य करने के लिये स्वामी जी ने विभिन्न कसौटियाँ बताई हैं तथा स्वनिर्मित पठन पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत दो ऐसी सूचियाँ भी प्रस्तुत की हैं† जिनसे ज्ञात हो जाता है कि धर्म दर्शन आचार तथा अन्य विद्याओं से सम्बन्धित किन किन ग्रन्थों को आर्ष तथा किन्हें अनार्ष संज्ञा-युक्त कहा जा सकता है। निष्कर्ष रूप में कहना होगा कि धर्मालोचना तथा शास्त्र चर्चा में आर्ष एवं अनार्ष ग्रन्थों के विवेक को एक परम्परा के रूप में स्वीकार तो किया जाता था परन्तु उसे पूर्णतया क्रियान्वित करने का श्रेय स्वामी दयानन्द को ही है। यों उनसे पूर्ववर्ती राजा राममोहनराय ने भी पौराणिक पण्डितों से सती प्रथा तथा अन्य सैद्धान्तिक शास्त्रीय विवादों में अपने पक्ष को प्रस्तुत करते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि वेदों को ही सर्वोपरि प्रमाण माना जा सकता है। स्मृति आदि ऋषि निर्मित शास्त्र ग्रन्थों का स्थान उनसे अवर कोटि का ही है।‡ किन्तु शास्त्रार्थ धर्म चर्चा तथा आलोचना में इस सिद्धान्त को सर्वोपरि प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्वामी दयानन्द को ही है।

धार्मिक सिद्धान्तों तथा तद् विषयक प्रमाणों की मीमांसा करते समय ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य का प्रश्न स्वामी विवेकानन्द के समक्ष भी उपस्थित हुआ था। सम्भवत जब उन्होंने एक ही विषय पर प्रचलित शास्त्र वाक्यों में परस्पर विरोध के दर्शन किये तो उन्हें नाना प्रकार की शंकायें हुई जिनका समाधान उन्होंने श्री प्रमदादास मित्र से करना चाहा। श्री मित्र को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने पूछा—'माना कि एक ही विषय पर जब अनेक

---

† *द्रष्टव्य—सत्यार्थप्रकाश। तृतीय समुल्लास*

‡ *A commonly received rule for assertaining the authority of any book is this that whatever book opposes the Veda is destitute of authority*

The Brahmuntcal Magazine No 2 P 162

वाक्य एक मत है तब उसका एक दो वाक्यो द्वारा विरोध मा य नही हो सकता । मधुपक और इसी प्रकार की दूसरी चिर प्रचलित प्रथाओ का अश्वमेध गोबध स-यास श्राद्ध मे मास पिण्डदान आदि द्वारा क्यो निषेध हो जाता है ? यदि वेद नित्य है तो फिर इन कथनो मे कहाँ तक सत्य है कि धम की यह विधि द्वापर के लिये है और यह कलियुग के लिये है आदि ।' * स्वामी जी की शका का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि कलिवज्य † कही जाने वाली बातें यदि सतयुग त्रेता द्वापर आदि मे विधेय मानी जाती हैं तो उ हे इस युग मे अनुचित क्यो कहा जाता है ? वे यह भी जानना चाहते थे कि भिन्न भिन्न युगो के लिये भि-न भि-न आचार्यों द्वारा प्रणीत स्मृतियो का जो उल्लेख मिलता है‡ क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि युग के अनुसार धर्म की प्रवृत्ति बदल जाती है पुन वेद प्रतिपादित धम को नित्य तथा सावकालिक कस कहा जा सकता है ? यदि स्वामी दयान द के सम्मुख ये प्रश्न उपस्थित किये जाते तो उनका दो टूक उत्तर यही होता कि वेन्द प्रतिपादित धम की प्रवृत्ति सावदेशिक और सावकालिक है । कलिवज्य प्रकरण मात्र पाखण्ड ही है क्योकि यज्ञो मे पशुहिंसा श्राद्ध मे मास भक्षण आदि कम गर्हित एव धम विरुद्ध है । जहाँ तक युगो के भेद से स्मृतियो के भेद का प्रश्न है स्वामी दयान-द इस विधान से भी सहमत नही थे । मनु के अतिरिक्त अन्य स्मृतियाँ अप्रशस्त है । युग भेद से धम भेद की बात भी एक सीमा तक ही स्वीकार की जा सकती है ।

स्वामी विवेकानन्द का दूसरा प्रश्न इस प्रकार था—"जिस परमात्मा ने

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १८

† *अश्वालम्भ गवालम्भ स-यास पल पतृकम् ।*
देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवजयेत् ॥

‡ *सतयुग मे मनु द्वापर मे शखलिखित तथा कलि मे पाराशर स्मति का विधान माना जाता है ।*

वेदों का निर्माण किया उसी ने फिर बुद्धावतार धारण कर उनका खण्डन किया। इन धर्मोपदेशों में किसका अनुगमन किया जाय? इनमें से किसको प्रमाण स्वरूप माना जाय? पहले को या बाद वाले को? + यह प्रश्न तो कर्ता के भोलेपन को ही प्रकट करता है। जिस बुद्ध ने वेद और वैदिक धर्म का खण्डन किया जिसने ईश्वर और आत्मा की कूटस्थ नित्य सत्ता को भी अस्वीकार किया उस विष्णु का अवतार मानना तो पौराणिक ब्राह्मण धर्म की विडम्बना ही है। वस्तुतः अवतारवाद की कल्पना ही जब अलीक है तथा वेदानुमोदित नहीं है तो बुद्ध ही क्या राम कृष्ण भी ईश्वरावतार सिद्ध नहीं होते। वेद और यज्ञ के विरोधी बुद्ध को ईश्वरावतार घोषित करने वाले लोगों की बुद्धि पर तरस आना स्वाभाविक है।

अपने तीसरे प्रश्न में विवेकानन्द ने तन्त्रों और वेदों में से किसे ग्राह्य और किसे त्याज्य ठहराया जाय यह जानना चाहा। तन्त्र कहते हैं कि कलियुग में वेद व्यर्थ हैं। अब भगवान् शिव (विवेकानन्द के अनुसार तन्त्रों के प्रवक्ता) के भी किस उपदेश का पालन किया जाय?* बंगाल के तन्त्र प्रधान वातावरण में विवेकानन्द की यह जिज्ञासा सहज ही थी। उत्तर स्पष्ट है—भारतीय शास्त्रालोचन में वेदों को ही सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। वे देश और काल से भी अतीत हैं। अतः तन्त्रों के इन उल्लेखों में कोई सार नहीं है कि कलियुग में वेदों का महत्त्व न्यून हो जाता है। वस्तुतः वेद सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं।

मित्र महाशय से पूछे गये प्रश्नों से विवेकानन्द की शास्त्र विषयक जिज्ञासा तो प्रकट होती ही है, यह भी विदित होता है कि अभी तक वे शास्त्र नामधारी ग्रन्थों के प्रामाण्याप्रामाण्य की कोई उचित कसौटी निर्धारित नहीं कर सके थे। यदि उनमें भी दयानन्द की ही भांति ऋषि कृत ग्रन्थों को प्रमाण

+ *पत्रावली भाग १ पृ० १८*

* *पत्रावली भाग १ पृ० १८*

मानने तथा तद् विरुद्ध का अप्रमाण करने का विवेक जागृत हो जाता तो उनके द्वारा पूछे गय इन प्रश्नो का समाधान भी कठिन नही था। उनका अन्तिम प्रश्न था— व्यास के वेदा त सूत्र म यह स्पष्ट कथन है कि वासुदेव सकषणादि चतु यू ह उपासना ठीक नही है। फिर वे ही यास भागवत म इसी उपासना के गुणानुवाद गाते है ? तो क्या व्यास पागल थे। * निश्चय ही व्यास तो पागल नही थे और न वेदा त सूत्रो के रचयिता बादरायण यास ने ही भागवत की रचना की। अत दोनो ग थो के विवेचनीय विषयो के पार्थक्य को देखकर ही यह अनुमान कर लेना समीचीन होगा कि जिस महाविद्वान् यास ने वेदा त दशन की रचना की है वह भागवत जसे पौराणिक भावापन्न साम्प्रदायिक ग थ का लेखक कदापि नही हो सकता। स्वामी दयान द ने तो स्पष्ट ही लिख दिया कि शारीरक सूत्रो का लेखक व्यास पुराणो का रचयिता कदापि नही हो सकता।†

पर तु ये प्रश्न तो विवेकान द ने उस समय पूछे होगे जब शास्त्रालोचन की उनकी प्रक्रिया चल ही रही थी। काला तर मे उनके विचारो मे स्थिरता आ गई और वे भी यह अनुभव करने लगे कि सभी शास्त्र नाम धारी ग थ एक सी गुरुता और महत्ता नही रखते। निम्न उद्धरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि स्मृति पुराण आदि अर्वाचीन रचनाओ को वे भी अधिक महत्त्व नही देते। एक पत्र मे उ होने लिखा— स्मृति और पुराण सीमित बुद्धि वाले व्यक्तियो की रचनाय है और हेत्वाभास और त्रुटियो वर्णभेद और द्वेष से परिपूण है। उनके कुछ अश जिनमे मन की उदारता और प्रम का आविर्भाव है, ग्रहण करने योग्य है और शेष सबका त्यागकर देना चाहिये।'‡ विवेकानन्द जहाँ

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १८ १९

† सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास

‡ पत्रावली भाग २ पृ० १८४

पुराणादि के निर्दोष अश को ग्राह्य मानते हैं + वहा स्वामी दयानन्द इन ग्र थो म सत्य का थोडा अश होने पर भी उन्हे विष सम्पृक्तान्नवत् त्याज्य मानते है क्योकि इनके विकारयुक्त अश ने निर्दोष भाग को भी सदोप एव अग्राह्य बना दिया है। पुराणो का रचनाकाल पर्याप्त आधुनिक है। अधिकाश पुराणा की रचना गुप्त काल मे हुई। महाभारत जसे आप काव्य मे भी समय समय पर विभिन्न प्रसग प्रक्षिप्त किये गय जाते रहे। स्वामी दयानन्द ने सत्याथ-प्रकाश मे ऐतिहासिक प्रमाणा के आधार पर लिखा है कि माकण्डेय और शिव पुराण की रचना राजा भोज के समय मे हुई।* राजा भोज रचित सजीवनी इतिहास के प्रमाण से महाभारत की आकार वृद्धि की बात भी उन्होने लिखी है। विवकानन्द की सम्मति भी इससे भिन्न नही है। वार्तालाप के एक प्रसग मे उन्होने कहा— बहुत स पुराण और महाभारत के भी बहुत से अश आधुनिक शास्त्र हैं। तथा ज्यो ज्यो युगा ने करवट बदली मूल महाभारत के कलेवर मे भी वृद्धि हाती गई और अन्त मे उसके श्लोको की सख्या एक लाख तक पहुँच गई।† विवेकानन्द का यह कथन सत्याथ प्रकाश मे लिखित स्वामी जी की महाभारत विषयक अवधारणा की ही प्रतिध्वनि है।

केवल स्मृति और पुराण ही नही उपनिषद् नामधारी कतिपय रचनायें

+ *स्वामी विवकानन्द के अनुसार सभी पुराणकारों ने जो देखा या सुना था उसी को रूपकाकार मे लिखा है। देववाणी प० १९५ परन्तु यह कथन भी एकांगी ही है। पुराणों मे वर्णित अनेक प्रकार के उपाख्यान स्थूल वणन अवज्ञानिक कल्पनाय और असम्भव गाथाय किसी भी प्रकार रूपक नहीं सिद्ध होती। परन्तु विवकानन्द यह भी स्वीकार करते हैं कि दुर्भाग्यवश कई पुराणों के अन्दर वामाचारी व्याख्यायें प्रवश पा गई है।' भारत में विवेकानन्द प० ४०३*

* *सत्याथप्रकाश एकादश समुल्लास*

† *महापुरुषों की जीवन गाथायें प० २६*

भी नितान्त आधुनिक हैं। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में एक ऐसे ही अल्लोपनिषद् का उल्लेख किया तथा उसका उपलब्ध पाठ देकर लिखा— और जो यह अल्लोपनिषद् है वह न अथर्ववेद में न उसके गोपथ ब्राह्मण वा किसी शाखा में है। यह तो अकबर शाह के समय में अनुमान है कि किसी ने बनाई है। इसका बनाने वाला कुछ अरबी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है। ‡ शायद विवेकानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश वर्णित अल्लोपनिषद का प्रकरण पढ़कर अपने एक व्याख्यान में कहा— अल्लोपनिषद् में मुहम्मद रसूलल्ला हुये। इस प्रकार के और भी अनेक साम्प्रदायिक उपनिषद हैं। यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि वे बिलकुल आधुनिक हैं। +

साम्प्रदायिक ग्रन्थों की रचना क्यों और कैसे होती है इसे स्वामी दयानन्द ने भली भाँति समझा था। तन्त्र नामधारी ग्रन्थ शिव पार्वती तथा भैरव की संवादात्मक शैली में लिखे गये जब कि इनके मूल रचयिता सम्प्रदायाभिनिवेशी अन्य ही लोग थे। विवेकानन्द ने भी यह स्वीकार किया है कि अनेक सम्प्रदायों का यह भी विश्वास है कि किसी अच्छे विषय के प्रचार के लिये दो एक झूठ भी बोलना पड़े तो उसमें कुछ हर्ज नहीं है। इसलिये अनेक तन्त्रों में पार्वती प्रति महादेव उवाच लिखा मिलता है। * परन्तु प्रश्न यह है कि इन साम्प्रदायिक ग्रन्थों में किन अच्छे विषयों का प्रचार किया गया है? केवल साम्प्रदायिक संकीर्णता तथा दुराग्रह को हवा देने वाले ये ग्रन्थ न तो शिव पार्वती द्वारा कथित हैं और न इनके लेखक धर्म तत्त्व के पारदर्शी ऋषि ही थे।

तन्त्रों तथा नव्यन्याय के ग्रन्थों के प्रति विवेकानन्द के हृदय में कोई

---

‡ *सत्यार्थप्रकाश चतुर्दश समुल्लास*

+ *भारत में विवेकानन्द पृ० ३११*

* *भारत में विवेकानन्द पृ० ३४३*

आदर भाव नही था।† उ होने वातालाप के प्रसग म कहा— शास्त्राथ करके तांत्रिक पण्डितो को हरा दा। तुम्हारे देश म लोग केवल याय शास्त्र की किटिर मिटिर पढत है। उसम है क्या ? व्याप्ति ज्ञान और अनुमान—इसी पर ता नयायिक पण्डिता का महीना तक शास्त्राथ चलता रहता हैं।‡ वास्तव मे न य याय केवल प्रमाण मीमांसा मे ही उलझकर रह गया जब कि प्राचीन याय प्रमाण की ही भाति प्रमेय तत्त्व का भी विस्तार से विचार करता है। स्वामी दयान द भी नव्य याय के विरोधी थे। वे इसे काक भाषा कहा करते थे।+ अपने कलकत्ता प्रवास के समय स्वामी जी का नवद्वीप

---

† *यद्यपि विवकान द ने यत्र तत्र त त्रों की नि दा भी की है पर तु अपने बगला सस्कारों के कारण व यदा कदा इस ग्र थ समदाय के प्रति प्रशस्ति पूरा उद्गार भी प्रकट कर गये है। अपने एक व्याख्यान मे उ होंने कहा—त त्र ही वदिक कमकाण्ड के किञ्चित परिवर्तित आध निक रूप है और किसी पाठक के उनके सम्ब ध मे अत्यन्त असम्बद्ध सिद्धा त पर पहुचने के पूव मेरा अनुरोध है कि वह त त्रों को ब्राह्मण' विशष कर अध्वय भाग के साथ पढ़ले। त त्रों मे उपयोग किये हुये अधिकाश म त्र तो ब्राह्मण' से ही शतश उद्धत हुये दिखाई दग।*
हिन्दू धम के पक्ष मे प० ६ १०

पर तु विवकान द जी ने यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं समझी कि त त्र वाङ मय तथा वद के ब्राह्मण भाग का क्या सम्ब ध है और किस प्रकार त त्र वर्णित मारण मोहन, उच्चाटन वशीकरण तथा अ य अभिचार क्रियाओं को वदिक कमकाण्ड का परिवर्तित रूप कहा जा सकता है ?

‡ *विवकान द जी के सग म प० ४ ३०*

\+ *सुप्रसिद्ध वदिक विद्वान् महामहोपाध्याय प० आय मुनि ने १६३६ वि०*

(शेष अगले पृष्ठ पर)

निवासी नयायिक पण्डितो से शास्त्र विचार हुआ था ।

दयानन्द की ही भाति विवेकानन्द को भी इस बात से भारी दुख होता था कि आज के हिन्दू वेद की विचार धारा से बहुत दूर चले गये है। हमार आचार-विचार रीति नीति सभी कुछ वेद से प्रतिकूल पुराणो या तन्त्रो मे प्रतिपादित धारणाओ से नियन्त्रित होती है। वेदान्त वादी विवेकानन्द के लिये सचमुच यह पीडा का विषय था। उन्होने कहा— पुराण तथा कुछ आधुनिक स्मृति शास्त्र और विशेष रूप से देशाचार और लोकाचार ही धम जगत् म वेदान्त के स्थान पर अधिकार प्राप्त कर बैठ हैं। * तथा अपने दनिक जीवन मे हम प्राय पौराणिक या तान्त्रिक हैं। यहा तक कि जहा कही भारत के ब्राह्मण वदिक मन्त्रो को काम मे लाते हैं वहाँ अधिकाशत उनका विचार वेदो के अनुसार नही। किन्तु तन्त्रो या पुराणो के अनुसार होता है। †

उपयुक्त विवचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शास्त्र विवेक की जो निमल दृष्टि स्वामी दयानन्द को प्राप्त थी वह विवेकानन्द को उस रूप मे उपलब्ध नही थी। आष-अनाष ग्रन्थों के पाथक्य तथा उनके मौलिक अन्तर

मे स्वामी दयानन्द से काशी मे भट की थी। नन्य न्याय का प्रसग चलने पर स्वामी जी ने कहा—'वत्स इस नन्य न्याय मे कुछ नहीं है। केवल वागाडम्बर मात्र है। सारा नव्य न्याय प्रमाण मीमासा मे ही समाप्त हो गया है। न्याय शास्त्रकार ने जिन प्रमेयों के यथाथज्ञान के लिये प्रमाणों का उल्लेख किया उस प्रमेय भाग को नन्य न्याय ने कोई महत्त्व ही नहीं दिया। वास्तविक रूप मे न्याय शास्त्र जानना चाहते हो तो न्यायदशन का वात्स्यायन भाष्य पढो। आयसमाज के वेद सेवक विद्वान् डा० भवानीलाल भारतीय पृ० ३७

* *विवकानन्द चरित पृ० ३३३*

† *भारत मे विवेकानन्द पृ० ३०६*

को उन्होंने उस तीव्रता से अनुभव नही किया था जसा स्वामी दयानन्द ने। फलत वे शास्त्रो की मान्यता और प्रामाणिकता के विषय मे प्रारम्भ से ही जिज्ञासु रहे। जीवन मे हुये विभिन्न अनुभवो के पश्चात् उन्होंने यह जान लिया कि शास्त्र पथ को छोड कर कुछ देशाचार लोकाचार तथा स्त्री आचार से सारा देश भरा हुआ है। ‡ उनकी चेष्टा यह रही कि देशवासी मध्यकालीन सकीण विचारधारा का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थो को शास्त्र कहना छोडे तथा पुराकालीन वदिक और ऋषि मुनियो की ओजस्विनी, उदात्त तथ निमल भावधारा मे अवगाहन करें। निश्चय ही शास्त्रो की तात्त्विकता के इस चिंतन मे आयसमाज के प्रवतक ऋषि दयानन्द के विचारो ने उन्हें प्रत्यक्ष तया प्रभावित किया था।

धम

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द के धम विषयक विचारो की आलोचना सव धम समन्वय शीषक अध्याय मे प्रसगोपात्त की जा चुकी है। स्वामी दयान द ने अपने मन्तव्यो का उल्लेख करते हुये धम को इस प्रकार परिभाषित किया जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदो से अविरुद्ध है उसको धम और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा भग वेद विरुद्ध है उसको अधम मानता हू।"* 'आर्योद्देश्य रत्नमाला शीषक अपने एक लघुकाय ग्र थ मे भी उन्होने धम की व्याख्या इसी प्रकार की है 'जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात रहित न्याय सवहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणो से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यो के लिये यही एक मानने योग्य है उसको धम कहते हैं।

यहाँ एक विशेष रूप से विचारणीय वात यह है कि स्वामी जी 'धम

---

‡ *विवेकानन्द जी के सग मे पृ० ५०*

* *सत्याथप्रकाश 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश*

उसी को मानत है जिसका विधान वेदा म उपलब्ध होता है। वेदोक्त धम को ही मायता प्रदान कर स्वामी दयानन्द ने कोई नूतन विधान किया हो ऐसी बात नही है। भारतीय धम चिन्तन मे सदा वेदोपदिष्ट कत्त याचरणो को ही धभ की सज्ञा से अभिहित किया है। मीमासा शास्त्र के प्रवतक आचाय जमिनि न धम का निरूपण करत हुये वेद की प्ररणा को ही धम कहा है।* मनु आदि स्मृतिकार वेद को ही अखिल धर्मो का मूल तथा धम का साक्षात् लक्षण स्वीकार करते हैं।*

कालान्तर मे वदिक धम के साथ भारत की निवासिनी आय हिन्दू जाति का नाम जुड जाने तथा उसमे वदिकेतर नाना आचार विचार तत्त्वचितन कम काण्ड क्रिया जाल आदि के समाविष्ट हो जाने के कारण उसे व्यापक अथ मे हिन्दू धम की सज्ञा प्रदान की गई। परन्तु यह ध्यान मे रखने की बात है कि व्यापक हिन्दू धम की सत्ता और महत्ता किसी यक्ति विशेष पर आधारित नही है। जिस प्रकार सामी पगम्बरी मजहब किसी न किसी रूप मे जरदुश्त मूसा ईसा अथवा मुहम्मद के साथ जुडे हुये है तथा इन महापुरुषो को पृथक कर पारसी यहूदी ईसाई तथा इस्लाम की कल्पना भी नही की जा सकती, उस प्रकार का यक्तिपरक आधार आय (हिन्दू) धम का नही है। यही उसके सावभौम होने का प्रमाण भी है। स्वामी विवेकानन्द ने भी इस तथ्य को अनुभव किया था। वार्तालाप के एक प्रसग मे उन्होने कहा— ईसाई धम ईसा क बिना इस्लाम धम मुहम्मद के बिना और बौद्ध धम बुद्ध के बिना रह ही नही सकता परन्तु हिन्दू धम ही एक ऐसी चीज है जो कि किसी व्यक्ति विशेष पर बिलकुल निभर नही है। *

---

* मीमांसा दशन अध्याय १ पाद १ सूत्र २

* वदोऽखिलोधम मलम् ।

* स्वामी विवकानन्द से वार्तालाप प० ५१

स्वामी विवेकानन्द भी यह भली भांति जानते थे कि पुरातन वदिक धम जिन तत्त्वो स निर्मित था वे सवथा मौलिक, परिशुद्ध तथा मानव जाति के प्राचीनतम आध्यात्मिक दाशनिक तथा साधना प्रधान भावा से समन्वित थे। कालान्तर मे जब अनेक कारणो से भारत मे बौद्ध जन आदि वदिकेतर तथा तान्त्रिक वष्णव शव आदि किसी न किसी रूप मे वदाश्रित चिंतन धारायें फूट पडी तो उनके अनेक भावो और विचारो का जाने अनजाने वदिक चिन्ता मे समावेश हो गया। समयान्तर मे इसे ही हिन्दू धम का नाम दिया। स्वामी दयानन्द की ही भांति स्वामी विवेकानन्द प्रचलित हिन्दू धम को उस अविकृत और अमिश्रित आय धम से भिन्न ही मानते हैं जो बौद्ध पूव काल मे इस देश मे प्रचलित था। उन्होंने इस प्रश्न के उत्तर मे कि 'क्या हिन्दू धम आय नही है' कहा— आधुनिक हिन्दू धम अधिकाश एक पौराणिक धम है जिसका उदगम बौद्ध काल के पश्चात् हुआ है। * इस हिन्दू धम मे आय और आयतर जैन बौद्ध पौराणिक आदि विभिन्न भावो का किस प्रकार सम्मिश्रण हो गया था यह बताते हुये विवेकानन्द ने लिखा—'आधुनिक विज्ञान के अत्यन्त नवीन आविष्कार जिसके केवल प्रतिध्वनि मात्र है उस वेदान्त के अत्युच्च आध्यात्मिक भाव से लेकर सामान्य मूर्तिपूजा एव तदानुषगिक अनेकानेक पौराणिक दन्त-कथाओ तक के लिये और इतना ही नही बल्कि बौद्धो के अज्ञेयवाद और जनो के निरीश्वरवाद—सभी के लिये हिन्दू धम मे स्थान है। *

हिन्दू धम की ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया को समझने पर भी स्वामी विवेकानन्द के धम विषयक विचार बहुत कुछ अस्पष्ट उलझे हुये तथा वदतो-व्याघात युक्त प्रतीत होते हैं। जसा कि हम सवधम समन्वय विषयक उनके विचारो का विश्लेषण करते हुये देख चुके हैं वे मनुष्य जाति मे प्रचलित विभिन्न आस्था विश्वास तथा उपासना प्रणालियो के समूह रूप सम्प्रदायो के प्रति एक विशेष प्रकार का कोमल भाव रखते हैं। धम की सावजनीनता

---

* हिन्दू धम (शिकागो वक्तृता प० २)

सावकालिकता तथा सावभौमता मे उनकी आस्था नही है तभी तो उनकी लेखनी से यदा कदा ऐसे विचार भो निसृत हुये जो विचित्र एव हास्यास्पद ही नही अनगल भी कहे जा सकते हे। उदाहरणाथ यदि सभी मनुष्य एक ही धम उपासना की एक ही सावजनीन पद्धति और नतिकता के एक ही आदश को स्वीकार कर ल तो ससार के लिये यह बडे ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे सभी धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति को प्राणान्तक आघात पहुचेगा। अत हमे चाहिये हि हम उन लोगो की चेष्टाये विफल करदे जो एक सावजनीन धम की स्थापना का प्रयत्न करते हैं। * क्या स्वय विवेकानन्द ही वेदान्तवाद के रूप मे एक सावजनीन धम के प्रचार के लिये समुत्सुक नही थे ? पुन धम के सावजनीन स्वरूप के प्रतिष्ठापको के प्रति इतना आक्रोश क्यो ?

धम मत और सम्प्रदायो की अनकता का पोषण करते हुये उन्हाने लिखा है— धम मतो की विभिन्नता लाभदायक है। क्योकि मनुष्य को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा वे सभी देते हैं और इस कारण सभी अच्छे हैं। जितने भी अधिक सम्प्रदाय होते है मनुष्य की भगवद्-भावना को सफलता पूवक जागृत करने के उतने ही अधिक सुयोग मिलते हैं। † ऐसा लगता है कि सम्प्रदायो के कटु एव तिक्त फलो की ओर लेखक ने गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया अन्यथा वे यह कभी नही लिखते कि सम्प्रदायो से भगवद् भावना जागृत होती है। सम्प्रदायो का प्रत्यक्ष फल यदि कुछ है तो वह है मानव जाति के विभिन्न वर्गों के बीच फूट बर विरोध तथा विग्रह के बीजो को बोना तथा समानता एव एकता के भावो को विनष्ट करना। पता नही क्यो विवेकानन्द ने सम्प्रदायवाद का इस प्रकार पोषण किया ?

शायद कुछ पाठक हमारी समालोचनाओ से रुष्ट होकर हम पर यह आरोप लगाये कि हम लेखक या वक्ता के हार्दिक भाव को न समझ कर मात्र

---

* कमयोग पृ० ३२

† कमयोग पृ० ३३

पूर्वाग्रहपूण दृष्टि कोण से ही यह आलोचना कर रहे हैं। परन्तु बात ऐसी नही है। विवेकानन्द का यह कथन तो व्यावहारिक दृष्टि से सत्य हो सकता है कि समस्त ससार किसी समय एक धर्मावलम्बी नही हो सकता इसका कारण यही भावो की विभिन्नता है परन्तु उनके इस उदगार से हम सहमत नही हो सकते कि ईश्वर करे जगत् कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। * स्वामी दयानन्द ने भी यह तो अनुभव किया था कि दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं परन्तु साथ ही उनकी यह भी धारणा थी कि धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से ससार मे सुख बढता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुख। अत वे इस आशा को लेकर चलत हैं कि जब सब विद्वान् एक मा उपदेश करें तो एक मत होने मे कुछ भी विलम्ब न हो। '†

अब हम निष्पक्ष पाठको पर ही निणय का भार छोड देत हैं कि क्या सम्प्रदाय बाहुल्य को स्थायित्व प्रदान करने का स्वामी विवेकानन्द का विचार उचित हे या विश्व मानवता को एक ही मानव धम के सूत्र मे आबद्ध देखने क इच्छुक स्वामी दयानन्द का। आलोच्य विषय के प्रति विवेकानन्द के विचार उस समय और भी अविवेक पूण हो जाते हैं जब वे सम्प्रदायो के उदगम और विकास का दायित्व मनुष्य की पक्षपात ग्रस्त बुद्धि पर न डालकर ईश्वर की इच्छा को ही इसके लिये उत्तरदायी ठहराते हैं। उनकी यह विचित्र दलील सुनिये— यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धम का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति किस भाति होती? ‡ तो क्या इसका यह अथ निकला कि ससार मे जो कुछ भावो विचारो भाषाओ का तथा सम्प्रदाय एव समाजगत वषम्य है वह सब ईश्वर की इच्छा का ही

---

* भारत मे विवकानन्द प ३५८

† सत्याथप्रकाश एकादश समल्लास

‡ भारत मे विवकानन्द प ३५९

परिणाम है ? क्या ऐसा मान लेने से मनुष्य के कर्तृत्व की स्वतन्त्रता समाप्त नही होती और क्या इससे मनुष्य अदृष्टवाद का एक खिलौना मात्र नही रह जाता ?

बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी जब कोई बात दुराग्रह के ढग से अथवा अभिनिवेश पूर्ण शैली मे कहने या लिखने लगता है तब उसका कथन या लेखन प्रलाप की सीमा रेखा तक पहुँच जाता है। क्या आलोच्य प्रसग मे विवेकानन्द का निम्न कथन ऐसा ही नही है ? जितने ही प्रकार के धर्म हो उतना ही ससार के लिये बेहतर है। यदि ससार मे २० प्रकार के धर्म हैं तो बहुत अच्छा है और यदि ४०० प्रकार के धर्म हो गये तो और भी अच्छा। क्योकि उस अवस्था मे धर्म पसन्द करने का अवसर तथा क्षेत्र अधिक रहेगा। ईश्वर करे धर्मों को सख्या यहा तक बढे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने लिये हर किसी के धर्म से अलग एक धर्म मिल जाय। * टिप्पणी व्यर्थ है सम्पूर्ण कथन सर्वथा असमञ्जस पूर्ण है।

धर्म और बुद्धिवाद

स्वामी दयानन्द की धर्म विषयक चिन्तन को एक बहुत बडी देन यह भी रही कि उन्होने उसे बुद्धि से अविरुद्ध माना। प्राय यह धारणा बन गई है कि धर्म का आधार श्रद्धा आस्था और विश्वास है न कि तर्क अथवा बुद्धिवाद। परन्तु वैदिक चिंतन मे ऐसे उद्धरणो का बाहुल्य मिलेगा जो यह सिद्ध कर देते हैं कि धर्म और बुद्धिवाद को पृथक नही किया जा सकता। वेद प्रमाणवाद के प्रबल पोषक भगवान् मनु ने तो स्पष्ट घोषणा की है कि ऋषियो द्वारा उपदिष्ट धर्मोपदेश का वेद शास्त्र से अविरोधी तर्क के द्वारा जो अनुसधान करता है वही धर्म को जानता है दूसरा नही। †

---

* प्रेम योग पृ ६६

† आर्ष धर्मोपदेशच वेद शास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसधत्त स धर्म वेदनेतर ॥ १२ । १०६

अनेक लोगो की यह धारणा है कि सम्भवत यूरोपीय बुद्धिवाद के प्रचण्ड आक्रमण से भारतीय हि दू धम को सुरक्षित रखने के लिये ही स्वामी जी ने काँट छाटकर उसे एक अ य रूप प्रदान किया है । परमहस रामकृष्ण के ११८ वें ज मोत्सव पर बोलते हुये हि दी के सुप्रसिद्ध कवि एव विचारक स्व० रामधारीसिंह दिनकर ने आयसमाज के प्रवतक को एकागी हिन्दुत्व का प्रतिनिधि बनाया था । उनके अनुसार दयान द हि दुत्व का केवल निराकार-वादी रूप लेकर चले थे इसलिये उ होने मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का विरोध किया । वे (दयान द) हि दुत्व को उन सारे उपकरणो से मुक्त कर दना चाहते थे जो बुद्धिवाद की कसौटी पर कच्चे ठहरे थे । दिनकर जी के अनुसार यह एक प्रकार की पराजय भावना थी क्योकि उनकी दृष्टि मे हि दुत्व निरा कारवादी ही नही साकारवादी भी है । इससे उ होने यह भी निष्कष निकाला कि हि दुत्व के इस परम्परागन एव विविधतापूण रूप का समथन करने का दम किसी नवजागरण के आ दोलनकर्ता मे नही था क्योकि केवल बुद्धिवाद की कसौटी पर हि दुत्व की सारी विविधताय सत्य सिद्ध नही की जा सकती हैं । इसी आधार पर महाकवि दिनकर यह मान बठे कि सुधारवादी आ दोलनो का भारत की विशाल जनता का समथन प्राप्त नही हुआ ।*

हमारा निवेदन यह है कि क्या धम और बुद्धिवाद को एकान्तत विरोधी मान लेना ही समीचीन होगा ? क्या धार्मिक विचारो मे तक पूण सगति अपेक्षित नही है ? फलत न तो परस्पर विरुद्ध तथा अ य अन्तर्विरोधयुक्त विचारो विश्वासो एव आस्थाओ को ही धम की सज्ञा दी जा सकती है और न एक बुद्धिसगत एव तकपूर्ण धम को प्रगल्भतापूण ढग से प्रस्तुत करने वाले दयान द तथा अ य सुधारको की भावना को पराजय की भावना या मनोवृत्ति ही कहा जा सकता है । दिनकर जी का यह कथन तो सत्य से और भी दूर है कि आयसमाज जसे सुधारवादी आ दोलन को भारत की विशाल जनता का समथन प्राप्त नही हुआ । वस्तुत आयसमाज ही वह जन आ दोलन था जो

* दनिक हि दुस्तान मे प्रकाशित भाषण

पुनर्जागरण के अन्य अभियानो की तुलना मे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सका। इसके स्पष्ट कारण भी थे। भारत के गौरव पूर्ण अतीत का पुनराख्यान, वर्तमान मे प्रचलित धार्मिक तथा सामाजिक विडम्बनाओ से मुक्त होने का साहसपूर्ण अभियान तथा राष्ट्रीय चेतना की अनुगूंज दयानन्द की सफलता के चरण चिह्न बन गये।

दिनकर का यह विवेचन उस समय और भी एकागी बन जाता है जब कि उन्होने भारतीय जन समाज की नब्ज को पहचानने का दावा करते हुये यह कहा कि ज्ञान शास्त्रार्थ और बुद्धि के चमत्कार से विरचित या प्रमाणित धर्म इस देश की जनता को कभी नही रुचा है।' क्या इस कथन से दिनकर जी यह अनुमान निकालना चाहते हैं कि धर्म को मात्र आस्था और विश्वास पर ही आधारित होना चाहिये। यदि ऐसा हुआ तब तो धर्म के नाम पर नानाप्रकार के अन्ध विश्वास ढोग पाखण्ड और ढकोसले पनपने लगेगे और वे उसके स्वरूप को ही सर्वथा विकृत बना देगे।

अत दिनकर जी का यह कथन एकागी रूप से ही सत्य है कि भारतीय धर्म की रचना पण्डितो मीमासको और तार्किको ने नही बल्कि सन्तो महात्माओ और द्रष्टाओ ने की है। वस्तुत भारत के तो मीमासक और तार्किक भी अपने अन्त स्थल के किसी गहन प्रदेश मे सन्त भक्त और महात्मा का नवनीत कोमल हृदय लिये रहते थे। इसलिये जिस प्रकार प्रखर तार्किक-मेधा से वे दर्शन और अध्यात्म के अलौकिक तत्त्वो की मीमासा करते थे उसी भाति अपने भावना प्रवण हृदय मे चरम सत्ता के प्रति अपने श्रद्धापूत उद्गार प्रकट कर वे अपने भक्त होने का प्रमाण भी देते थे। क्या कबीर राममोहन-राय दयानन्द और केशवचन्द्र सेन आदि को केवल तार्किक और मीमासक ही कहा जायगा ? क्या वे भक्त नही थे ?

सम्पूर्ण विवेचन का सार यही है कि धर्म और बुद्धिवाद मे कोई प्रत्यक्ष विरोध नही है। पुन विवेकानन्द का यह कथन कैसे सगत हो सकता है कि

जहा पर बुद्धि विचार का अ त होता है वही से धम का आरम्भ होता है। *

बुद्धि तक तथा वादविवाद के सम्ब ध मे विवकानन्द के निम्न उद्‌गारों को भी आलोचनीय माना जा सकता है क्योंकि हमारे यहां तो कहा गया है वादेवादे जायते तत्त्वबोध ।

किसी के साथ वादविवाद की आवश्यकता नहीं।

पत्रावली भाग १ पृ० २१८

वादविवाद मल वाक्य शास्त्र धार्मिक मत और सिद्धा त इनसे मैं विष की तरह द्व ष करता हू। पत्रावली भाग २ पृ० २२२

उत्कृप्टतम मतवाद अथवा सूक्ष्म यक्ति तक की क्या आवश्यकता है? विवेकान द चरित पृ० ११५

□□

---

* देववाणी पृ० २०१

अध्याय ११

समाज सस्थापन

उन्नीसवी शताब्दी मे उत्पन्न धार्मिक पुनर्जागरण के आन्दोलनो ने भारतीय आय हिन्दूधम की व्यक्तिनिष्ठ प्रवृत्ति को सामाजिकता की ओर उन्मुख किया। पश्चिम के सम्पक से भारतीय जनसमाज ने यह अनुभव किया कि इस सगठन प्रधान युग मे धम सभ्यता सस्कृति और पुरातन मूल्यो की रक्षा तथा प्रगति के लिये सामाजिक सगठन की ओर ध्यान देना आवश्यक है। राजा राममोहनराय द्वारा ब्राह्मसमाज की सस्थापना प्राचीन वदिक एकेश्वरवाद की पुन स्थापना के लिये की गई। कालान्तर मे जब ब्राह्मसमाज मे ईसाई विश्वासो का प्रवेश हुआ तथा वह हिन्दूधम की मौलिक मान्यताओ से अपने आपको पृथक कर एक सकीण सम्प्रदाय मात्र रह गया, तब उससे देश और समाज के उद्धार की आशायें भी समाप्त हो गई।

ब्राह्मसमाज की स्थापना] के लगभग अद्ध शताब्दी पश्चात् वदिक पुनर्जागरण के सूत्रधार स्वामी दयानन्द ने प्राचीन आय नीति रीति को प्रचारित करने तथा पुरातन वदिक आदशो के आधार पर सामाजिक नवनिर्माण हेतु आयसमाज के रूप मे एक सशक्त आन्दोलन को जन्म दिया। यद्यपि आयसमाज का मुख्य काय भारतीय हिन्दू समाज के दुबल मुमुषू कलेवर मे नवप्राणोन्मेष कर उसे शक्तिशाली बनाने का ही रहा किन्तु उसने अपनी काययोजना तथा उद्देश्यो को एक व्यापक आधार दिया। वस्तुत दयानन्द ने अपने वदिक

चि तन पर आधारित कायक्रम को सम्पूण विश्व मानवता के हिताथ प्रस्तुत किया था। यही कारण है कि आयसमाज के नियमा का निर्धारण करत समय उसका उद्द श्य ससार का उपकार करना निश्चित किया गया। इस महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिये व्यक्ति की शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति पर बल दिया गया। यहाँ इतना अवकाश नही है कि आयसमाज की स्थापना से सम्बधित धार्मिक सामाजिक एव राजनतिक परिस्थितियो का विस्तृत विश्लेषण कर उसकी तात्कालिक सफलताओ और उपलब्धियो का सोपपत्तिक विवेचन किया जाय कि तु इतिहासकारो ने समसामयिक भारत के सावत्रिक नवजागरण मे आयसमाज के महत्त्वपूण योगदान को सर्वात्मना स्वीकार किया है।

जहाँ एक ओर ब्राह्मसमाज और आयसमाज के माध्यम से वदिक विचारा के प्रचार समाज सुधार तथा हि दू जाति मे व्याप्त बहुविध कुसस्कारो रूढियो तथा अनाचारो को निमू ल किये जाने के सशक्त प्रयास हो रहे थे वहाँ दूसरी ओर बगाल के एका त रहस्य साधक श्री रामकृष्ण परमहस अपनी अटपटी वाणी के द्वारा अद्व तवाद की दाशनिक विचारधारा को सरल और सहज दृष्टान्तो द्वारा जिज्ञासुओ के लिये बोधगम्य बनाते हुये हि दू तत्त्व चिंतन को सवसुलभ बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। रामकृष्ण की साधना प्रणाली सवथा व्यक्ति निष्ठ थी तथा वे इस बात पर विशेष जोर देते थे कि सामूहिक रूप से समाज सुधार धम सशोधन कुरीति निवारण आदि के लिये उद्योग करना सवथा निरथक है।* आश्चय है कि वयक्तिक साधना पर इतना अधिक बल देने वाले रामकृष्ण को विवेकान द के रूप मे एक ऐसा मनस्वी लोक सग्रही तथा सशक्त यक्तित्व का शिष्य मिला जिसने यद्यपि अपने गुरु के द्वारा प्रदत्त दाय

---

* ईश्वर की खोज करो जगत् का उपकार करने जाना केवल अनधिकार चेष्टा है। श्री रामकृष्ण की उक्ति।

विवकान द चरित प० ३०७

को समग्रत स्वीकार किया परन्तु साथ ही जिसने युग की माग को पहचान कर मानव समाज के हितार्थ ऐसे समष्टिगत आयोजन भी किये जो सिद्धान्तो उद्देश्यो और लक्ष्यो मे अपने पूववर्ती आन्दोलनात्मक कायक्रमो से अधिक भिन्न नही थ। हमारा अभिप्राय रामकृष्ण मिशन की सस्थापना से है।

रामकृष्ण सघ (मिशन) की स्थापना १ मई १८९७ को हुई। इसके उद्देश्यो का वणन करते हुये कहा गया है कि 'मनुष्यो के हित के निमित्त श्री रामकृष्ण ने जिन तत्त्वो का विवेचन किया है और उनके जीवन मे काय द्वारा जिनकी पूर्ति हुई है उन सबका प्रचार * रामकृष्ण मठ की नियमावली मे इसी बात को इस रूप मे प्रस्तुत किया गया है— भगवान् रामकृष्ण द्वारा बनाई गई प्रणाली का अवलम्बन कर अपने लिये मुक्ति तथा ससार का सब प्रकार कल्याण करने की शिक्षा पाने के उद्देश्य से इस मठ की स्थापना की गई। † यहा दो बातें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। आयसमाज की ही भाति रामकृष्ण मिशन की सरचना भी विस्तृत मानव जाति के हितार्थ की गई है। उसका कायक्षेत्र किसी देश धम जाति तथा सम्प्रदाय की सीमा मे आबद्ध नही है परन्तु जिस महापुरुष के नाम पर सघ का नामकरण किया गया उसके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो और विचारो को तो इस समाज ने अपनी निर्देशक रेखा स्वीकार किया ही है। फलत आयसमाज और रामकृष्ण मिशन के सिद्धान्तो मे यदि कोई आधारभूत अन्तर हमे दृष्टिगोचर होता है तो वह यही है कि आयसमाज अपने प्रवतक तथा उसके विचारा के प्रति पूण श्रद्धा और निष्ठा प्रदर्शित करते हुये भी स्वामी दयानन्द को अन्य पुरातन ऋषि-मुनियो की भाति वदिक विचारधारा का एक भाष्यकार अथवा व्याख्याकार ही मानता है जब कि रामकृष्ण मिशन का न केवल नामकरण ही विवेकानन्द

* *विवेकानन्दजी के सग मे पृ० ३०५*

† *भगवान् रामकृष्ण धम तथा सघ पृ० ६८*

ने स्वगुरु के नाम पर किया अपितु यह भी आवश्यक माना कि रामकृष्ण द्वारा प्रतिपादित विचार पद्धति का ही मिशन द्वारा प्रचार प्रसार हो।

इस सम्बन्ध म विवकानन्द के विचार निता त स्पष्ट थे। सघ की स्थापना के अवसर पर अपने आचायदेव के पुनीत नाम का स्मरण करते हुये उन्होने कहा— हम जिनके नाम पर सन्यासी बन हैं आप लोग जिन्हें जीवन का आदश बनाकर ससाराश्रम के कायक्षेत्र मे मौजूद हैं जिनके देहावसान के बाद दस वर्षो मे प्राच्य व पाश्चात्य जगत् मे उनके पवित्र नाम व अद्भुत जीवन का आश्चयजनक प्रसार हुआ है यह सघ उन्ही के नाम पर प्रतिष्ठित होगा। * विवेकानन्द की दृष्टि मे रामकृष्ण का व्यक्तित्व कुछ अदभुत विचित्र तथा नवीनता लिये हुये था। उसमे उन्हे प्राचीन और नवीन आदर्शों का समन्वय सा दीख पडा। कारण यह था कि रामकृष्ण के उपदेशो से न केवल पुरानी पीढी के लोग ही प्रभावित हुये थे अपितु कालेजो और विश्व विद्यालयो मे पश्चिमी विज्ञान और दशन आदि का अध्ययन कर भारतीय अध्यात्म के प्रति अधिकाधिक शकास्पद विचार रखने वाले सदेहवादी युवकगण भी उस ओर एक विचित्र आकषण से खिंचे हुये चले आ रहे थे। तभी तो विवेकानन्द ने एक प्रसग मे कहा हमारे श्री रामकृष्ण का आचरण भाव सब कुछ नये प्रकार का है इसलिये हम सब भी नये प्रकार के हैं। कभी कपडा पहन कर भाषण देते हैं और कभी हर हर बम बम कहते हुये भस्म रमाये जगलो में घोर तपस्या मे तल्लीन हो जाते हैं।"† स्वामी दयानन्द क क्रियाशील जीवन मे भी हम उपयुक्त दोनो पहलुओ को स्पष्टत देखते हैं। योग विद्या के जिज्ञासु रूप मे वे एक तपस्वी बन कर हिमावेष्टित पवतो गहन अरण्यो और विस्तीण सरिता तटो पर वर्षों तक घूमते रहे परन्तु कालान्तर मे जब वे समाज और देश हित की सिद्धि के लिये एक उपदेशक की भूमिका मे अवतीण

---

* *विवकानन्द चरित पृ० ३०५*

† *विवेकानन्दजी के सग मे पृ २६*

हुये तो उन्होने अपना दिगम्बर वेश त्याग कर लोक नेता के कर्त्तव्यो का निर्वाह किया ।

इस प्रकार हम देखते है कि एकान्तिक साधना को ही महत्त्व देने वाले श्री रामकृष्ण के प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानन्द को भी समाज सगठन के लिये उसी प्रणाली को स्वीकार करना पडा जो उनके पूववर्ती स्वामी दयानन्द अपना चुके थे । यो तो विवेकान द ने सघबद्ध कायप्रणाली के अनेक लाभ अपने यूरोप प्रवास मे भी देखे थे * पर तु स्वदेश मे तो उनके समक्ष आयसमाज जमा एक जीवित और जागृत सगठन क्रियाशील था । आयसमाज के कर्त्तव्यनिष्ठ अनुयायियो और समाज सेवा के लिये सवस्व त्याग का व्रत ग्रहण करने वाले उसके सदस्यो को देख कर उनके मन मे भी यदि अपने आचाय के नाम पर सघ स्थापित करने का विचार आया हो तो आश्चय ही क्या ? श्री रामकृष्ण मिशन के द्वारा समाज सेवा शिक्षा प्रचार तथा जन-जागरण के कुछ कार्यों की पूर्ति हुई है । मिशन ने चिकित्सालयो और सेवा केन्द्रो के माध्यम से अशक्त पीडित तथा कष्टो मे ग्रस्त दुखी मानवता की सराहनीय सेवा की है । जहाँ तक अपनी विचारधारा के प्रचार का प्रश्न हे उसने जगत् के सभी धम मतो को एक अखण्ड सनातनधम का रूपा तर मात्र समझते हुये सभी धर्मावलम्बियो के बीच आत्मीयता की स्थापना' को अपना व्रत स्वीकार किया । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये रामकृष्ण मिशन अपने साहित्य के द्वारा ही यत्किञ्चित काय कर सका है ।

यह एक आश्चय का विषय है कि रामकृष्ण मिशन के सस्थापक ने स्वामी दयानन्द तथा उनके समानधर्मा अन्य सुधारको की काय प्रणाली और प्रचार पद्धति को वदेशिक अनुकरण कह कर उसके प्रति शका यक्त की पर तु समय

---

* *अनेक देशों मे भ्रमण करके मेरा यह विश्वास हो गया है कि सघ के अतिरिक्त कोई वहत् काय नहीं हो सकता ।*

विवकान द चरित पृ० ३०४

आने पर वे स्वय भी उसी प्रणाली का अनुकरण करने क लिये विवश हुये। वस्तुत उत्तम आदश चाहे परकीय भी क्यो न हो अनुकरणीय होता है। अत अवस्था एव परिस्थिति के अनुसार यदि आयसमाज के प्रवतक ने भाषण व्याख्यान, शकासमाधान पुस्तक लेखन, भ्रमण एव जनसम्पक आदि साधनो से वदिक म त यो का प्रचार एव प्रसार किया तो वह सवथा उचित ही था। पर तु क्या यह आश्चय नही है कि जिन रामकृष्ण ने जगत् के उपकार करने को अनधिकार चर्चा कहा उ ही के पट्टशिष्ट ने उ ही के नाम पर जगत् क हिताथ उन सुधारवादी सस्थाओ जसा ही सगठन खडा कर दिया जिनकी विचार प्रणाली तथा कायप्रणाली का वह स्वय कटु आलोचक था।

अध्याय १२

स्फुट विचार

विगत अध्यायो मे हमने स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के कतिपय धार्मिक दाशनिक तथा सामाजिक सास्कृतिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन किया है। यहा कुछ स्फुट विषयो का विवेचन करना अपेक्षित है।

यज्ञ—

वदिक कमकाण्ड के अन्तगत यज्ञ प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। वेद प्रतिपादित 'यज्ञ देवपूजा सगतिकरण तथा दान जसे उदात्त कर्मों का सूचक था परन्तु कालान्तर मे उसे मात्र अग्निहोत्र का ही समानाथक मान लिया गया। वेदो मे जहा दश पौणमास आदि नमित्तिक यज्ञो का विवेचन उपलब्ध होता है वहाँ अश्वमेध राजसूय पुरुषमेध आदि का भी उल्लेख हुआ है। जब यज्ञ प्रक्रिया मे विभिन्न दोषो का समावेश हुआ तो उसकी दाशनिक अथर्गभिता समाप्त हो गई, तथा इसके स्थान पर अधिकाधिक स्थूलता जटिलता तथा व्यथता युक्त क्रियाजालो का समावेश होता गया। परिणाम यह निकला कि मध्यकालीन धमचिंतन मे देवयान और पितृयान के नाम से साधना के द्विविध रूप विकसित हुये। यह माना जाने लगा कि पितृयान का माग यज्ञ यागादि कार्मिक अनुष्ठानो से प्रशस्त होता है और उसके द्वारा साधक का स्वग की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत देवयान माग ज्ञानानुष्ठित पद्धति है, जो उपासक को निर्विकल्प मोक्ष प्राप्त प्राप्त कराती है।

स्वामा दयानन्द ने यज्ञ को उसक वास्तविक अथ म स्वीकार किया। उनके अनुसार कमकाण्ड दो प्रकार का होता है। एक परमाथ दूसरा लोक व्यवहार अथात् पहिले से परमाथ और दूसरे से लोक व्यवहार की सिद्धि करनी होती है। प्रथम जो परमपुरुषाथ रूप कहा उसमे परमेश्वर की स्तुति अर्थात् उसके सवशक्तिमत्त्वादि गुणो का कीतन उपदेश और श्रवण करना प्राथना अर्थात् जिस करके ईश्वर से सहायता की इच्छा करनी उपासना, अर्थात् ईश्वर के स्वरूप मे मग्न होके उसकी सत्यभाषणादि आज्ञा का यथावत् पालन करना सो उपासना वेद और पातञ्जल योगशास्त्र की रीति से ही करना चाहिये। इसी धम का जो ज्ञान और अनुष्ठान का यथावत् करना है सो ही कमकाण्ड का प्रधान भाग है और दूसरा यह है कि जिससे पूर्वोक्त अथ काम और उनकी सिद्धि करने वाल साधनो की प्राप्ति होती है। सो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पय त जो कमकाण्ड है उसमे चार प्रकार के द्रव्यो का होम करना होता है। *

स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द स्तुति प्राथना उपासना को भी कमकाण्ड के ही अन्तगत मानते हैं जो ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं इसके साथ ही परोपकार हेतु किये जाने वाले अग्निहोत्रादि कर्मों का अनुष्ठान भी वे सामाजिक हित के लिये आवश्यक मानते है। ऐतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य को प्रमाण रूप मे उद्धत करते हुये उन्होने लिखा— वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है। इसमे ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि जनता नाम जो मनुष्य का समूह है उसी के सुख के लिये यज्ञ होता है। †

निश्चय ही स्वामी दयानन्द ने वदिक यज्ञ प्रथा मे निहित व्यापक लोकोपकार भावना को स्पष्ट किया तथा पशुहिंसा आदि के अनेक अनाचार पूण कृत्यो से उसे पृथक सिद्ध कर उसकी पवित्रता तथा महत्ता प्रतिपादित

---

* ऋग्वदादि भाष्यभमिका वद विषय विचार।

† ऋग्वदादि भाष्यभूमिका वद विषय विचार।

की। यज्ञ को मनुष्यमात्र के लिये करणीय बता कर उन्होंने उसे परोपकार का प्रमुख साधन घोषित किया— अस्मात्कारणात्सर्वोपकाराय सर्वैर्मनुष्ययज्ञ कर्त्तव्य एव। † किन्तु विवेकानन्द का यज्ञ के प्रति दृष्टिकोण इतना व्यापक और प्रशस्त नहीं था। मध्यकालीन आचार्यों के स्वर में स्वर मिला कर वे लिखते हैं— यज्ञादि कर्मों से भोग आदि का मिलना सम्भव है पर आत्मा की पवित्रता उनसे असम्भव है। ‡ इसी आधार पर उन्होंने यज्ञ को आधुनिक युग के लिये नितान्त अनुपयोगी माना— यज्ञादि प्राचीनकाल में उपयोगी थे पर वर्तमानकाल के लिये वैसा नहीं है। × शायद विवेकानन्द की दृष्टि में यज्ञ का अर्थ अग्नि में कतिपय सुगन्धियुक्त पदार्थों की आहुति देना मात्र ही है तभी वे उनकी शास्त्र वर्णित जटिल प्रक्रियाओं को देख कर उसे साम्प्रतिक काल के लिये अनुपयोगी ठहराते हैं। दयानन्द की विशेषता इस बात में है कि वे न तो यज्ञ के सम्बन्ध में सर्वथा पुराणपंथी ही हैं और न वे उसके मौलिक अभिप्राय को विस्मृत करने के ही पक्ष में हैं। यहाँ यज्ञ विषयक स्वामी दयानन्द की मान्यताओं का निम्न प्रकार से सूत्रित किया जा सकता है।

(१) ज्ञान और उपासना की ही भांति वे कर्म (यज्ञ) काण्ड को भी मानव के लिये आवश्यक मानते हैं।

(२) यज्ञ केवल अग्निहोत्र ही नहीं है यह सृष्टि प्रक्रिया को सञ्चालित करने का एक ईश्वरीय विधान है।

(३) भौतिक यज्ञों का उद्देश्य मात्र अदृष्ट रूपी स्वर्ग (सुख) की ही प्राप्ति नहीं है उससे जल वायु का शुद्धिकरण वातावरण का परिष्कार आदि भौतिक लाभ भी होते हैं।

---

† वही

‡ *पत्रावली भाग १ पृ० १६०*

× *वही पृ० २१७*

(४) उन्होंने मध्यकालीन जटिलताओं ग्रन्थ के क्रियाजाल तथा प्राणिहिंसा आदि दोषों से यज्ञ प्रथा को मुक्त किया।

स्वामी दयानन्द द्वारा निरूपित और घोषित यज्ञ का व्यापक अर्थ समयान्तर में सभी विचारशील लोगों के द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसके स्पष्ट कारण भी थे। वेद उपनिषद् गीता मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में उसे लोकोपकार और परमार्थ के व्यापक आधार पर ही प्रतिपादित किया गया था अतः सर्वोदय के विचारक और महात्मा गांधी के मूर्धाभिषिक्त शिष्य आचार्य विनोबा ने भूदान सम्पत्तिदान ग्रामदान श्रमदान आदि लोकोपकार के कार्यों को यज्ञ नाम से अभिहित किया।

भक्ष्याभक्ष्य (मांसाहार)

मानव जीवन में शरीर और आत्मा का आधाराधेय सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है यह एक निर्विवाद मत है। योग साधना में आहार विहार निद्रा-जागरण के संयम नियम का बहुत महत्त्व है। भगवान् कृष्ण के शब्दों में—

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ गीता ६। १६

अर्थात् जिसका आहार विहार नियत है कर्मों का आचरण नपातुला है और सोना जागना परिमित है उसके लिये यह योग दुःखनाशक होता है। उपनिषदों में भी आहार शुद्धि पर अत्यधिक जोर दिया गया है। आहार शुद्धि से सत्त्व शुद्धि और उससे स्मृति की दृढता बताई गई है।* मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र-ग्रन्थों में आहार एवं भक्ष्याभक्ष्य के सम्बन्ध में विस्तृत नियम निरूपित हुये हैं। मांस भक्षण को आर्य धर्म में सदा ही गर्हित दृष्टि से देखा गया है। मांसाहारी के स्वभाव में तामसी प्रवृत्ति अत्यन्त उग्र रूप में दृष्टिगोचर होती है। हिंसा, क्रूरता आदि अन्य दुर्गुण भी उसमें सहज ही आ जाते हैं। सामान्यतया यह धारणा प्रचलित है कि वैष्णव मत के प्रचार ने ही

* आहारशुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः

मासाहार को निरुत्साहित किया अन्यथा उससे पूववर्ती आयधम के विभिन्न सम्प्रदाय मासाहार को स्वीकृति प्रदान करते थे। परन्तु बात ऐसी नही है। वेद उपनिषद मनुस्मृति पातञ्जल योग दशन आदि सभी प्राचीन वदिक वाङमय के ग्रन्थ मासाहार को निन्दित बताते हैं। यह अवश्य है कि जब देश मे वाममार्गी तान्त्रिक मत का प्राबल्य हुआ उस समय मास भक्षण, मद्यपान आदि को भी प्रच्छन्न रीति से आष धम मे प्रविष्ट कराने की चेष्टा की गई यज्ञा मे पशुहिंसा का विधान किया गया तथा नाना प्रकार के समाजविरोधी जुगुप्सा जनक कृत्यो का धम के नाम पर अनुष्ठान एव आचरण होने लगा।

निश्चय ही वष्णव मत के प्रचार ने तन्त्राधारित वाममार्गी साधना पद्धति को निरुत्साहित किया फलत मासाहार को धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त निन्दास्पद माना जाने लगा। क्रूर प्राणिहिंसा से प्राप्त होने वाले मास भोजन को नैतिकता की दृष्टि से भी अनुचित माना गया। वष्णवो के अतिरिक्त कबीर दादू नानक आदि निगुण सन्तमण्डली के महापुरुषो ने भी यत्र तत्र मासाहार की निंदा ही की है। स्वामी दयानन्द जसे जीवन के प्रति समग्र दृष्टि रखने वाले व्यक्ति के लिये भक्ष्याभक्ष्य का प्रकरण लिख कर उसमे मासाहार की आलोचना करना स्वाभाविक ही था। सत्याथप्रकाश के दशम समुल्लास मे उन्होने मासाहार की आलोचना शरीरशास्त्र नीतिशास्त्र एव व्यावहारिकता सभी दृष्टियो से की है। उन्होने मासाहार से होने वाले पशुधन के भयकर ह्रास की ओर से भी अपनी दृष्टि ओझल नही की तथा पशुहिंसा को आर्थिक हानि का प्रमुख कारण बताया। उनकी यह विवेचना अत्यन्त मार्मिक है कि जब से विदेशी मासाहारी इस देश मे आके गौ आदि पशुओ के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुय हैं तब से क्रमश आर्यों को दुख की बढती होती जाती है। *

खेद से साथ लिखना पडता है कि मासाहार के सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण नितान्त असगत तथा आय (हिन्दू) चिन्तन के

---

* *सत्याथप्रकाश दशम समुल्लास*

विरुद्ध है। सम्भवत बगाल जसे प्रा त म ज म लेने जहाँ तान्त्रिक वाम माग तथा शाक्त मत की प्रबलता सदा से रही है तथा पारिवारिक परम्परा से आमिष भोजी होने के कारण उ होने अपने ग्र था मे यत्र तत्र मास भोजन का समथन ही किया है। या उनके कुछ ग्र थो म मास भक्षण का विरोध भी दृष्टि गाचर होता है पर तु ऐसा लगता है कि आमिष भोजन की उपयोगिता क प्रति उ होने अपने कुछ पूर्वाग्रह बना लिये थे। वे भी यह मानने लगे थे कि मासाहार शक्ति वद्धक है और मासाहारी जातियाँ ओज तेज शौय वीय और पराक्रम मे निरामिष भोजी जातियो से प्रबल होती हैं। फलत उन्होने मास भक्षण का येन केन प्रकारेण समथन किया। किसी जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देते हुये उ होने एक पत्र मे लिखा क्या ईश्वर तुम जसा मूख है क्या वह इतना नाजुक है कि एक टुकडे मास स उसकी दया रूपी नदी मे चर (?) खडा हो जाय ? *

विवेकानन्द क निकट सम्पक मे आने वाले व्यक्तियो ने यह स्पष्ट लिखा है कि भारतवष के साधारण गृहस्थो के बारे मे स्वामी जी मासाहार के पक्ष-पाती थे। वे कहा करते थे वतमान युग मे पाश्चात्य मासाहारी जातिया क साथ उ हे जीवन सग्राम मे सब प्रकार से प्रतिद्वन्द्विता करनी होगी इसलिये मास खाना उनके लिये इस समय विशेष आवश्यक है। † स्वामी जी के कथन की युक्तिहीनता को हृदयगम करना कठिन नही है। पाश्चात्य जातियो की उन्नति और प्रगति के कारण उनका पुरुषार्थी होना विज्ञान-सम्पन्न होना राष्ट्रीय स्वाभिमान को स्थिर रखना आदि हैं, न कि मासाहारी होना। क्या मासाहारी होने मात्र से ही कोई जाति ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे प्रगति कर सकती है ? एक भक्त ने उनसे पूछा—

मछली तथा मास खाना क्या उचित और आवश्यक है ?" स्वामी जी न

---

* पत्रावली भाग १ पृ० १०६

† विवकानन्द जी के सग मे पृ० २६८

उत्तर दिया— खूब खाओ भाई इससे जो पाप होगा वह मेरा।*' पुन कहा— वदिक तथा मनु के धम मे मछली और मास खाने का विधान है। † तथा घास पात खाकर पेट रोग से पीडित बाबाजी लोगो के दल से देश भर गया है। ‡ अत अब देश के लोगो को मछली मास खिलाकर उद्यमशील बना डालना होगा। +

विवेकानन्द के अनुसार शाकाहारी लोग (घास पात खान वाले) पेट रोग से पीडित होते हैं तथा मास मछली खाने से वे उद्यमी बन जायगे। क्या हो विचित्र तक है? परन्तु इससे भी अधिक आपत्तिजनक बात यह है कि वे वदिक धम और मनु के आधार पर मासाहार का समथन करना चाहते है। हम यह पूव ही लिख चुके है कि वदिक धम मे मासाहार को स्वीकृति प्राप्त नही थी। यह अवश्य है कि वाममाग के प्रभाव से जब वदिक क्रियाकाण्ड को भी दूषित कर दिया गया तो यज्ञो मे पशुहिंसा मद्यपान आदि का प्रचलन हुआ और उससे पवित्र यज्ञवेदी मूक अबोध एव निरपराध पशुओ के रक्त से रजित हो उठी। मासाहार के समथको ने ब्राह्मण ग्रथो श्रौत एव गृह्य सूत्रो तथा स्मृतिशास्त्र मे भी यत्र तत्र मासाहार के समथक वाक्य प्रक्षिप्त कर दिये। यहाँ इतना स्थान नही है कि वदिक साहित्य मे यत्र तत्र पशुहिंसा तथा मासविधान के समथन मे पाये जाने वाले वाक्यो का समग्र आलोचनात्मक ऊहापोह किया जाय तथा उन्हे परवर्ती काल मे प्रक्षिप्त सिद्ध किया जाय तथापि यह निश्चित है कि यज्ञ का प्रकृत विधान सवथा हिंसा रहित तथा प्राणिमात्र के लिये मगल विधायक ही था। वेदो मे यज्ञ के लिये जिस अध्वर' शब्द का प्रयोग हुआ है उसका व्युत्पत्तिलभ्य अथ ही है हिंसा रहित कम।

---

* *विवकानन्द जी के सग मे पृ० २६७*

† वही पृ० २६९

‡ वही पृ० २७०

+ वही पृ० २७०

अत यज्ञ मे प्राणिहिंसा सवथा अशास्त्रीय तथा वदिक परम्परा से अननुमोदिन है। जहाँ तक मनुस्मृति के आधार पर मासाहार का समथन किया जाता है हमे यह स्मरण रखना होगा कि अन्य सस्कृत शास्त्र ग्रन्थो की ही भाति मानव धम शास्त्र मे भी बहुत कुछ नवीन बाते समय-समय पर प्रविष्ट की जाती रही हैं। इन्ही मे मासाहार विधायक श्लोक भी हैं। यह एक सामान्य बात है कि कोई भी विचारशील लेखक परस्पर विरुद्ध लेखन नही करता, परन्तु आज मनुस्मृति जिस रूप मे हमे उपलब्ध है उसमे एक ही साथ मासाहार के विरोधी तथा समथक श्लोक मिलते हैं। इस स्थिति म या तो हम यह मान लें कि इस स्मृतिशास्त्र का लेखक कोई परले दर्जे का पागल व्यक्ति था जिसने किसी झोक मे आकर ही ऐसी परस्पर विरुद्ध बात लिख दी अन्यथा हमे यह स्वीकार करना होगा कि स्मृतिकार की भावना के प्रतिकूल मासाहार समथक श्लोक कालान्तर मे उसमे घुसेडे गये हैं।

भगवान् मनु ने निम्न श्लोको मे मास भक्षण का निषेध किया है—

नाकृत्वा प्राणिना हिंसां मासमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवध स्वग्यस्तस्मान्मास विवजयेत् ॥ ५ । ४८

प्राणि हिसा के बिना तो मास प्राप्त होता ही नही। प्राणिबध स्वग प्राप्ति का हेतु नही है अत मास को सवथा त्याग देना चाहिये।

समुत्पत्ति च मासस्य बधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सवमासस्य भक्षणात् ॥ ५ । ४९

मास के पदा होने की विधि तथा प्राणियो की हत्या तथा पीडा को देख कर मास भक्षण से बचे रहे।

पुन मास भक्षण के कृत्य मे जो-जो दोषी और पापी ठहराये जा सकते हैं उनका उल्लेख करते हुये स्मृतिकार लिखते हैं—

'अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
सस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका ॥" ५ । ५१

जिसकी सम्मति से मारते हैं जो अगो को काट कर पृथक करता है मारने वाला खरीदने वाला बेचने वाला पकाने वाला परोसने वाला तथा खाने वाला ये आठ घातक हैं।

इस प्रकार मासाहार निषेध के सम्बन्ध मे मनु की आज्ञायें नितान्त स्पष्ट है पुन यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर पशु बध और मास भक्षण का समर्थन करने वाले कतिपय श्लोको को ग्रन्थकार का निजी मन्तव्य मानना उचित नही है। महाभारत मे यह स्पष्ट लिखा है कि—

> **सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।**
> **कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्या पशून् नरा ॥***

धर्मात्मा मनु ने सर्व कर्मो मे अहिंसा ही कही है परन्तु अपनी इच्छा से स्वेच्छाचारी लोग यज्ञ वेदी पर पशु हिंसा करते हैं।

वस्तुत वेदान्त के प्रचारक सन्यासी के लिये यह एक साहस की ही बात थी कि वह शास्त्रो के नाम पर मासाहार का खुले आम प्रचार करे। सम्भवत विवेकानन्द को कुछ समय पश्चात् मास भोजन विषयक अपनी धारणायें परिवर्तित करनी पडी क्योकि हम देखते हैं कि अपने ग्रन्थो मे उन्होने मास-भोजन का विरोध भी किया है। उन्होने लिखा— वेदान्त इस बात को बिलकुल नही मानता कि पशुगण मनुष्यो से सम्पूर्णतया पृथक हैं और उन्हे ईश्वर ने हमारे भोज्य रूप मे बनाया है। † जब स्वामी जी ने यह बात लिखी तब उनकी अन्तरात्मा ने अपने आपको कुरेद कर पूछा होगा कि स्वय मासाहारी होकर भी क्या व उसे अनुचित कृत्य मानते हैं? यहा सत्य की ही विजय हुई और अपने कृत्य को अनुचित ठहराते हुये उन्होने लिखा— मैं स्वय शाकाहारी न भी होऊ किन्तु मैं शाकाहार को आदर्श समझता हू। जब मैं मास

---

* *महाभारत—मोक्षधर्मपर्व*

† *व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त पृ० ११*

खाता हू तब जानता हू कि यह ठीक नही है। आदर्श नीचा करके अपनी दुर्बलता का समर्थन मुझे नही करना चाहिये। आदर्श यही है—मास न खाया जाय किसी भी प्राणी का अनिष्ट न किया जाय, क्योकि पशुगण भी हमारे भाई है। *

अपने एक ग्र थ प्रेम योग मे भी स्वामी विवेकानन्द ने यही बात कही—मास का परित्याग करना चाहिये। यह तो स्वभावत ही अपवित्र वस्तु है अत इसका त्याग करना उचित ही है। दूसरे का प्राण लेकर ही हमे मास की प्राप्ति होती है। हम तो क्षणमात्र के लिए स्वाद सुख पाते हैं पर दूसरे जीवधारी को सदा के लिये अपने प्राणो से हाथ धोने पडते हैं। यहा तो स्पष्ट ही विवेकान द की वाणी मनु के पूर्वोद्धत श्लोक का अनुवाद करती सी प्रतीत होती है परन्तु दबे स्वर से यहा भी वे यह लिख जाते हैं कि— मास भक्षण का अधिकार उ ही मनुष्यो को है जो कठिन परिश्रम करते हैं और भक्त होना नही चाहते। †

जो कुछ हो हम यह कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही कि मासाहार के विषय मे श्री स्वामी विवेकानन्द के विचार अनिश्चित तथा सशयग्रस्त हैं।

अन्धविश्वास और मूढ़ धारणायें

उन्नीसवी शताब्दी का नवजागरण आन्दोलन बुद्धिवाद के सुदृढ धरातल पर आधारित था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होने के कारण लोग अधिकाधिक प्रबुद्ध तथा तर्क सगत विचारो को स्वीकार करने लगे थे। मध्यकालीन समाज मे जो अवैज्ञानिक तथा अ धविश्वास पूर्ण धारणायें प्रचलित हो गई थी उनका उन्मूलन इस युग की एक विशिष्ट उपलब्धि मानी जायगी।

---

* वही पृ० १२

† प्रेम योग पृ ४।

स्वामी दयान द और उनके द्वारा प्रवर्तित आयसमाज ने धम समाज तथा पारिवारिक जीवन मे व्याप्त नाना मूढ धारणाओ को समाप्त करने के लिए जो कुछ किया उसका विवेचन एक पृथक विषय है। भूत-प्रेत, अच्छे बुरे शकुन फलित ज्योतिष नाना प्रकार के अपदेवताओ के प्रकोप से आक्रान्त सामा य जनो को उस समय राहत की सास लेने का अवसर मिला जब उ होने जाना कि वास्तव मे मनुष्य ही प्राणिसमूह मे ज्यष्ठ और कोष्ठ है। भून प्रेत और अ य काल्पनिक योनियो के कोप और प्रसाद से अनावश्यक रूप से प्रभावित जन समाज को यह अहसास कराना आवश्यक था कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता है। न तो भूत प्रत भरव और वताल ही उसका कुछ बिगाड सकते है और न मगल और शनि जसे सौर मण्डल के जड ग्रह ही उसके भाग्य को प्रभावित करते हैं। आचाय कौटिल्य न ठीक ही लिखा है—

> नक्षत्रमतिपृच्छन्त बालमर्थो तिवतते।
> अर्थोह्यथस्य नक्षत्र किं करिष्यन्ति तारका ।*

नक्षत्र पूछने वाला राजा बाल है वह अभीष्ट प्राप्त नही कर सकता। धन और साधन ही नक्षत्र हैं तारे क्या करेंगे ?

स्वामी दयानन्द ने स्वरचित सत्याथप्रकाश के द्वितीय समुल्लास मे लोक प्रचलित अ धविश्वासो तथा ज्योतिष के शुभाशुभ फलो की सम्यक आलोचना की है। मानव के सावत्रिक अभ्युत्थान के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने मन और मस्तिष्क को अ ध धारणाओ और मिथ्या विश्वासो से सवथा मुक्त रक्खे।

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन चरित मे कुछ ऐसी घटनाओ का उल्लेख मिलता है जिनसे यह निष्कष सहज ही निकाला जा सकता है कि वे भूत-

---

* अथशास्त्र ९।१४२।४

प्रतादि की काल्पनिक योनियो मे विश्वास रखते थे। ऐसा कहा जाता है कि काशीपुर उद्यान मे उन्होने एक छिन्न मुण्ड प्रत देखा। वह करुण स्वर म अपनी यत्रणाओ से मुक्त होने की प्राथना करता था।* अन्धविश्वास के तुल्य ही चमत्कार मे विश्वास रखना बुद्धि का दिवालियापन सूचित करता है। ससार मे जितनी घटनाये घटित होती हैं वे कारण काय की व्यवस्था के अन्तगत ही होती हैं। प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल कुछ भी होना सम्भव नही है। यह दूसरी बात है कि अनेक ऐसे कार्यो तथा घटनाओ के कारण-सूत्र का हमे पता न चले किन्तु यह निश्चित है कि कारण के बिना काई काय नही होता।† महापुरुषो के जीवन क साथ भी विभिन्न प्रकार के चमत्कार जाने अनजाने जुड जाते हैं अथवा जोड दिये जाते हैं। एक ऐसी ही घटना का उल्लेख स्वामी विवेकानन्द के सस्मरणा के प्रसग मे मिलता है जहाँ कहा गया है कि नाग महाशय (एक सन्त पुरुष) ने अपने घर पर ही गगा की धारा को प्रकट कर दिया।‡ वस्तुत इन अतिशयोक्ति पूण कथनो की मीमासा ही अनावश्यक है।

अन्धविश्वासो से भी अधिक भयावह और चिन्तनीय हैं स्वामी विवेकानन्द के ऐसे अनगल उदगार जो मात्र भावुकता से प्रभावित होकर ही व्यक्त किये गये हैं। आपातत देखने पर उनमे कोई विशेष आपत्तिजनक बात भले ही दृष्टिगोचर न हो, परन्तु यदि हम ऐसे कथनो मे निहित वक्ता के हार्दिक भावो का विश्लेषण कर तो उनकी भयावहता पूणत मुखर हो उठेगी। उदाहरणत जब वे काश्मीर भ्रमण के समय क्षीरभवानी नामक तीथ स्थान

---

* *विवकानन्द जी के सग मे प २५ व श्राद्धादिकों से प्रतात्माओं की तृप्ति मे भी विश्वास करते थे। प १६६, १६७।*

† *कारणाऽभावात् कार्याऽभाव वशेषिक दशन १।२।१*

‡ *वही प ४३३*

को देखने गये तो उन्हे मुसलमानी शासन काल मे तोडे गये मन्दिर के विनष्ट रूप का देखकर खेद हुआ। सम्भवत उनके मन मे असहिष्णु मुसलमान शासको के प्रति आक्रोश के भाव भी उत्पन्न हुये होगे क्योकि बहुत कुछ सयम रखने पर भी साम्प्रदायिक मताधता के शिकार प्राचीन मठ मन्दिरो तथा सस्कृति के गौरव चिह्नो का भग्नावशेष रूप देखकर अत्यत सयत एव विचार शील मनुष्य का भी विचलित हो जाना स्वाभाविक ही है। मानव स्वभाव की इस सहज वृत्ति को अस्वाभाविक नही कहा जा सकता।

परन्तु शीघ्र ही विवेकानन्द इस घटना को एक दूसरे दृष्टि बिन्दु से देखने लगे। उनकी वेदान्त सुलभ भावुकता उमड पडी और मानो स्वय देवी क्षीर-भवानी ही उनके सामने प्रकट होकर कहने लगी— मेरी इच्छा से ही यवनो ने मन्दिर का विध्वस किया है जीर्ण मन्दिर मे रहने की मेरी इच्छा है। क्या मेरी इच्छा से अभी यहा सात मजिला सोने का मन्दिर नही बन सकता? तू क्या कर सकता है? मैं तेरी रक्षा करूगी या तू मेरी रक्षा करेगा।'* इस गदलश्रु भावकता पर क्या कहा जाय? क्या यह विवकानन्द का दिवा-स्वप्न नही है? यदि साम्प्रदायिक दुराग्रहवश किये गये अनाचारो और अत्याचारो को आड देकर बचाने के लिये ही देवी देवताओ के कपोल कल्पित कथन गढे जाने लगे तब तो इतिहास मे उल्लिखित अलाउद्दीन और औरगजेब के मताधता पूर्ण क्रूर कर्मो पर स्वत ही हरताल फिर जायगी। तब तो शायद अयोध्या के राम मन्दिर को तोडते समय स्वय भगवान् राम ने ही अवतीर्ण होकर बाबर को कहा होगा कि तू इस मन्दिर को नष्ट कर मसजिद का निर्माण कर शायद स्वय भगवान् सोमनाथ ने ही ज्योतिर्लिंग को तोडने की प्रेरणा महमूद गजनवी जसे मूर्तिभजक मुसलमान को दी होगी। लीलामय कृष्ण के जन्म स्थान को तोडकर जो औरगजेब ने विशाल मसजिद बना दी, उसे भी लीलामय की लीला ही कहना अधिक युक्तिसगत होगा। किन्तु क्या

---

* *विवकानन्द जी के सग मे पृ० १६५*

ऐसी कल्पनाओ और भ्रान्त धारणाओ को व्यक्त कर हम इतिहास के साथ न्याय करते हैं और क्या ऐसे प्रवञ्चनापूर्ण उद्गार प्रकट कर हम धार्मिक असहिष्णुता को और बढावा नही देते ? काश ! मन्दिर की जड प्रतिमा मे ही इतनी शक्ति होती कि वह अपने निवास के लिये सतमजिला भवन बना लेती तो वह अत्याचारी आक्रान्ता से अपनी रक्षा भी कर लती। परन्तु सर्वमिथ्या-वाद के पोषक वेदान्तनिष्ठ सन्यासी के लिये तो मन्दिर का देवता और प्रतिमा-भजक यवन दानो हो मिथ्या हैं फिर कौन सी मूर्ति और कसी रक्षा ? क्या वेदान्त का यह स्वेच्छाचारी चिन्तन विडम्बनापूर्ण आत्महत्या नही है ?

जो कुछ हो विवेकानन्द का यत्र तत्र प्रकट होने वाला प्रबल बुद्धिवाद भी यथा कथचित कुण्ठित हो जाता था और वे भी परम्परा-पालक भारतीय साधु की ही भाति आचरण करने लगते थे। तभी तो काश्मीर के एक अन्य तीर्थ स्थान अमरनाथ मे कबूतरो के जोडे को देखकर उन्होने अपने आपको सौभाग्य वान् और सिद्ध सकल्प माना।* स्वामी दयानन्द ने भी अपने साधु जीवन के प्रारम्भिक काल मे हिन्दू तीर्थ स्थानो का विपुल भ्रमण किया था परन्तु प्रारम्भ से ही धार्मिक अन्ध विश्वासो के प्रति अश्रद्धा होने तथा अपने क्रान्त-दर्शी चिन्तन के कारण वे इन तथाकथित धर्म स्थानो मे व्याप्त आडम्बरों पाखण्डो और मूढ आचारो को अत्यन्त सतर्क दृष्टि से देखते थे। यही कारण है कि सत्यार्थप्रकाश मे जहाँ तीर्थ स्थानों की आलोचना का प्रकरण आया है वहा दयानन्द ने इन स्थानो पर फले हुये अनाचारो का तीव्र खण्डन किया है। अस्तु।

मूल बात तो दृष्टिकोण की है। सुपठित व्यक्ति भी तर्क सगत दृष्टिकोण के अभाव मे अन्धविश्वासो का शिकार हो जाता है। पुन स्वामी विवेकानन्द के बारे मे हम क्या कहे जिनका एक अन्य भावुकतापूर्ण कथन अध्ययन और

---

* देववाणी प ६४

चिन्तन को आधुनिकता का एक मुखौटा मात्र मानता है तथा जिसके कारण मनुष्य अपने स्रष्टा ईश्वर से अधिकाधिक दूर होता जाता है। उन्होंने कहा यदि हम लिखना पढना न जाने तो हम धन्य हैं क्योकि ईश्वर के सान्निध्य से दूर करने वाली अनेक बाते उससे कम हो जाती है। * तो क्या इससे हम यह निष्कष निकाले कि अपठित व्यक्ति ईश्वर के अधिक निकट होता है?

□□

---

* देववाणी प ४६

अध्याय १३

विवेकानन्द का वेदान्तवाद
कुछ हेत्वाभास पूर्ण उक्तियाँ

स्वामी दयानन्द और स्वामी विवकानन्द की दार्शनिक मान्यताओ की तुलनात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि विवेकानन्द ने शाङ्कर वेदान्त को प्रारम्भ मे तो बडे सकोच के साथ अपनाया किन्तु धीरे धीरे वे उसके प्रबल समथक तथा प्रवक्ता बन गये। दयानन्द ने किसी विशिष्ट दाशनिक सम्प्रदाय का पल्ला न पकड कर विशुद्ध वदिक दशन को ही अपनी युक्तियो द्वारा परिपुष्ट किया तथा वेदानुमोदित षडदशनो मे अविरोध स्थापित करने की चेष्टा की। प्रस्तुत अध्याय में हम स्वामी विवेकानन्द की वेदान्त विषयक उन मान्यताओ पर विचार करगे जो किन्ही प्रबल हेतुओ पर आश्रित न होकर हेत्वाभासो के रूप मे ही उपस्थित हुई हैं। हमे यह सोचना पडेगा कि क्या इस प्रकार की दुबल युक्तियो पर आधारित वेदान्त एक सव स्वीकृत जीवन दशन बन सकता है ?

आत्मा के सम्बन्ध मे परस्पर विरुद्ध कथन—

दाशनिको में मान्य निमित्त उपादान और साधारण त्रिविध कारणो की विवेचना करने के पश्चात् स्वामी जी लिखते हैं— किन्तु आत्मा स्वय ही ये

तीनो कारण है । आत्मा कारण भी है और अभि यक्ति या काय भा है । *
क्या इस प्रकार के अस्पष्ट एव वदतो याघात पूण कथना से आत्मा का
स्वरूप स्पष्ट हा सकता है ? वस्तुत आत्मा अनादि है अत वह न तो किसी का
कारण ही है और न स्वय ही किसी अ य वस्तु का काय । आत्मा के ऐसे ही
अनादि और अन त स्वरूप का विवेचन करते हुये उपनिषद्कार ने कहा है—

न तस्य काय करण च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥' †

निश्चय ही उक्त उपनिषद्वाक्य मे परमात्मा के स्वरूप का ही विवेचन किया
गया है जिसका ज्ञान बल और क्रियायें स्वाभाविक हैं तथा जिसकी पराशक्ति
सवत्र दृष्टिगोचर होती है ।

ज्ञान और कम के सम वय का विरोध—

कम किसी भी तरह तुम्हे मुक्ति नही दे सकता । केवल ज्ञान के द्वारा ही
तुम्हे मुक्ति हो सकती है । ‡

कम का यह तीव्र खण्डन भी शकर के अ धानुसरण का ही फल है ।
वस्तुत वैदिक दशन ज्ञान एव कम के सम वय का समथक है । ईशावास्योप-
निषद् मे ज्ञान और कम को तुल्य महत्त्व देते हुये स्पष्ट कहा है कि कम
(अविद्या) के द्वारा मृत्यु को पार कर ज्ञान (विद्या) से मोक्ष की प्राप्ति
होती है—

---

* देववाणी पृ० १२६

† श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । ८

‡ देववाणी पृ० १३२

विद्या चाविद्या च यस्तद् वेदोऽभय सह ।
अविद्यया मत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमतमश्नुते ॥*

इस वदिक सिद्धान्त के विपरीत शकर और उनके अनुवर्ती विवेकानन्द आदि वेदान्तनिष्ठ सन्यासियो ने यह मत प्रचलित किया कि कम का प्रयाजन केवल अन्त करण की शुद्धि ही है । मोक्ष प्राप्ति मे उसका कुछ भी उपयोग नही है । दयानन्द की इस क्रान्तदर्शिता को स्वीकार करने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही होनी चाहिये कि उन्हाने प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा स्वीकृत ज्ञान कम के समन्वय का पुन दृढतापूवक प्रतिपादन किया ।

इन्द्रियजन्य (प्रत्यक्ष) ज्ञान को भ्रान्त कहना क्या स्वय भ्रान्ति नहीं है । इन्द्रिय ज्ञान सम्पूर्ण भ्रान्ति है इसे पदाथ विज्ञान भी प्रमाणित करता है । † न्याय दशन मे प्रत्यक्ष की परिभाषा करते हुये उसे इन्द्रिय और अथ के सन्निकष से उत्पन्न ही बताया गया है ।‡ यह अवश्य है कि ऐसा ज्ञान अव्यभिचारी और निश्चात्मक होना चाहिये । पुन स्वामी विवेकानन्द इन्द्रियजन्य ज्ञान को भ्रान्त किस आधार पर बताते हैं ? यदि उनका अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय दोषो तथा अन्य बाधाओ से सही ज्ञान प्राप्त नही होता तो ऐस अपवादो की कल्पना तो स्वय शास्त्रकारो ने ही कर ली थी पुन उसका खण्डन इस आधार पर करना कि पदाथविज्ञान भी इन्द्रिय ज्ञान का भ्रान्त मानता है अनुचित है ।

प्रत्यक्ष को स्वप्न कहना—एक विचित्र हेत्वाभास

शायद मैं केवल स्वप्न देख रहा हू । मैं स्वप्न देख रहा हू कि मैं आपसे

---

* *ईशोपनिषद् मन्त्र १४*

† *देववाणी पृ० १३८*

‡ *इन्द्रियाथ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मक प्रत्यक्ष १ । १ । ४*

बात कर रहा हू और आप मेरी बात सुन रहे है।' * प्रत्यक्ष वार्तालाप को स्वप्न की सज्ञा देना किसी ऐसे व्यक्ति के लिये ही सम्भव है जो जागृत अवस्था मे भी स्वप्न देखने का आदी हो। स्वप्न और स्वप्नद्रष्टा दो पृथक वस्तुयें नही है। †

जानबूझ कर द्वत का अ यथा खण्डन इसे ही कहते हैं। क्या विवेकान द की ही तकपद्धति को स्वीकार कर हम यह भी कहने लगे कि वस्तु और उसका द्रष्टा पृथक नही हैं अथवा भोग्य पदाथ और भोक्ता दो पृथक तत्त्व नही हैं? इस प्रकार के हेत्वाभासयुक्त कथनो से अद्व त सिद्धि नही की जा सकती।

माया' की अनिवचनीयता तथा अ याख्येयता (?)

किसी घटना के सम्ब ध मे क्यो प्रश्न की जिज्ञासा ही मायान्तगत है। अतएव माया कसे आई यह प्रश्न ही यथ है क्योकि माया के बीच रहकर उसका उत्तर कभी नही दिया जा सकता। ‡

कितना अस्वभाविक युक्ति हीन तक हे! यदि क्यो' के द्वारा किसी प्रश्न की जिज्ञासा को ही माया तगत मान लिया तब तो क्या वेदा त सिद्धा त मे मा य उपनिषद्कारा की ये जिज्ञासायें भी यथ नही हो जायेगी जिनमे बार बार तत्त्व को जानने की इच्छा यक्त की गई है। उदाहरणाथ—जब केनोपनिषद्कार पूछते हैं—

केनेषित पतति प्रेषित मन केन प्राण प्रथम प्रति युक्त × आदि तो

---

* ज्ञान योग पृ० ११२

† देववाणी पृ० १९६

‡ वही पृ० १५५

× केनोपनिषद् १।१

क्या उसका प्रश्न और जिज्ञासा यथ है ? अथवा जब श्वेताश्वतर* ऋषि पूछत है— किं कारण ब्रह्म कुत स्म जाता जीवाम केन क्व च सप्रतिष्ठा आदि तो क्या उनका यह प्रश्न माया-तगत है ? या वेदान्तियो न अपनी कपोलकल्पित माया की व्याख्या से बचने के लिये ही तो ऐसा अन्तगल बात नही लिखी हैं ? यदि माया के बीच मे रह कर किसी प्रश्न का उत्तर दिया ही नही जा सकता तब तो विवेकानन्द तथा अन्य वेदान्तनिष्ठ सन्यासियो के सम्पूर्ण शका समाधान, प्रश्नोत्तर तथा तत्त्वालोचना व्यथ और मिथ्या ही ठहरेंगी।

सगुण ईश्वरवाद का वदान्तिक खण्डन

सगुण ईश्वरवाद अत्यन्त अपूव है। अनेक समय इससे प्राण शीतल हो जाता है किन्तु वेदान्त कहता है प्राण की यह शीतलता अफीम खाने वालों के नशा के समान अस्वाभाविक है और इससे दुबलता आती है।'†

यदि वेदान्तियो की दृष्टि मे सगुण ईश्वर और उसकी भक्ति मात्र मादक-द्रव्यसेवन के तुल्य ही अस्वाभाविक और हानिकर है तो क्या मनुष्य मात्र के प्रणम्य सूर तुलसी और मीरा जसे भक्तजन और यहाँ तक कि स्वय विवेकानन्द के ही गुरु परमहसदव भी उसी गणना मे नही आयेंगे ?

प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण मानने पर आपत्ति—

इस कल्पना मे सबसे अधिक आपत्ति जनक बात तो यह है कि ईश्वर इस उपादान कारण से मर्यादित हो जाता है क्योंकि इस उपादान की मर्यादा के भीतर ही वह काय कर सकता है।‡ शायद इस कथन से विवेकानन्द यह मानते हैं कि ईश्वर का अमर्यादित रहना ही अच्छा है। परन्तु वे यह क्यों नहीं स्वीकार करते कि ईश्वर का गौरव तो स्वरचित मर्यादाओ और नियमो का

---

* *श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० १।१*

† *ज्ञानयोग पृ० २९९*

‡ *वदप्रणीत हिन्दू धर्म पृ० ४७*

पालन करने मे ही है न कि उनका उल्लघन करने मे। वदिक दशन मे ईश्वर को किसी ऐसे स्वेच्छाचारी सम्राट के रूप मे कल्पित नही किया गया है जो समटिक पगम्बरी मजहबो मे मान्य ईश्वर की भाति कतु अकतु अन्यथा कतु समथ हो। यहा तो उसे स्वनिमित ऋत् (ईश्वरीय नियम) का पालक और रक्षक माना गया है। अत प्रकृति रूपी उपादान के द्वारा उसका सृष्टि रचना उसके लिये दोषावह नही माना जा सकता।

शाङ्कर वेदान्त ने मनुष्यो को अपने इहलौकिक कत्तव्य पालन से विमुख किया है उसने अपने अनुयायियो मे झूठे वराग्य का भाव जागृत कर उनमे पलायनवादी दृष्टिकोण उत्पन्न किया है तथा ससार के मिथ्यात्व का उद्घोष कर उसे कठिनाइयो और विपत्तियो से जूझने की प्रेरणा करने की अपेक्षा एक काल्पनिक आत्मसतोष के वातावरण मे रहना सिखाया ये सभी आक्षेप उक्त दाशनिक मतवाद के सम्बन्ध मे किये जाते हैं। विवेकानन्द रामतीथ आदि वेदान्त के नवीन पुरस्कर्ताओ ने शाङ्कर सिद्धान्त पर की गई उपयुक्त आपत्तियो का अपने अपने ढग से उत्तर दिया है किन्तु वे उसमे असफल ही रहे हैं कारण कि वेदान्त के उपदेष्टा यदाकदा ऐसी बात कह ही जाते हैं जिनसे आपत्तिकर्ताओ के कथन की ही पुष्टि होती है। उदाहरणाथ विवकानन्द के निम्न उदगारो की ओर दृष्टिनिक्षेप करे—

आत्मीय और बधुबाधव-गण पुराने अधकूप के समान है। पति स्वामी लडके बच्चे बधु बाधव किसी के प्रति तुम्हारा कुछ भी कत्तव्य नही है। *

स्वकत्तव्य पालन को सभी महापुरुषो ने सर्वोपरि महत्त्व दिया है किन्तु वेदान्तवादी परिव्राजक के लिये तो कत्तव्य नाम की कोई वस्तु ही नही है तभी तो विवेकानन्द ने लिखा— कत्तव्य नामक कोई एक वस्तु है और उसका पालन करना ही होगा इस प्रकार की धारणा भयकर कालकूट स्वरूप है

---

* देववाणी प० २०२

इसने जगत् को नष्ट कर डाला है।'*

क्या ससार मे कत्तव्य विमुख होकर भी कोई व्यक्ति श्रेयगामी हो सकता है पुन कत्तव्य के प्रति ऐसी अवहेलना का भाव जागृत कराने मे स्वामी जी क्यो प्रवृत्त हुये ? शाङ्कर वेदा त की ब्रह्मानुभूति भी एक विशेष प्रकार की अहभावना की ही तुष्टि है। विवेकानन्द के इसी प्रकार के अहता युक्त उद्गारों की एक झलक देखिये। यहा तो स्पष्ट ही वे स्वदेशवासियो के प्रति एक खीझ सी प्रदर्शित करते हैं तथा अपने पश्चिमी शिष्यो के प्रति उनका विश्वास अधिक मुखर हुआ है। पर तु हमे यह समग्र कथन एक विचित्र प्रकार के असन्तुलित भावोद्गार तथा अहतापूर्ण मनोवृत्ति का दिग्दशक प्रतीत होता है। अपने एक पत्र मे उन्होने लिखा—भारत की अपेक्षा मेरे विचार पश्चिम मे अधिक काम करेंगे। भारत ने जो मेरे लिये किया है उससे बहुत ज्यादा मैंने भारत के लिये किया है मैं कत्त य को नही मानता। कत्तव्य ससारी लोगो के लिये अभिशाप है स यासी के लिये नही। कत्तव्य पाखण्ड है। मैं स्वतन्त्र हू। मेरे ब धन कट गये हैं।"† क्या कत्तव्य विमुख निर्बाध स्वतन्त्रता भी काई श्रेयस्कर वस्तु है और क्या सन्यासी के लिये कुछ भी आचरणीय नही है ? वस्तुत शाङ्कर मतवादियो के 'शिवोऽहम्' मुक्तोऽहम्' और अह ब्रह्मास्मि' जसे मिथ्या उद्गार ही ऐसे अनुत्तरदायित्व पूर्ण कथनो के लिये उत्तरदायी हैं।

☐☐

---

* देववाणी पृ० २०३

† पत्रावली भाग २ पृ० ६१

पालन करने मे ही है न कि उनका उल्लघन करने मे। वदिक दशन मे ईश्वर को किसी ऐसे स्वेच्छाचारी सम्राट के रूप मे कल्पित नही किया गया है जो समेटिक पगम्बरी मजहबो मे मा य ईश्वर की भाति 'कतु अकतु अ यथा कतु समथ हो। यहा तो उसे स्वनिमित ऋत (ईश्वरीय नियम) का पालक और रक्षक माना गया है। अत प्रकृति रूपी उपादान के द्वारा उसका सृष्टि रचना उसके लिय दोषावह नही माना जा सकता।

शाङ्कर वेदा त ने मनुष्यो को अपने इहलौकिक कत्तव्य पालन से विमुख किया हे उसने अपने अनुयायियो मे झूठे वराग्य का भाव जागृत कर उनमे पलायनवादी दृष्टिकोण उत्पन्न किया है तथा ससार के मिथ्यात्व का उद्घोष कर उसे कठिनाइयो और विपत्तियो से जूझने की प्रेरणा करने की अपेक्षा एक काल्पनिक आत्मसतोष के वातावरण मे रहना सिखाया ये सभी आक्षेप उक्त दाशनिक मतवाद के सम्बन्ध मे किये जाते है। विवेकानन्द रामतीथ आदि वेदा त के नवीन पुरस्कर्ताओ ने शाङ्कर सिद्धान्त पर की गई उपयुक्त आपत्तियो का अपने अपने ढग से उत्तर दिया है किन्तु वे उसमे असफल ही रहे हैं कारण कि वेदा त के उपदेष्टा यदाकदा ऐसी बाते कह ही जाते हैं जिनसे आपत्तिकर्ताओ के कथन की ही पुष्टि होती है। उदाहरणाथ विवेकान द के निम्न उदगारो की ओर दृष्टिनिक्षेप करे—

आ मीय और बधुबाधव-गण पुराने अधकूप के समान है। पति स्वामी लडके बच्चे बधु बाधव किसी के प्रति तुम्हारा कुछ भी कत्तव्य नही है। *

स्वकत्त य पालन को सभी महापुरुषो ने सर्वोपरि महत्त्व दिया है किन्तु वेदा तवादी परिव्राजक के लिये तो कत्त य नाम की कोई वस्तु ही नही है तभी तो विवेकानन्द ने लिखा— कत्त य नामक कोई एक वस्तु है और उसका पालन करना ही होगा इस प्रकार की धारणा भयकर कालकूट स्वरूप है

---

* देववाणी प० २०२

इसने जगत् को नष्ट कर डाला है।' *

क्या ससार मे कत्तव्य विमुख होकर भी कोई व्यक्ति श्रेयगामी हो सकता है पुन कत्तव्य के प्रति ऐसी अवहेलना का भाव जागृत कराने मे स्वामी जी क्यो प्रवृत्त हुये ? शाङ्कर वेदान्त की ब्रह्मानुभूति भी एक विशेष प्रकार की अहभावना की ही तुष्टि है। विवेकानन्द के इसी प्रकार के अहता युक्त उद्गारों की एक झलक देखिये। यहाँ तो स्पष्ट ही वे स्वदेशवासियो के प्रति एक खीझ सी प्रदर्शित करते हैं तथा अपने पश्चिमी शिष्यो के प्रति उनका विश्वास अधिक मुखर हुआ है। परन्तु हमे यह समग्र कथन एक विचित्र प्रकार के असन्तुलित भावोदगार तथा अहतापूर्ण मनोवृत्ति का दिग्दशक प्रतीत होता है। अपने एक पत्र मे उन्होने लिखा—भारत की अपेक्षा मेरे विचार पश्चिम मे अधिक काम करेंगे। भारत ने जो मेरे लिये किया है उससे बहुत ज्यादा मैंने भारत के लिये किया है मैं कत्तव्य को नही मानता। कत्तव्य ससारी लोगो के लिये अभिशाप है सन्यासी के लिये नही। कत्तव्य पाखण्ड है। मैं स्वतन्त्र हू। मेरे बन्धन कट गये हैं।'† क्या कत्तव्य विमुख निर्बाध स्वतन्त्रता भी काई श्रेयस्कर वस्तु है और क्या सन्यासी के लिये कुछ भी आचरणीय नही है ? वस्तुत शाङ्कर मतवादियो के 'शिवोऽहम् मुक्तोऽहम् और 'अह ब्रह्मास्मि जसे मिथ्या उद्गार ही ऐसे अनुत्तरदायित्व पूण कथनो के लिये उत्तरदायी हैं।

□□

---

* देववाणी पृ० २०३

† पत्रावली भाग २ पृ० ६१

दयानन्द और विवेकानन्द
वैचारिक समता के कुछ उदाहरण

समकालीन और समानधर्मा महापुरुषो के अनेक विचारो मे समता और सामञ्जस्य का पाया जाना आश्चयजनक नही है। स्वामी विवेकान द का अपने पूववर्ती स्वामी दयान द के विचारो से अनेकाश म अद्भुत साम्य दृष्टि गोचर होता है। यहा हम बिना किसी टिप्पणी के दोनो आचार्यों के समान अभिप्राय वाले वचन उद्ध त करते है—

ऋषि प्रणाली को स्वीकार करने मे ही कल्याण है—

दयान द— जो आर्यों का सनातन वेदोक्त धम है उसको पण्डित जी (प० महेशच द्र यायरत्न) के समान विचार करने वाले मनुष्यो ने उलट दिया है। इस उलटे माग को उलटा कर पूर्वोक्त सत्य धम का स्थापन मैं किया चाहता हू।

—भ्रा ति निवारण

विवेकान द— मेरी काय प्रणाली यही है—हि दुओ को दिखाना चाहिये कि उ हे कुछ छोडना न पडेगा पर तु केवल ऋषियो के प्रवर्तित माग पर चलना होगा।

—पत्रावली भाग १ पृ १८३

लोक मगल के लिये स्वहित का त्याग

दयानन्द— आय धम की उन्नति हो इसलिये मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश मे होने चाहिये। एक व्यक्ति द्वारा यह काय सिद्ध नहीं हो सकता। फिर भी अपनी बुद्धि और सामथ्य क अनुकूल जो दीक्षा मैंने ली है उसे चलाऊगा ऐसा सकल्प किया हुआ है।

—आत्मकथा

विवेकानन्द— देखो गिरीश बाबू मन मे ऐसे भाव उदय होते हैं कि यदि जगत् के दुख को दूर करने के लिये मुझे सहस्रो बार जन्म लेना पडे तो भी मैं नयार हू। और ऐसा भी मन मे आता है कि केवल अपनी ही मुक्ति से क्या होगा ? सब को साथ लेकर उस माग पर जाना होगा।'

—विवेकानन्दजी के सग मे पृ ६३

इस समय तो मन मे केवल यही होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

—विवेकानन्दजी की कथायें पृ ६३

सरलता और निरभिमानता।

दयानन्द—वार्तालाप के एक प्रसग में जब स्वामी दयानन्द के मुख से कुछ अशुद्ध उच्चारण हो गया तो सस्कृत के एक छात्र ने उनकी भूल की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। स्वामी दयानन्द ने निस्सकोच भाव से अपने उच्चारण-जन्य स्खलन को स्वीकार कर लिया। सरलता और अभिमानशून्यता का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। —महर्षि दयानन्द का जीवन चरित

हमारे बोलने मे कुछ प्रमाद अथवा अशुद्ध प्रयाग निकल आवे तो पण्डितो को उसका विषाद न मानना चाहिये।

—उपदेश मजरी

विवेकानन्द—सस्कृत विद्वानो के एक समूह मे स्वामी विवेकानन्द से सस्कृत उच्चारण करते हुए एक भूल हो गई। किसी पण्डित के उस ओर

ध्यान आकृष्ट करने पर उन्होने सरलता पूवक अपनी त्रुटि को स्वीकार करते हुए कहा— पण्डिताना दासोऽहम् क्षन्तव्यमेतत् स्खलनम् मै पण्डितो का दास हू । मेरी यह भूल क्षमा के योग्य है ।

सवविध एकता की आवश्यकता है ।

दयानन्द—उदयपुर मे प० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया के यह पूछने पर कि भारत का पूण हित और जातीय उन्नति कब होगी स्वामी जी ने उत्तर दिया कि एक धम एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना ऐसा होना दुष्कर है ।

—जीवन चरित

विवेकानन्द—जब एक जाति एक वेद शान्ति और एकता होगी तब सत्ययुग आयगा ।

—पत्रावली भाग २ पृ ८

यज्ञोपवीत दान

दयानन्द—स्वामी जी ने क्षत्रिय और वश्यो मे द्विजोचित यज्ञोपवीत सस्कार का पुन प्रचार किया । कणवास के क्षत्रियो और फरूखाबाद के वैश्यो को अपने हाथो से यज्ञोपवीत धारण कराये ।

—महर्षि दयान द का जीवन चरित

विवेकानन्द—स्वामी विवेकानन्द ने यज्ञोपवीत का प्रचार किया तथा अनेक लोगो को स्वहस्त से जनेऊ पहनाये ।

—विवेकानन्द चरित पृ ३३६

क्षत्रिय राजाओ को उपदेश देना ।

दयानन्द—स्वामीजी कहा करते थे कि एक मनुष्य को सुधारने से सिफ एक मनुष्य सुधरता है परन्तु एक राजा को सुधारने से हजारो लाखो मनुष्यो का कल्याण हो जाता है । इसी कारण जीवन के अन्तिमकाल मे स्वामी जी उदयपुर शाहपुरा, जोधपुर आदि देशी रजवाडो के सुधार की ओर उन्मुख हुये ।

विवेकान-द— हजार हजार दरिद्र लोगो को उपदेश देने और सत्काय के अनुष्ठान मे तत्पर कराने से जो काय होगा उसकी अपेक्षा एक राजा को उस दिशा मे ला सकने पर कितना अधिक काय हो जायेगा।

—विवेकान-दजी की कथायें पृ २४

योगेश्वर कृष्ण का वास्तविक स्वरूप।

दयान द— देखो श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत मे प्रत्युत्तम है। उनका गुण कम स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषो के सदृश है। जिसमे कोई अधम का आचरण श्रीकृष्ण जी ने ज-म से मरण पयन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नही लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये है। —सत्याथ प्रकाश एकादश समुल्लास

विवेकान द— अब वृ दावन के वशीधारी कृष्ण के ध्यान करने से कुछ नही बनेगा इससे जीव का उद्धार नही होगा। अब प्रयोजन है गीता के सिंहनादकारी श्रीकृष्ण का।

—विवेकानन्दजी के सग मे पृ २१

मनुष्य की भाषा मे ऐसा (कृष्ण) श्रेष्ठ आदश और कभी चित्रित नही हुआ।

—भारत में विवेकानन्द पृ २१६

वाममार्गियो द्वारा यज्ञ प्रथा को भ्रष्ट करना।

दयान-द— भला विचारना चाहिये कि स्त्री से अश्व के लिंग का ग्रहण कराके उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हाँसी ठट्ठा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगो से अन्य मनुष्यों का काम नही।"

—सत्याथ प्रकाश द्वादश समुल्लास।

विवेकान-द— वदिक अश्वमेघ यज्ञ के आचारो की याद करो—'तदन तर महिषी अश्वसन्निधौ पातयेत" इत्यादि। फिर होता, पोता, ब्रह्मा, उद्गाता आदि बेडौल मतवाले होकर खबबी करते थे। जानकी जी बन को

भेजी गइ थी और राम ने अकेले अश्वमेघ किया यह सुनकर मुझे बडा चन हुआ।"

—पत्रावली भाग १ पृ २०९

सह शिक्षा का विरोध।

दयानन्द— लडके और लडकियो की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहा अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हो वे कन्याओ की पाठशाला मे सब स्त्री और पुरुषो की पाठशाला म पुरुष रहे।'

—सत्याथ प्रकाश तृतीय समुल्लास

विवेकानन्द— स्त्री पाठशाला मे पुरुषो का ससग किञ्चित मात्र भी अच्छा नही।

—विवेकानन्दजी के सग मे।

ईश्वर का सवश्रेष्ठ नाम।

दयानन्द—ओ३म् यह ओकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। ओ३म् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नही होता उसी की उपासना करनी योग्य है।

—सत्याथप्रकाश प्रथम समुल्लास

विवेकानन्द— उसका सवश्रेष्ठ नाम है ओम् अतएव इस ओकार का जप करो उसका ध्यान करो उसके भीतर जो अपूव अथ राशि निहित है उसका चितन करो। सवदा ओकार जप ही यथाथ उपासना है। यह मत समझो कि ओकार साधारण शब्द है वह तो स्वय ईश्वर स्वरूप है।

—देववाणी पृ १०७

"समस्त विश्व की उत्पत्ति नाम रूपो की जननी स्वरूप इस ओकार रूप पवित्रतम शब्द मे ही मानी जा सकती है।

ओम् ही ईश्वर का सच्चा ्यापक नाम है।

भक्तियोग पृ ४८ ४९

धम और बुद्धिवाद।

दयान द— प्रमाणो के सहाय से अथ विवेचन कर देखने से विचाराश मे निश्चय होता है कि कौन सी बात सत्य और कौन सी झूठ है।'

—उपदेश मजरी

विवेकान द— धम भाव को विचार बुद्धि द्वारा नियमित करना उचित है। नही तो इस भाव की अवनति हो जाती है और वह भावुकता मात्र मे परिरात हो जाता है।

—देववाणी पृ ७६

सच्चे उपदेश की पहली कसौटी यह है कि वह उपदेश तक के विपरीत न हो।'

—वेद प्रणीत हिन्दू धर्म पृ १११

नारी जाति को वेदाधिकार।

दयान द—भारतवष की स्त्रियो मे भूषण रूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रो को पढके पूण विदुषी हुई थी यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है।

—सत्याथ प्रकाश तृतीय समुल्लास

विवेकान द— वदिक और औपनिषदिक युग मे तो मत्रयी गार्गी आदि पुण्य स्मृति महिलाओ ने ऋषियो का स्थान ल लिया था। सहस्र वेदज्ञ ब्राह्मणो की सभा मे गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय मे शास्त्राथ करने के लिये ललकारा था।' —चिन्तनीय बातें पृ ३८

युक्ति द्वारा धम निणय।

दयान द— प्रमाणो से अर्थो की परीक्षा करना ्याय कहलाता है। इस वाक्य को कसौटी पर लगा कर सच झूठ की परीक्षा कीजिये।"

—उपदेश मजरी १३ वाँ व्याख्यान

विवेकानन्द—युक्ति के मानदण्ड के बिना धर्म के विषय मे किसी प्रकार का विचार या सिद्धान्त सम्भव नही है ।

—व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त पृ ७०

पश्चिम के अन्धानुकरण का विरोध ।

दयानन्द— इन लोगो मे (ब्रह्म समाज) स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयो के आचरण बहुत से लिये हैं । अपने देश की प्रशसा वा पूर्वजो की बडाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेट भर निंदा करते हैं । व्याख्यानो मे ईसाई आदि अंग्रेजो की प्रशसा भर पेट करते है। ब्रह्मादि महर्षियो का नाम भी नही लेते प्रत्युत ऐसा कहते है कि बिना अंग्रेजो क सृष्टि मे आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नही हुआ ।'

—सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास ।

विवेकानन्द— जब हम सुनते है कि प्राचीन काल के किसी साधु या ऋषि ने सत्य को प्रत्यक्ष किया है तो हम कह देते हैं कि वह सब भूल है परन्तु यदि कोई कहे कि हक्सले का मत है या टिण्डल ने बताया है तो हम तुरन्त सारी बाते मान लेते हैं। प्राचीन कुसस्कारो की जगह हम आधुनिक कुसस्कार लाये हैं। धर्म के प्राचीन पोप के बदले हमने विज्ञान के आधुनिक पोप का स्वागत किया है ।"

—ज्ञानयोग पृ १९३

दयानन्द और विवेकानन्द : व्यक्तित्व विश्लेषण

भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत महापुरुषो मे स्वामी दयान द तथा स्वामी विवेकान द का अन्यतम स्थान है। धार्मिक तथा सास्कृतिक क्षेत्रो मे नवोदय के जिस श्लाघनीय प्रयत्न का सूत्रपात आधुनिक भारत के पिता राजा राम मोहनराय ने किया था उसे ही आगे बढाने एव प्रगति देने का महत्त्वपूर्ण प्रयास आयसमाज के प्रवतक स्वामी दयान द ने किया। परमहस रामकृष्ण के जीवन तथा साधना से प्रेरणा प्राप्त स्वामी विवेकानन्द ने भी देशोत्थान तथा मानवहित के इ ही कार्यों को आगे बढाया जि हे दयान द तथा केशवचन्द्रसेन जैसे सुधारक महापुरुष प्रारम्भ कर चुके थे।

वैराग्य और गृहत्याग—

दयान द तथा विवेकान द के जीवन एव व्यक्तित्व मे हमे कही कहीं पर्याप्त साम्य तथा अ यत्र वषम्य दृष्टिगोचर होता है। दयान द एक सम्पन्न परिवार मे उत्पन्न महापुरुष थे जि हे वराग्य पथ का पथिक बनने की प्ररणा ठीक वसे ही मिली जैसी आप से अढाई हजार वष पूव कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धाथ को मिली थी। मानव जीवन की अन्तिम परिणति-मृत्यु के दुखद दृश्य को देख कर किशोर मूलशकर को भी उसी माग की तलाश हुई जिसे

सिद्धार्थ ने तलाश किया था। परन्तु विवेकानन्द पारिवारिक विपत्ति तथा आर्थिक कष्टो से पीडित होकर दुखी हृदय लिये हुये रानी रासमणि द्वारा निर्मित काली मन्दिर के उस पुजारी के सम्पर्क मे आये जिसने उन्हे माँ काली से यथेच्छ मुरादे मागने के लिये कहा। युवक नरेन्द्र का सस्कारवान् हृदय श्रद्धा सवलित होकर धन सम्पत्ति और वैभव के स्थान पर अपने आराध्य से माग बैठा—ज्ञान वैराग्य और भक्ति। रामकृष्ण के सम्पर्क मे आने से पूर्व नरेन्द्र नाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द का पूर्व नाम) साधारण ब्राह्मसमाज के सम्पर्क मे आ चुके थे। उनके सामने केशवचन्द्र का आदर्श था जो उस समय के पठित बगाली युवा वर्ग के हृदय सम्राट बने हुये थे। सुधारवादियो के इस दल मे सम्मिलित होकर नरेन्द्र भी एक कट्टर ब्राह्म की ही भाँति धर्म सशोधन, कुरीति खण्डन तथा समाज सुधार के कार्यो मे रुचि लेने लगे। रामकृष्ण मिशन का तो यह दावा रहा है कि उस समय भी विवेकानन्द उक्त समाज की सुधारवादी प्रवृत्तियो से पूर्ण सहमत न रहे होगे परन्तु विवेकानन्द के विदेशी जीवनी लेखक श्री रोमा रोला इससे सहमत नही है। उनकी इस धारणा मे पर्याप्त सत्यता है कि 'युवा नरेन्द्र के मनचले स्वभाव को आमूल उच्छेदन मे अवश्य ही रुचि रही होगी और अपने नये साथियो (ब्राह्म समाजियो) की प्रतिमा भजक प्रवृत्ति उन्हे खली न होगी। *

कुछ भी हो यह तो बहुत बाद की बात है कि रामकृष्ण के प्रभाव मे आकर वे पुराने विश्वासो तथा प्रथाओ का सम्मान करने लगे।

गुरु दीक्षा—

दयानन्द और विवेकानन्द दोनो का ही विचित्र गुरुओ से साबका पड़ा था। अपने युग के अप्रतिम शास्त्र मर्मज्ञ पुरानी प्रथाओ और कुसस्कारो के

---

* *विवेकानन्द—रोमांरोला लिखित पृ० ३९ (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद मे प्रकाशित हिन्दी अनुवाद)*

प्रखर आलोचक समग्र देश और समाज मे एक अभूतपूर्व क्रान्ति तथा नवजागरण लाने के लिये अत्यन्त उत्सुक होने पर भी अपनी जीर्णशीर्ण काया तथा वृद्धता के कारण कुछ भी कर सकने मे असमर्थ तथा सर्वोपरि प्रज्ञाचक्षु होने के कारण अपने दैनन्दिन कार्यों के लिये भी सर्वथा परमुखापेक्षी एक जरठ सन्यासी विरजानन्द को दयानन्द के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसे विवेकानन्द ने कठोर तपस्वी वज्र कठोर निर्मम सन्यासी * कहा था। परन्तु स्वय विवेकानन्द के गुरु भी कम रहस्यपूर्ण नही थे। काली मन्दिर का यह पुजारी रामकृष्ण जिसे कभी शास्त्राभ्यास करने का अवसर भी नही मिला था किन्तु जिसने विभिन्न आध्यात्मिक साधनाजन्य अनुभव अर्जित कर अपने शिष्य वर्ग मे विशिष्ट ख्याति प्राप्त कर ली थी एक ऐसे शिष्य की प्रतीक्षा मे था जो उसके सदेश को ससार व्यापी बनाये तथा धर्म और अध्यात्म-प्रधान भारत मे एक बार पुन वेदान्त प्रतिपादित विचारधारा की दुदभी बजाने मे समर्थ हो।

विरजानन्द को दयानन्द की प्राप्ति और रामकृष्ण की नरेन्द्र से भेंट दोनो के लिये एक अयाचित वरदान ही सिद्ध हुई क्योंकि लगभग अढाई वर्षों के

---

* *विवेकानन्द चरित पृ० ३८३ यहाँ विवेकानन्द ने विरजानन्द के सम्बन्ध मे लिखा है— वे (विरजानन्द) मानते थे कि उनके द्वारा प्रचारित वेद प्रतिपाद्य धर्म ही एक मात्र सत्य है तथा अन्य सभी धर्म व मत भ्रान्त कुसस्कार मात्र हैं। परन्तु विरजानन्द का यह मूल्यांकन सही नहीं है। विरजानन्द ने वेद प्रतिपाद्य उसी धर्म की सत्यता को ही स्वीकार करने की बात कही थी जिसे सभी प्राचीन ऋषि मुनियों का अनुमोदन प्राप्त है। निश्चय ही उन्होंने अन्य साम्प्रदायिक मतों को कोई महत्त्व नहीं दिया था।*

विद्याध्ययन* के पश्चात् विरजानन्द ने अपने शिष्य से गुरुदक्षिणा के रूप मे जो चीज चाही थी वह कोई मूल्यवान् पदार्थ न होते हुये भी एक सर्वथा अभिनव वस्तु थी। विरजानन्द ने अपने शिष्य से यह आश्वासन मागा था कि वह अपने अवशिष्ट जीवन मे लुप्त आर्ष ज्ञान का पुनः प्रचार कर नष्टप्राय वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करेगा तथा मत सम्प्रदायो के तमस से आच्छन्न भारतीय जन समाज को एक नवीन दिशा देगा।

जिस प्रकार विरजानन्द अपने इस युवा शिष्य की प्रखर आलोचना शक्ति तथा साम्प्रदायिक कलुष तथा अन्धधारणाओ के विभ्राट को अपने वागबाणो से छिन्न भिन्न करने की अद्वितीय शक्ति को देख कर अशेष सुख तथा गौरव का अनुभव करते थे उसी प्रकार नरेन्द्र की तीखी आलोचनाओ तथा उसके प्रबल तर्कों को सुन कर रामकृष्ण को भी परम प्रसन्नता होती थी। वे सहसा कह उठते— देखो देखो कैसी तीक्ष्ण प्रतिभा है यह तो धधकती आग है जो सब खोट जला डालेगी। † विरजानन्द की ही भाति रामकृष्ण ने भी अपने शिष्य से यह आशा की थी कि वह दुनिया मे बडे बडे काम करेगा। उससे लोगो मे आध्यात्मिक चेतना जागृत होगी तथा वह दीन निर्धन के क्लेश दूर करेगा।

देश पर्यटन—

गुरु गृह से दीक्षित होने के उपरान्त दयानन्द ने समस्त देश का व्यापक भ्रमण किया। यो देश पर्यटन तो उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण करने के साथ-साथ

---

* *स्वामी दयानन्द ने इस समय अष्टाध्यायी महाभाष्य निरुक्त तथा वेदान्तादि दर्शनों का अध्ययन किया था। विवेकानन्द ने अपने अध्ययन काल मे उपनिषद् अष्टावक्र संहिता पचदशी विवेक चूडामणि आदि वेदान्त के ग्रन्थ पढे थे।*

† *विवेकानन्द—रोमां रोला कृत पृ० ४५*

ही प्रारम्भ कर दिया था किन्तु गुरुकुल से निकल कर वे सन्यासियों की मर्यादा का पालन करते हुये गगानुवर्ती तट प्रदेश का भ्रमण करते रहे। इस समय उन्हें देश दशा को सूक्ष्मता से देखने का अवसर मिला। उन्हें धर्म की सार्वत्रिक अधोगति समाज का विनाशोन्मुख स्वरूप तथा राष्ट्र के बहुविध पतन का चरम दृश्य दिखाई पडा। विवेकानन्द का आसेतु हिमाचल देशभ्रमण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। उन्होने जन समाज की दुर्दशा को प्रत्यक्ष देखा। देशवासियो की भयकर दरिद्रता, उनके कष्टो अभावों और पीडाओं को देख कर उनका परिव्राजक हृदय भी द्रवित हो उठा। अपने पर्यटन-काल मे विवेकानन्द जनता के सभी वर्गों के निकट सम्पर्क मे आते थे जब कि दयानन्द सर्व सगपरित्यागी परिव्राट की भाति जन सम्पर्क से दूर रह कर भी उसकी यथार्थदशा के प्रति अपरिचित और असावधान नहीं रहे।

दोनो ने ही अपने जीवन को लोक हित के लिये सर्वात्मना समर्पित कर दिया था। दयानन्द ने लोक मगल के लिये समाधि का आनन्द छोडा तो विवेकानन्द के मुख से भी ऐसे ही उदात्त उदगार फूट पडे थे—'दरिद्र पीडित, निर्धन मनुष्य की आराधना के लिये मुझे बार-बार जन्म लेकर सहस्राधिक यातनाये भोगनी पडे तो निश्चय ही भोगूँगा।'*

धार्मिक दिग्विजय—

दयानन्द ने पुराण प्रतिपादित मूर्तिपूजा अवतारवाद जन्मपरक वर्ण-व्यवस्था कल्पित तीर्थ आदि धार्मिक अन्धविश्वासो को नष्ट कर उनके स्थान पर विशुद्ध एकेश्वरवाद पर आधारित निर्गुण उपासना गुण कर्म पर आश्रित वर्ण विधान तथा अन्य विविध धार्मिक सामाजिक सुधारो का सूत्रपात करने के पूर्व यह आवश्यक समझा था कि तत्कालीन पौराणिक मत के गढ काशी की विद्वन्मण्डली को शास्त्रार्थ विचार द्वारा या तो स्वपक्ष समर्थन के लिये

---

* विवेकानन्द—रोमा रोला कृत पृ० ७३

तत्पर किया जाय अथवा उन्हे परास्त कर वदिक विचारणा की मूधन्यता स्थापित की जाय। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु काशी के आनन्दोद्यान मे उन्होने १६ नवम्बर १८६९ को काशी के सुप्रसिद्ध पण्डितो से मूर्तिपूजा विषयक वह विख्यात शास्त्राथ किया, जिससे तत्कालीन शास्त्रज्ञ विद्वानो को दयानन्द के वदुष्य तथा वाग्मिता के साथ साथ उनके विचारो की सत्यता के आगे नतमस्तक होना पडा। चाहे अपने सम्प्रदायमूलक अभिनिवेशो तथा आजीविका-जन्य प्रलोभनो के वशवर्ती होकर उन्होने दयानन्द के पक्ष की सत्यता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार न किया हो किन्तु उन्हे यह तो मानना ही पडा कि दयानन्द के रूप मे एक ऐसे मेधावी पुरुष का धमक्षेत्र मे अवतरण हो चुका है जिसके दिव्य एव प्रखर आष तेज से समस्त साम्प्रदायिक कलुष अनायास ही भस्मीभूत हो जायगा।

इसी प्रकार विवेकानन्द ने भी ११ सितम्बर १८९३ को अमेरिका के शिकागो नगर मे आयोजित सव धम ससद के उस अधिवेशन मे समग्र भारतीय हिन्दू धम के स्वनिर्वाचित प्रतिनिधि के रूप मे भाग लेकर तथा अमेरिका के भाइयो और बहनो के एक सवथा अभिनव सम्बोधन द्वारा उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित कर पश्चिम की जनता को विस्मय विमुग्ध ही नही किया उन्हे यह भी सोचने का अवसर दिया कि जिस देश से यह वक्ता आया है उस ज्ञानमय देश मे मिश्नरी भेजना कितनी मूखता है। जिस हिन्दूधम को ईसाई प्रचारकगण अनतिकता का घनीभूत पुञ्ज* कहने मे सकोच नही करते थे, उन्ही की भूमि की ओर प्रस्थान करते हुये विवेकानन्द ने कहा "मैं उस धम का प्रचार करने जा रहा हू बौद्धधम जिसका एक विद्रोही बालक मात्र है

---

* *Crystallised immortality and Hinduism are same thing* (एक अग्रेजी महिला मिश्नरी)

तथा ईसाइयत जिसकी देर से सुनाई पडने वाली अनुगूंज। † उसने ईसाई-प्रचार प्रणाली का पर्दाफाश करते हुये स्पष्ट कहा 'आप जितनी चाहे शेखी बघारें पर तलवार के बिना आपकी इसाइयत कहीं सफल हुई है ? आपका धर्म ऐश्वर्य का लोभ दिखाकर प्रचारित किया जाता है। ‡

केवल परलोक प्रधान दृष्टि ही नहीं—

कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण होने पर दयानन्द और विवेकानन्द दोनो ने ही समान रूप से देश की सर्वविध उन्नति करने का कार्यक्रम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। स्वामी दयानन्द ने कुछ छात्रों को जर्मनी भेजने की योजना बनाई ताकि वहाँ के कला कौशल और वैज्ञानिक उन्नति को आत्मसात् कर वे स्वदेश लौटें और यहाँ के अर्थ तन्त्र को सुदृढ बनाने में अपना योग दें। विवेकानन्द की भी यह धारणा थी कि हमे पश्चिम की आर्थिक नीति औद्योगिक सगठन शिक्षाव्यवस्था विज्ञान की प्रगति आदि में दिलचस्पी लेनी चाहिये। उन्होंने यह अनुभव किया था कि पश्चिम के अर्थ और पदार्थ संग्रह को भारत लाना चाहिये और भारत के अध्यात्मवैभव को पश्चिम में ले जाना अभीष्ट है। पूर्व और पश्चिम का यहपारस्परिक आदानप्रदान दोनो के लिये अभीष्ट और श्रेयस्कर होगा।

संस्था निर्माण—

अपने सिद्धान्तो को अधिकाधिक प्रचारित करने के लिये तथा मानव मात्र के हितार्थ दोनो आचार्यों ने आर्यसमाज तथा रामकृष्ण मिशन नामक संस्थाओं की स्थापना की। आर्यसमाज तो १८७५ ई० मे ही स्थापित हो गया था तथा

---

† *I go forth to preach a religion of which Buddhism is nothing but a rebel child and Christianity but a distant echo* विवेकानन्दजी के संग मे पृ० १७६

‡ विवेकानन्द—रोमां रोला कृत पृ० ८५

अपनी पजाबयात्रा के दौरान स्वामी विवेकानन्द उसकी गतिविधियो तथा प्रवृत्तियो के निकट सम्पक मे आये। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के प्रिन्सिपल सुप्रसिद्ध आय नेता महात्मा हसराजजी से उस समय उनका विस्तृत विचार विमश हुआ था। स्वामी विवेकानन्द के जीवनीलेखक के अनुसार तो 'आयसमाज पर उस समय स्वामीजी का प्रभाव इतना अधिक हो गया था कि जनता मे यह चर्चा होने लगी थी कि वे शीघ्र ही नेता के रूप मे उक्त समाज के परिचालन का भार अपने ऊपर ले लगे।* खर ऐसा होना तो सम्भव नही था क्योकि स्वामी दयानन्द द्वारा सस्थापित आयसमाज की दाशनिक मान्यताये स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित वेदान्तवाद के अधिक अनुकूल नही थी किन्तु कालान्तर मे स्वय स्वामी विवेकानन्द ने ही अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। निवृत्तिमार्गी सन्यासी भी देशहित जाति हित और सर्वोपरि लोक हित के लिये जब सभा सस्थाओ का सगठन कर येनकेन प्रकारेण प्रवृत्ति माग के निकट आ जाते है तो उनके वैराग्यशील अन्त करण मे वेदना एव ग्लानि अवश्य होती है। स्वामी दयानन्द ने भी जब वेदभाष्यो के मुद्रणाथ तथा अन्यान्य शास्त्रीय ग्रन्थो के प्रचाराथ वदिक यन्त्रालय की स्थापना की तो अनायास ही उनके मुख से यह उद्गार निकला था— आज हम पतित हो गये आज हम गृहस्थ हो गये।† ऐसे ही विचार स्वामी विवेकानन्द ने भी प्रकट किये देखो न काय आरम्भ करने के लिये मुझे एक बार धन सम्पत्ति को भी हाथ लगाना पडा।‡

लोक मगल की साधना—

दयानन्द की ही भांति विवेकानन्द ने भी समाज एव देश रूपी विराट

---

* *विवकानन्द चरित पृ० ३२९*

† *महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र भाग २ (प० घासीराम लिखित)*

‡ *विवकानन्द ले० रोमां रोला पृ० १०३*

पुरुष को ही अपनी पूजा और अर्चा का विषय बनाया। अपने एक भाषण मे इसी स्वदेश रूपी देवता की उपासना का आह्वान करते हुये उन्होने देशवासियों से कहा— सब मिथ्या देवीदेवताओ को भुला दो पचास वष तक कोई उनका स्मरण भी न करे। यह हमारी जाति ही एक मात्र ईश्वर है सशरीर वह सवत्र उपस्थित है। ‡ जब एक सन्यासी बधु ने विनोद मे ही विवेकानन्द से यह कहा कि उन्होने रामकृष्ण की आनन्द साधना म सगठन कम और सेवा के उन पश्चिमी सिद्धान्तो को मिला दिया है जिनकी आज्ञा रामकृष्ण ने नहीं दी थी तो उस समय विवेकानन्द ने बडी तीव्रतापूर्वक उपयु क्त कथन का प्रत्याख्यान करते हुये कहा— तुम सोचत हो कि तुम श्री रामकृष्ण को मुझसे अधिक समझत हो तुम्हारा श्री रामकृष्ण का अनुभव अत्यन्त स्वल्प है मैं तुम्हारे श्री रामकृष्ण को नही मानता तमस मे डूबे हुये अपने देशवासियो को यदि मैं जागृत कर सकू तो मुझे सहस्र रौरव की यातना सहज स्वीकार है। * दयानन्द ने भी लोक सेवा तथा मानवहित के लिये ऐसे ही उदगार व्यक्त किये थे।

स्वराज्य भावना—

युग की माग के अनुसार स्वामी दयान द और विवेकानन्द दोनो ही समाज सस्थापन की ओर उ मुख हुये थे किन्तु दयानन्द मे स्वराज्य, स्वशासन और स्वाधीनता के जिन राष्टीय भावो का प्रतिफलन हमें दृष्टिगोचर होता है † वसा विवेकान द मे दिखाई नही पडता। दयानन्द ने तो राजनीति के मूल तत्त्वो का विवेचन करने के साथ-साथ देश के विगत गौरव का पुन पुन आख्यान किया तथा देशवासियो की वतमान अधोगति के लिये विदेशी शासन

---

‡ वही पृ० ११५

* विवकान द—रौमां रौला लिखित प० १२३–१२४

† द्रष्टव्य—राष्ट्रवादी दयानन्द—ले० सत्यदेव विद्यालङ्कार

को उत्तरदायी ठहराया । उन्होने यत्र तत्र ऐसे प्रेरणाप्रद उद्गार भी व्यक्त किये जिन्हे पढ और सुनकर भारत के स्वाधीनता सग्राम की आधार भूमि तयार हुई और परवर्ती देशभक्तो को स्वतन्त्रता प्राप्त करने हेतु कठिनाइयो मे जूझने का सबल प्राप्त हुआ । परन्तु विवेकानन्द के मन मे अग्रेजो का विरोध करके भारत की राजनीतिक स्वाधीनता स्वराज्य प्राप्त करने का लक्ष्य नही था ।‡

परलोक गमन—

अन्तत दयानन्द और विवेकानन्द दोनो ने ही स्वदेशवासियो की मनोभूमि मे अपने विचारो के अकुरो को विकसित एव पल्लवित होते देखा । यदि वे दोनो ही दीर्घजीवी होते तो कदाचित अपनी साधनाओ के सुफल को सुपक्वता प्राप्त करते हुये भी देखते परन्तु नियति को ऐसा स्वीकार नही था । दयानन्द ५९ वर्ष की आयु प्राप्त कर उस समय परलोकगामी हुये जब वे राजस्थान को अपना कार्यक्षेत्र बना कर स्वदेशी का मन्त्र क्षत्रिय राजाओ मे फूकना चाहते थे । विवेकानन्द तो और भी कम आयु लेकर आये थे । मात्र ३९ वर्ष की आयु मे ही इस राजर्षि ने परलोक की ओर प्रस्थान किया । जिस दिन उन्होने अमर पद प्राप्त किया उसी दिन अपने एक साथी प्रेमानन्द से उन्होने वैदिक कालेज की योजना पर बातचीत की और यह आशा प्रकट की थी कि उससे अन्धविश्वास नष्ट हो जायगा ।* सम्भवत पजाब मे स्वामी दयानन्द की स्मृति मे स्थापित डी० ए० वी कालेज की योजना के अनुकरण पर ही वे वैदिक कालेज के आदर्श को मूर्त रूप देना चाहते होंगे क्योकि हम यह जानते हैं कि स्वामी दयानन्द के अनुयायियो ने अपने आचार्य की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये ही उस महाविद्यालय की एक ऐसी आदर्श शिक्षण सस्था के

---

‡ *विवेकानन्द—रोमां रोला लिखित पृ० १३१*

* वही पृ० १५१

रूप मे स्थापना की थी जिसमे शिक्षा के पौरस्त्य एव पाश्चात्य आदर्शों के सुखद समन्वय का सफल प्रयत्न था।

निश्चय ही देशवासियो ने दयानन्द और विवेकानन्द मे अभूतपूव आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न तथा लोक हित के लिये सवस्व समपण की भावना युक्त प्राणवान् व्यक्तित्व के दशन किये।

□□

सहायक ग्रन्थों की सूची

(अ) स्वामी दयानन्द रचित ग्रन्थ

सत्यार्थप्रकाश गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली से प्रकाशित ७ वां संस्करण।
२ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका—सार्वदेशिक प्रकाशन दिल्ली।
३ भ्रान्ति निवारण
४ उपदेश मंजरी

(आ) स्वामी विवेकानन्द रचित ग्रन्थ

१ हिन्दू धर्म के पक्ष में
२ शिक्षा
३ शिकागो वक्तृता
४ जाति संस्कृति और समाजवाद
५ चिन्तनीय बातें
६ हिन्दू धर्म
७ ज्ञान योग
८ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त
९ देव वाणी
१० भक्ति योग
११ प्रेम योग
१२ आत्मानुभूति तथा उसका मार्ग
१३ महापुरुषों की जीवन गाथायें

१४ वतमान भारत
१५ हमारा भारत
१६ प्राच्य और पाश्चात्य
१७ कम योग
१८ धम रहस्य
१९ ईशदूत ईसा
२० धम रहस्य
२१ परिव्राजक

(इ) स्वामी विवेकानन्द विषयक ग्रन्थ साहित्य—

१ विवेकान द चरित—(जीवनी) सत्ये द्रनाथ मजूमदार लिखित
२ पत्रावली—३ भाग (स्वामीजी के पत्रो का सग्रह)
३ विवेकान दजी के सग मे—शरच्च द्र चक्रवर्ती
४ स्वामी विवेकान द से वार्तालाप–अनु० स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द
५ भारत मे विवेकान द (भाषण सग्रह)

नोट—उपयु क्त सभी ग्र थ रामकृष्ण आश्रम नागपुर के द्वारा स्वामी विवेकानन्द ग्रन्थ माला के अन्तगत प्रामाणिक अनुवाद के रूप मे प्रकाशित हुये हैं।

(ई) अ य ग्र थ

1 Bankım Tılak and Dayanand by Shrı Arvında 1940
2 The Lıfe of Shrı Rama Krıshna By Romaın Rolland
3 The Renaıssance of Hınduısm By D S Sarma
४ महर्षि दयान द और राजा राममोहनराय ले० भवानीलाल भारतीय आर्य पुस्तकालय आगरा से प्रकाशित १९५७ ई०।

☐☐